Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

109

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Samaj Foundation Chen

R
५२०.१

ain. Gurukul Kangri C

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
420.1
शुक्ल - वी

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 4201 शुम्-बी आगत संख्या..........

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवरदराजविरचिता

बी० ए० लघुसिद्धान्तकौमुदी

[सरलाख्यहिन्दीटीकया, शब्दरूपसिद्धि, लेखनविधिसंज्ञासूत्रादिभिरलङ्कृता]

[संज्ञा-सन्धि-अजन्त-पुंलिंग प्रकरण मात्र]

8239H

Stock Verification-2024

व्याख्याकारः सम्पादकश्च :

चुन्नीलालशुक्ल, साहित्याचार्य

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), साहित्यरत्न

R420.1,SHU-B

8239H

प्रकाशक :

साहित्य भण्डार

सुभाष बाजार, मेरठ–२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष,
साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार, मेरठ–२ ।

© प्रकाशकाधीन ।

संशोधित संस्करण १९७७ ।

मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे मात्र ।

मुद्रक :
सर्वोदय प्रेस, मेरठ ।
दूरभाष ७४३५२

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशन

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
२. भारतीय संस्कृति का इतिहास
३. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
[illegible]. किरातार्जुनीयम् I सर्ग
५. रघुवंश महाकाव्य II सर्ग
६. छन्दालङ्कारप्रकाश
७. कादम्बरी कथामुखम्
८. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व (प्रश्नोत्तर रूप में)
९. संस्कृत निबन्ध माला I
१०. संस्कृत रचनानुवादप्रभा
११. संस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रश्नोत्तर रूप में)
१२. भामिनीविलासः
१३. वैदिक-सूक्त-संग्रहः (अवध विश्वविद्यालय)
१४. अपरीक्षितकारकम्
१५. Shakespear's OTHELLO
१६. THE MERCHANT OF VENICE
१७. Amid-summer Night

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

प्रास्ताविकम्

पाणिनि से पूर्व व्याकरण परम्परा—पाणिनि से पूर्ववर्ती आठ वैयाकरणों के ऐसे नाम प्राप्त होते हैं, जिनको समाज में पर्याप्त आदर एवं ख्याति प्राप्त थी। श्री 'तत्वनिधि' ने इस सम्बन्ध में कहा है कि—

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम्॥

इस श्लोक में परिगणित 'चन्द्र' के अतिरिक्त सात वैयाकरण पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं। **शाकल** का उल्लेख ऋकप्रातिशाख्य १/६४ आदि में है। परन्तु 'ऋक्तन्त्र' में उल्लिखित व्याकरणों की संख्या इससे भी अधिक है। **'चान्द्र'** व्याकरण ही पाणिनि के पश्चात् लिखा गया।

ऋक्प्रातिशाख्य के रचयिता शौनक पाणिनि से निश्चय ही पूर्ववर्ती हैं। शौनक द्वारा प्रणीत संज्ञा ए तथा सूत्र शैली पूर्णरूपेण पाणिनि से पूर्ववर्ती प्रतीत होती है।

प्रातिशाख्य में उल्लिखित वैयाकरणों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) अग्निवेश्य, (२) आत्रेय, (३) आगस्त्य, (४) कात्यायन, (५) काण्व, (६) व्याडि, (७) शाकटायन, (८) कौण्डिन्य, (९) काश्यप, (१०) गार्ग्य, (११) गौतम, (१२) जातुकर्ण्य, (१३) शाकल, (१४) शाँख्यायन, (१५) माध्यन्दिन, (१६) पौष्करसादि, (१७) यास्क, (१८) मीमांसक, (१९) वेदमित्र, (२०) शौनक।

यद्यपि पाणिनि से पूर्ववर्ती ब्रह्मा के परवर्ती वैयाकरणों के नाम लगभग ८२ प्राप्त होते हैं, परन्तु प्रमुखतम व्याकरण निम्न हैं—

इन्द्र, भागुरि, काशकृत्स्न, व्याडि, आपिशलि, गालव, शाकटायन, शाकल्य तथा स्फोटायन। आज इनके द्वारा लिखित व्याकरण-ग्रन्थ पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होते तथा इनके मतों और सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

महर्षि पाणिनि—विश्व प्रसिद्ध महावैयाकरण पाणिनि ने अप्रतिम प्रतिभा का परिचय देते हुए 'अष्टाध्यायी' नामक अद्भुत ग्रन्थ की रचना की है। पाणिनि जैसा विश्व में कोई आज तक महावैयाकरण किसी भाषा में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। क्योंकि पाणिनि द्वारा लिखित व्याकरण पर जितनी अधिक गवेषणा एवं चिन्तन तथा अनुगमन किया गया है उतना किसी अन्य का नहीं। पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती व्याकरणों को आत्मसात् करके एक नूतन एवं वैज्ञानिक व्याकरण पद्धति का प्रणयन किय है कि जिससे आगे या जिसके विरुद्ध कुछ भी कोई नहीं लिख सका अपितु पाणिनि की सूत्र शैली औ: प्रयोगसिद्धि प्रक्रिया का नतमस्तक होकर अनुकरण किया जा रहा है। वस्तुतः पाणिनि संस्कृत व्याकरण के प्रणेताओं के सर्वाग्रणी नेता एवं महर्षि माने जाते हैं।

पाणिनि के विभिन्न नाम—पुरुषोत्तमदास ने 'त्रिकाण्ड शेष' में पाणिनि के ६ नामों का उल्लेख किया है, जिनमें केवल दो नाम ही प्रसिद्ध हैं। (१) पाणिनि, (२) दाक्षी पुत्र। इनके अतिरिक्त शेष चार नाम इस प्रकार हैं, (३) पाणिनि, (४) शालङ्कि, (५) शालातुरीय और (६) आहिक।

समय—भण्डारकर, वेल्वेकर आदि विद्वानों ने पाणिनि का समय ३५० ई० पूर्व माना है। वेवर थीमे आदि विद्वानों ने ३५० ई० पूर्व से ८०० ई० पूर्व के मध्य माना है। 'गणरत्न महोदधि' नामक पुस्तक में वर्धमान 'शालातुर' को पाणिनि के पूर्वजों का निवास स्थान कहा गया है। कतिपय सूत्रों की गवेषणा करके युधिष्ठिर मीमाँसक जी ने पाणिनि का निवास स्थान वाहीक (पञ्जाब) माना है। यह निश्चित है कि पाणिनि का स्थान औदिच्य या पश्चिमोत्तर प्रदेश में ही होगा। कतिपय लोगों ने पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (वर्तमान पाकिस्तान) का निवासी सिद्ध किया है। पाणिनि का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था, महाभाष्य के ओदनपाणिनीयाः' से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि को ओदन अधिक प्रिय है। इससे पाणिनि की समृद्धि तथा पश्चिमोत्तर में निवास स्थान सिद्ध होता है।

रचनायें—पाणिनि ने (१) **अष्टाध्यायी**, (२) **पाणिनीय शिक्षा** (३) **जाम्वन्ती विजय**—इन तीन ग्रन्थों की रचना की है। इनमें अष्टाध्यायी विश्व प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण का सर्वश्रेष्ठतम ग्रन्थ है, जिसके द्वारा भारत का गौरव विश्व में आदर के साथ स्वीकार किया जाता है। जो गौरव वेद, दर्शन, उपनिषदों ने भारत को प्रदान किया उससे कहीं अधिक गौरव 'अकेली' अष्टाध्यायी, भारत को विश्व के मध्य प्रदान कर रही है। जो पाणिनि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण का रहस्य जान लेता है, फिर वह भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र के रहस्य को बड़ी सरलता से हृदयंगम कर लेता है। ५०० ई० पूर्व से पूर्व भारतीय साहित्य की प्रामाणिकता का आधार अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है। व्याकरण और भाषा विज्ञान के विषय में कोई ऐसा सूक्ष्म चिन्तन एवं रहस्य नहीं है, जिसके लिये पाणिनि का अनुकरण न किया जाता हो पाणिनि का अष्टाध्यायी एक ऐसा अद्भुत व्याकरण का ग्रन्थ रत्न है जिसके समक्ष पाणिनि की अन्य कृतियों को भी लोग भूल गये हैं। पाणिनि और अष्टध्यायी ये दोनों शब्द ऐसे जुड़ गये हैं कि आपस में दोनों शब्द पर्यायवाची ही प्रतीत होते हैं।

पाणिनीय शिक्षा – पाणिनीय शिक्षा के आकार के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। स्वामी दयानन्द, डॉ० रघुवीर तथा आचार्य मीमांसक आदि के मत से सूत्र रूप में प्राप्त 'चान्द्र' तथा 'आपिशलीय शिक्षा' के आधार से निर्मित्त 'सूत्रमयी शिक्षा' ही 'पाणिनीय शिक्षा' है। द्वितीय मत के अनुसार 'सिद्धान्त-कौमुदी के प्रारम्भिक कलकत्ता संस्करण के प्रथम प्रकाशन के अन्त में मुद्रित श्लोकवद्ध 'पाणिनीय शिक्षा' ही 'पाणिनीय शिक्षा' है। इस मत के मानने वालों की संख्या वहुत है। डा० मनमोहन घोष' ने भी अनेक तर्कों के द्वारा द्वितीय मत को ही मानते हुये श्लोकबद्ध पाणिनीय शिक्षा को ही 'पाणिनीय शिक्षा माना है।

इसके अतिरिक्त कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भी ध्वनि एवं उच्चारण सम्बन्धी वैज्ञानिकता का अनुभव करके कहा था—कि ध्वनि एवम् उच्चारण सम्बन्धी नियम ऐसे अकाट्य तथा वैज्ञानिक हैं जो पाणिनि के मुख से निकल सकते थे। डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने भी पाणिनीय शिक्षा की परम्परा स्वीकार करते हुये कहा है कि 'यह शिक्षा प्रातिशाख्यों से न तो पूर्ववर्ती है और न सर्वत्र उनका अनुसरण करती है।' वे इस सामान्य शिक्षा का मूलरूप भी नहीं स्वीकार करते हैं तथा वे इसे सर्वप्रथम शिक्षा ग्रन्थ भी नहीं स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' 'व्यास शिक्षा' और 'वर्णोच्चारण शिक्षा' को अधिक प्राचीन मानते हैं। 'आपिशल शिक्षा' और 'चान्द्र शिक्षा' के स्वरूप का अस्तित्व सूत्र रूप में ही मानते हैं। आपके उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि आपने सूत्र रूप में स्वीकृत 'पाणिनीय शिक्षा' पर गम्भीरता से विमर्श नहीं किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि 'आपिशल शिक्षा' पाणिनीय शिक्षा से अवश्य प्राचीन है तथापि पाणिनीय शिक्षा के दो रूप (१) 'सूत्र रूप' तथा 'श्लोक रूप' प्रसिद्ध हो चुके थे। वस्तुतः (२) 'पाणिनीय शिक्षा' का व्याकरण शास्त्र में एक विशिष्ट स्थान है।

जाम्वती विजय—पाणिनि का यह प्रसिद्ध काव्य है। इसमें पाताल में प्रवेश कर श्री कृष्ण के द्वारा जाम्वती विजय और उसके परिणय की कथा का आलंकारिक वर्णन किया गया है। कतिपय भारतीय, पाश्चात्य विद्वान इसे पाणिनिकृत नहीं मानते और कुछ विद्वान इसे पाणिनिकृत ही मानते हैं। पतञ्जलि, समुद्रगुप्त, राजशेखर और क्षेमेन्द्र आदि विद्वान इसे पाणिनिकृत ही मानते हैं। समुद्रगुप्त ने अपने कृष्ण चरित नामक काव्य के प्रारम्भिक श्लोकों में दश मुनियों के नामों का उल्लेख किया है। समुद्रगुप्त ने पाणिनि और कात्यायन का नाम काव्य रचना और व्याकरण दोनों क्षेत्रों में उल्लिखित किया है। शरणदेव तथा पुरुषोत्तमदेव भी इसे पाणिनिकृत ही मानते हैं और १८ सर्गों का संकेत भी किया है।

परन्तु खेद है कि यह सुललित एवं प्रसिद्ध काव्य पूर्णरूप से आज उपलब्ध नहीं है।

अन्य रचनाएं—अन्य रचना के नाम से २४ सूत्रों के एक लघुग्रन्थ को (पूर्वपाणिनीयम को) अवधेय कहा जाता है। महाभाष्य में **पूर्वपाणिनीयाः** तथा **अपरपाणिनीयाः** शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह सम्भव है कि **अपरपाणिनीयाः** से अष्टाध्यायी का ही संकेत किया हो। पूर्णपाणिनीयम् के नाम के रूप में प्राप्त पुस्तक के लघु आकार को देखकर उसको अधिक आदर नहीं प्राप्त होता है, परन्तु यदि प्रतिज्ञा सूत्रों को ही ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करें तो अनेक विवाद समाप्त हो जाते हैं और कात्यायन तथा पतञ्जलि के प्रारम्भिक वार्तिकों को आधार प्राप्त हो जाता है। काशिका पा० ६।२।१०४ के प्रत्युदाहरण में **'पूर्व पाणिनीयम् शास्त्रम्'** का उल्लेख प्राप्त होता है।

कात्यायन आपके विषय में यह कहा जाता है कि आप दाक्षिणात्य थे। पतञ्जलि ने **'यथा लौकिकवैदिकेषु'** इस वार्तिक के प्रसंग में कहा है कि **'प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्या'**। केवल इस कथन से कात्यायन को दाक्षिणात्य नहीं कह सकते हैं। यह सम्भव है कि कात्यायन ने स्वयं अपने लिये ही प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः' कहा है। परन्तु किस कात्यायन ने यह कहा, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवादास्पद विषय में परम्परा को ही आधार माना जाता है । अतः परम्परानुसार 'महाभाष्य' में उद्धृत वार्तिकों के रचयिता कात्यायन ही हैं और वररुचि आदि नाम भी कात्यायन के ही हैं । कात्यायन ने व्याडि आदि आचार्यों के अनुकरण पर 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' से ही व्याकरण का प्रणयन प्रारम्भ किया । श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार कात्यायन अनेक हुए हैं । पं० भगवदत्त के मत का समर्थन करते हुये मीमांसक ने कात्यायन की अनेकता स्वीकार की है । यद्यपि कात्यायन की अनेकता सिद्ध करने वाले समीक्षकों ने अनेक तथ्यों को प्रस्तुत किया है तथापि वार्तिककार कात्यायन का नाम आते ही अन्य तथ्य केवल अनुमान ही रह जाते हैं । पुरुषोत्तम देव ने कात्यायन के नामों का संकलन करके कहा है कि—कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित तथा वररुचि इन नामों में भी वररुचि नाम अधिक प्रसिद्ध है । यद्यपि इनके इस नाम के विषय में अन्यत्र उल्लेख नहीं प्राप्त होता है, केवल महाराज समुद्रगुप्त ने अपने नाटक 'कृष्णचरित्र' की भूमिका में कात्यायन तथा वररुचि को एक ही मुनि कहा है और वार्तिककार तथा कवि भी कहा है । समुद्रगुप्त का समय चतुर्थ शताब्दी से पूर्व किसी प्रकार नहीं स्वीकार किया जा सकता है । यह भी सम्भव है कि वररुचि नामक व्यक्ति कात्यान नामक वररुचि से भिन्न, पहले ही उत्पन्न हुये होंगे और उनका नाम बाद में नव-रत्नों में परिगणित किया गया हो । नवरत्न में परिगणित वररुचि भी वेद तथा व्याकरण के परम्परागत अधिकारी विद्वान् थे । सम्भवतः उन्होंने ही 'निरुक्त समुच्चय' की रचना की हो ।

इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है, कि कात्यायन का यह नाम गोत्र के आधार पर पड़ा हो और वास्तविक नाम 'वररुचि' ही हो । पतञ्जलि जी ने वररुचि को काव्यकर्त्ता के रूप में भी उल्लिखित किया है । अतः निःसन्देह 'वाररुचकाव्य' के प्रणेता होंगे । जिस व्यक्ति के नाम का स्मरण आदर के साथ पतञ्जलि ने किया है उनकी विद्वत्ता और काव्यत्व के विषय में सन्देह का अवसर ही नहीं रह जाता है तथापि यह सब कथन अनुमान पर ही आधारित कहा जा सकता है ।

वार्तिक के प्रणेता कात्यायन को दो नामों से (१) वार्तिककार तथा (२) वाक्यकार के नामों से स्मरण किया जाता है । प्रथम नाम उनकी रचना के आधार पर प्रसिद्ध हुआ और दूसरा नाम वार्तिकों के विभेदन के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्यकार पड़ गया है। इस प्रकार वृत्तिकार तथा वाक्यकार ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के सम्भव हो सकते हैं।

कात्यायन ने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखकर व्याकरण की रहस्यमयी गुत्थियों का समाधान किया है। वार्तिक का पुराणों में लक्षण इस प्रकार किया गया है कि—

"उक्तानुक्त दुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्त्तते
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः॥

अर्थात् उक्त—अनुक्त और द्विरुक्त कथन पर विचार करना वार्तिक का मुख्य कार्य होता है। इस दृष्टि से कात्यायन के वार्तिक सही प्रतीत होते हैं। पाणिनि के छूटे हुये अंश को पूर्ण करने के लिये तथा पाणिनि के सूत्रों को वार्तिक के माध्यम से संगति विठाने का प्रयास किया है और अपनी बुद्धि से पाणिनि की स्खलतियों को पूर्ण करने का यत्न भी किया है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार कात्यायान का समय महानन्द के समकालीन स्वीकार करने पर भी ४०० ई० पूर्व सिद्ध होता है। यद्यपि इनके समय के विषय में अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं। तथापि इनका समय ५०० तथा ४०० ई० पूर्व के मध्य में ही स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है। पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ महाभाष्य में पाणिनि तथा कात्यायन दोनों के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है तथापि कात्यायन की अपेक्षा पाणिनि को अधिक महत्व दिया है। वस्तुतः व्याकरण शास्त्र में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि का पृथक पृथक् महत्वपूर्ण स्थान है। कात्यायन ने पाणिनि को "आचार्य" मानकर भी उनके सूत्रों का पर्यालोचन वड़ी गम्भीरता के साथ किया है।

पतञ्जलि—

भारतीय परम्परा के अनुसार पतञ्जलि शेषनाग का अवतार माने जाते हैं। इसलिये उनके नाम निम्न प्रकार प्रसिद्ध हैं—

नागनाथ, वासुकि, अहिपति, फणी तथा फगिभृत् इनमें भी फणिभृत् तथा वासुकि का अधिक व्यवहार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त गोनदीय गोणिका पुत्र, चूर्णिका तथा पदकार आदि नामों के द्वारा भी पतञ्जलि को सम्बोधित किया गया है।

समुद्रगुप्त के कथनानुसार पतञ्जलि ने "महाभाष्य" "चरक" का प्रतिसंस्कार, महानन्द पर आधारित "काव्य" तथा योगदर्शन का प्रणयन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें "महाभाष्य" व्याकरणशास्त्र का अद्भुत एवम् अनुपम ग्रन्थ है तथा "योगदर्शन" का दर्शन क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त पतञ्जलि के नाम से अन्य ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसके अनुसार **निदानसूत्र, सामवेदीय पातंजल शाखा, सेश्वर सांख्य, कोषग्रन्थ, लोहशास्त्र, रसशास्त्र** आदि ग्रन्थों का प्रणयन पतञ्जलि ने किया है। परन्तु आज ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। पतञ्जलि के समय के सम्बन्ध में अधिक मतमतान्तर एवं विवाद नहीं है, पतञ्जलि का समय १५० ई० पू० निश्चित किया गया है।

सिद्धान्तकौमुदी—

इस लम्बी पाणिनि व्याकरण परम्परा के बाद भट्टोजिदीक्षितकृत "सिद्धान्तकौमुदी" का नाम आता है। "सिद्धान्तकौमुदी" आज संस्कृत शिक्षार्थियों के लिए आधार बनी हुई है। "सिद्धान्तकौमुदी" की विशालता को कम करने के लिये परवर्ती विद्वानों ने "मध्यकौमुदी" तथा 'लघुकौमुदी' नामक ग्रन्थों की रचना की। "सिद्धान्तकौमुदी" का आधार "रामचन्द्र" कृत प्रक्रियाकौमुदी ही है। यद्यपि "प्रक्रियाकौमुदी" का अनुकरण मात्र "सिद्धान्तकौमुदी" प्रतीत होती है, तथापि 'सिद्धान्तकौमुदी" के बराबर "प्रक्रियाकौमुदी" का प्रचार व प्रसार नहीं हो सका। पाणिनि के सूत्रों की टीकाये यह "सिद्धान्तकौमुदी" भट्टोजिदीक्षित का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आगे चलकर "सिद्धान्तकौमुदी" की अनेक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण नवीन टीकायें समय-समय पर हुई जिससे इसकी नवीनता में चार चाँद लग गये।

लघुसिद्धान्तकौमुदी एवम् श्री वरदराज—

श्री वरदराजाचार्य ने प्रक्रियाकौमुदी की भी एक व्याख्या लिखी थी। **श्री वरदराज भट्टोजिदीक्षित के** शिष्य थे और उन्होंने मध्यसिद्धान्तकौमुदी तथा लघुसिद्धान्तकौमुदी का प्रणयन किया। परन्तु वरदराज पर रामचन्द्र कृत 'प्रक्रियाकौमुदी' का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भट्टोजिदीक्षित ने 'सिद्धान्तकौमुदी' में पाणिनि के सूत्रों का हेरफेर बहुत सोच समझकर किया है। परन्तु वरदराज ने पुनः भट्टोजिकृत हेरफेर को 'अपने ग्रन्थ' लघुसिद्धान्तकौमुदी में हेरफेर कर दिया है। यह हेरफेर 'प्रक्रियाकौमुदी' के अनुकरण पर ही किया गया है। वरदराज ने स्त्री प्रत्ययों का स्थान, कृदन्त, तद्धित और समास का स्थान भी परिवर्तित कर दिया है। यह परिवर्तन 'प्रक्रियाकौमुदी' और सिद्धान्तकौमुदी' से भिन्न है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं कारणों से 'लघुकौमुदी' की रचना को मौलिक रचना माना जाता है। वरदराज कृत परिवर्तन व्याकरण शास्त्र में प्रवेशार्थी छात्रों के लिये अत्युपयोगी एवं सरल है। छात्र 'लघुकौमुदी' के प्रारम्भ में ही संज्ञा सूत्रों का परिचय प्राप्त करके सन्धि नियमों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अनन्तर सुबन्त और तिङ्न्त का ज्ञान प्राप्त करके कारक, समास, कृदन्त, तद्धित, स्त्री प्रत्यय आदि सम्बन्धी पाणिनि के नियमों का ज्ञान सरलता के साथ प्राप्त करता है। वरदराज ने 'लघुकौमुदी' में नाम के अनुरूप ही १२७२ पाणिनि के सूत्रों के द्वारा ही व्याकरण के समस्त नियमों का एक साथ परिचय कराया है। अष्टाध्यायी के अध्ययन के बिना भी शिक्षार्थी पाणिनि के व्याकरण सम्बन्धी, सम्पूर्ण नियमों को सरलता से सीखने में समर्थ हो जाता है। इस दृष्टि से 'लघुकौमुदी' का अपना एक विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय एवं पाश्चात्य छात्र इसकी सरलता तथा सूक्ष्मता से प्रभावित होकर लघु-सिद्धान्तकौमुदी को ही पढ़ना उचित मानते हैं। अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् 'वैलेण्टाईन' ने 'लघुकौमुदी' का अनुवाद भी अंग्रेजी में किया है। भारत में तो इसकी अनेकों टीकायें हो चुकी हैं और आज हो रही हैं।। इससे भी इसकी महत्ता स्वयं सिद्ध हो रही है।

वरदराज भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। अतः श्री वरदराज का समय १७ वीं शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। 'लघुकौमुदी' में शब्द साधुत्व की समस्त प्रक्रिया का आवश्यक वर्णन सरलता के साथ किया गया है। यह वरदराज की अनुपम कृति है। 'सिद्धांतकौमुदी' के जटिल एवं दुरूह शंकास्पद प्रसंगों को छोड़कर शब्द साधुत्व के सभी उपयोगी अंशों को ग्रहण कर सरलता पर विशेष ध्यान दिया है। सुगमता का ध्यान रखते हुए वरदराज ने 'सिद्धान्तकौमुदी' के क्रम में भी परिवतन कर दिया है। वरदराज ने 'लघु-कौमुदी' के प्रारम्भ में ही कहा है कि—

'पाणिनीय प्रवेशाय' अर्थात् पाणिनि व्याकरण में प्रवेश करने के लिये ही इस 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' की रचना की गई है। वस्तुतः पाणिनि व्याकरण में प्रवेश पाने के लिये तथा व्याकरण का यथार्थ ज्ञान एवं सुगमता से पाणिनि के व्याकरण सम्बन्धी शब्द साधुत्व की प्रक्रिया सीखने के लिये इसका अपना एक अमूल्य महत्व है। यह वरदराज की अनुपम देन है।

विदुषामनुचरः

चुन्नीलाल शुक्ल साहित्याचार्य,

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी) साहित्यरत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवरदराजाचार्यविरचिता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

(सरलाख्य—हिन्दी—व्याख्योपेता)

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

अन्वयः—अहम् (वरदराजः) शुद्धां, गुण्यां, सरस्वतीं, देवीं नत्वा, पाणिनीय प्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि ।

अर्थ—नत्वेति–मैं वरदराजाचार्य शुद्ध एवं पवित्र, श्रेष्ठ गुणों से युक्त वाग्देवी सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनि द्वारा विरचित व्याकरणशास्त्र में प्रवेश करने के लिये लघुसिद्धान्त-कौमुदी का प्रणयन करता हूं ।

विशेषः—सिद्धांतकौमुदी के रचयिता श्री भट्टो जी दीक्षित जी के शिष्य श्री वरदराजाचार्य ने संक्षिप्त पाणिनीय व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव करके सिद्धान्त-कौमुदी का संक्षिप्तीकरण करके इस लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना की है । व्याकरण शास्त्र के अध्येता अथवा ज्ञाता को (व्याकरणमधीते, वेत्ति वा के अनुसार) वैयाकरण कहते हैं वैयाकरणों के लघु सिद्धान्तों की कौमुदी (चन्द्रिका-प्रकाश) अर्थात् यह "शब्द" व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध है और यह नियमानुसार अशुद्ध है, इस प्रकार निश्चित ज्ञान को कराने वाले सिद्धान्तों (नियमों) की कौमुदी (सरसता एवं सरलता से शब्दों के साधुत्व और असाधुत्व रूप को प्रकाशित करने वाली)है । उन्हीं सिद्धान्तों का अत्यल्प समय में जानने योग्य लघुरूप को लघु कौमुदी कहते हैं । **पाणिनिप्रतिपादितानाम् सिद्धान्तानां व्याकरणान्तर्गतलोपागमगुणवृद्धिविधायकानां नियमानां, लघु-कौमुदी=लघ्वी चासौ कौमुदी=लघुकौमुदी)**

प्रस्तुत "नत्वेति" इस मङ्गलाचरण के द्वारा श्री वरदराजाचार्य जी ने प्राचीन भारतीय परम्परा का निर्वाह करते हुये अनुवन्ध चतुष्टय समन्वित समुचितेष्टा देवता सरस्वती के प्रणाम पुरःसर ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. अइउण्, २. ऋऌक्, ३. एओङ्, ४. ऐऔच्, ५. हयवरट्,
६. लण्, ७. ञमङणनम्, ८. झभञ्, ९. घढधष्, १०. जवगडदश्
११. खफछठथचटतव, १२. कपय्, १३. शषसर् १४. हल्।

प्रस्तुत मंगलाचरण से ही अनुबन्ध चतुष्टय का परिज्ञान हो जाता है अर्थात् व्याकरण शास्त्र के (१) विषय, (२) प्रयोजन, (३) सम्बन्ध और (४) अधिकारी का भी ज्ञान हो जाता है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रवेश करना ही प्रयोजन है, व्याकरण के सिद्धान्तों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध ही सम्बन्ध है, पाणिनीय व्याकरण शास्त्र के जिज्ञासु जन ही इसके अधिकारी हैं।

इस ग्रन्थ के अन्तर्गत सिद्धान्त कौमुदी के कुछ नियमों का ही संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इसका प्रथम प्रकरण, संज्ञा प्रकरण है जिसमें कुछ संज्ञा सूत्रों की व्याख्या की गई है।

(चतुर्दश–माहेश्वर सूत्राणि)

ये चौदह सूत्र पाणिनि मुनि को शंकर जी से प्राप्त हुये थे इसीलिये महेश्वराद् आगतानि इति=**माहेश्वराणि** अर्थात् महेश्वर से प्राप्त होने के कारण माहेश्वर कहे जाते हैं। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि पाणिनि की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सदा-शिव ने चौदह बार डमरू को वजाया था जिससे वर्णात्मक ये चौदह सूत्र पाणिनि के मानस पटल पर अंकित हो गये थे, उन्हीं को आधार मानकर पाणिनि ने अष्टाध्यायी नामक व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रणयन किया है। जैसा कि विद्वानों ने कहा भी है–कि—

नृत्तावसाने नटराजराजो,
ननाद ढक्कां नव पञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्,
एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

पाणिनि ने इन चौदह सूत्रों के माध्यम से संस्कृत भाषा की वर्णमाला की वैज्ञानिकता स्पष्ट की है। प्रथम चार सूत्रों में स्वरों का प्रथम दो स्वरों में अ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादि-संज्ञार्थानि । एषामन्त्या इतः । हकारादिष्वकारः उच्चारणार्थः । लण्मध्ये त्वित्सञ्ज्ञकः ।

इ, उ आदि स्वरों का और दो से आगे तीन और चार में मिश्रित स्वरों का (ए, ओ, ऐ, औ का) तथा शेष सूत्रों में व्यंजनों का उल्लेख किया है। व्यंजनों में हकार का दो बार पाठ किया है, इसका फल हल् रल् शल् आदि प्रत्याहार की निसिद्धि एवं अर्हेण, अधुक्षत, आदि प्रयोगों की सिद्धि है जैसा कि कहा भी है—

हकारो द्विरूपपात्तोऽयमयटि शल्यपि वाञ्छता ।
अर्हेणाधुक्षादित्यत्र द्वयं सिद्धं भविष्यति ॥

ये अइउण्, ऋऌक् आदि चौदह सूत्र अण्, अक्, अच्, हल् आदि प्रत्याहार संज्ञाओं के लिये हैं अर्थात् इन सूत्रों की सहायता से अण्, अक्, अच, हल् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि होती है। प्रत्याहार—प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णाः यस्मिन् सः प्रत्याहारः इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें वर्णों का संक्षेप करके वर्णन किया जाय उसे प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरणार्थ "अल्" कहने से समस्त स्वर और व्यंजनों का परिज्ञान हो जाता है। इस संक्षेप कथन को ही प्रत्याहार कहा गया है।

एषामिति—इन अइउण्, ऋऌक् आदि चौदह सूत्रों में अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक हैं। इत्संज्ञा के परिणामस्वरूप १४ सूत्रों के अन्तिम वर्णों के स्वर की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। अतः अन्तिम वर्ण हल् हो गये हैं। इत्सज्ञा को अनुबन्ध भी कहते हैं। प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये इत्सज्ञा का विधान अत्यावश्यक है।

हकारादिष्विति—हकार आदि में अकार उच्चारण के लिये ही है अर्थात् ह, य, व, र आदि व्यंजनों में दृष्टिगोचर होने वाला "अ" केवल उच्चारण की सुविधा के लिये ही है। लण् सूत्र के मध्य में अर्थात् ल का "अ" इत्संज्ञक है, लण सूत्र के मध्य ल के "अ" की इत्संज्ञा का फल र् अथवा ल् प्रत्याहार की सिद्धि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इत्संज्ञा-सूत्रम्)

१. हलन्त्यम् १।३।३।।

उपदेशेऽन्त्यं हल् इत् स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

हलन्त्यम्—उपदेश दशा में अन्तिम हल् अर्थात् व्यंजन की इत्संज्ञा होती है अर्थात् उपदेश में अन्त का हल (व्यंजन) हल् होता है, यह समझना चाहिये।

उपदेश इति—आद्य=अर्थात् पहले कहे हुये को उपदेश कहते हैं। अतः मुनित्रय (पाणिनि) कात्यायन और पतञ्जलि के प्रथम कथन अथवा उच्चारण को उपदेश कहते हैं। जैसा कि कहा भी है।

धातु-सूत्रगणोणादि-वाक्य-लिगानुशासनम्।
आगम-प्रत्ग्रयादेशा उपदेशाः प्रकीर्तितताः॥

धातु (पठ्, गम्, अस् आदि) सूत्र (संज्ञा, परिभाषा, विधि आदि के नियामक) गण (भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, आदि गण) उणादि (नामक प्रकरण) लिंगानुशासन (पु०, स्त्री लि०, न० पु० का निर्णय करने वाला प्रकरण) आगम, प्रत्यय, आदेश इन सबको उपदेश के नाम से कहा जाता है। पाणिनि का प्रथम कथन अर्थात् उच्चारण चौदह सूत्र हैं। अतः इनके अन्तिम वर्णों की इत्संज्ञा होती है।

सूत्रष्वित—सूत्रों में न दिखाई पड़ने वाले पदों की अनुवृत्ति सब कह दूसरे सूत्रों से कर लेनी चाहिये।

वास्तविकता यह है कि पाणिनि ने विस्तार एवं पुनरुक्ति के भय से जिस पद का एक बार उच्चारण (पाठ) कर दिया फिर उसका उच्चारण नहीं किया। परन्तु ऐसे पदों की आवश्यकता पड़ने पर अन्य सूत्रों से ग्रहण कर लेना चाहिये। यह अनुवृत्ति आवश्यकता पड़ने पर पूर्ववर्ती सूत्रों से तथा आगे आने वाले समीपवर्ती सूत्रों से ग्रहण की जाती है। उदाहरणार्थ "उपदेशेऽजनुनासिक-इत्" सूत्र से "हलन्त्यम्" में 'उपदेशे" की अनुवृत्ति ग्रहण की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लोपसंज्ञा सूत्रम्)

२. अदर्शनं लोपः १।१।६०।।

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

३. तस्य लोपः १।३।६।।

तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

अदर्शनं लोपः—प्रसक्त अर्थात् प्रस्तुत का न दिखाई पड़ना ही लोप कहा जाता है अर्थात् उपस्थित वस्तु का दिखाई न देना, सुनाई देने वाले शब्द का सुनाई न देना लोप कहा जाता है।

तस्य लोपः—उसका अर्थात् इत्संज्ञक वर्ण का लोप होता है अर्थात् **"उपदेशेऽजनुनासिक इत्"** **"हलन्त्यम्"** आदि सूत्रों से जिस वर्ण की इत्संज्ञा होती है, उस वर्ण का लोप हो जाता है। जैसे अ इ उ ण्, ऋलृक् आदि में ण्, क् आदि के अ की इत्संज्ञा होने से **"तस्य लोपः"** से "अ" का लोप हो गया है। इसलिये ण्, क् आदि ण्, क् (हल्) हो गया है।

अब यह शंका उत्पन्न होती है कि जब ण् के "अ" की इत्संज्ञा करके लोप करना ही इष्ट था तो फिर ण, क आदि का पाठ ही क्यों किया गया है ? इसका समाधान यह है ण, क आदि के अकार की इत्संज्ञा एवं लोप करके पाठ करने में फल अण्, अक्, अच् आदि प्रत्याहार सिद्ध करना है।

इसका आशय यह है कि अ इ उ ण्, ऋलृक् आदि में अन्तिम वर्णों की इत्संज्ञा करके लोप हो जाता है जिससे ण्, क्, च् आदि लुप्त (अदृश्य) हो जाता है अर्थात् प्रत्याहार के अन्तर्गत अन्तिम हल् वर्णों का ग्रहण नहीं किया जाता है। इसीलिये "अण्" प्रत्याहार में ण् का लोप होने से अ, इ, उ का ही परिज्ञान होता है। अतः ण्, क्, च् आदि के पाठ और इत्संज्ञा का फल- प्रत्याहार सिद्धि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रत्याहारसंज्ञासूत्रम्)

४. आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽण् इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवमच्हलित्यादयः।

आदिरन्त्येनसहेता—आदि और इत्संज्ञक अन्तिम वर्ण के सहित तथा मध्य में आने वाले वर्णों की प्रत्याहार संज्ञा होती है। जैसे अण् यह अ, इ, उ का बोध कराता है। इसी प्रकार "अल्" अ से लेकर समस्त स्वर और समस्त व्यंजनों का (हल् के ह तक का) बोध होता है।

इन चौदह सूत्रों का आदि अक्षर और इत्संज्ञक अन्तिम वर्ण के साथ जो शब्द बनता है उसे प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरण के लिये "अच्" अ इ उ ण् का "अ" और ऐ औ च् के च् के संयोग से अच् बनता है। इस अच् को प्रत्याहार कहते हैं और अच् के अन्तर्गत आने वाले स्वरों का भी अच् प्रत्याहार से बोध होता है। अइउण् आदि चौदह सूत्रों से ४२ प्रत्याहार बनते हैं।

१. **अण्**—अइउण् (अ, इ, उ) को अण् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे गूढः में गुह् + क्त→त→ध→ढ (होढः से ह् को ढ्) और **ढोडेलोपः** सूत्र से ढ् का लोप होने पर ढलोपेपूर्वस्यदीर्घोऽणः सूत्र से गु के उ को दीर्घ "ऊ" होता है जिससे गूढः निष्पन्न होता है।

२. **अक्**—अ इ उ ण्, ऋलृक् (अ, इ, उ, ऋ, लृ) को अक् प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरणार्थ **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से दैत्यारिः, श्रीशः आदि में अ + अ, इ + इ, उ + उ, ऋ + ऋ, लृ + लृ को दीर्घ होता है।

३. **अच्**—अइउण् ऋलृक्, एओङ् ऐऔच् (अ इ उ ऋ ल ए ओ ऐ औ) को अच् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे इकोयणचि सूत्र में इक् के स्थान पर यण् होता है। अच् आगे होने पर, जिससे सुद्ध्युपास्यः मध्वरिः, धात्रंशः, लाकृतिः आदि प्रयोगों की सिद्धि होती है।

४. **अट्**—अइउण्, ऋलृक्, ए ओङ्, ऐ औच्, हयवरट् (अ, इ, उ, ऋ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र) को अट् प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरणार्थ शश्छोऽटि सूत्र से अट् प्रत्याहार के वर्णों के आगे होने पर श् को छ् होता है। जैसे तच्छिवः इत्यादि।

५. अण्—अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, औ, ह, य, व, र, ल) को अण् प्रत्याहार कहते हैं। यहां अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र के नियमानुसार लण् से ण् तक अण् प्रत्याहार माना जाता है।

६. अम्—अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न) को अम् प्रत्याहार कहते हैं जैसे **"पुमः खय्यमपरे'** सूत्र से पुंस्कोकिलः में रूत्व आदि का विधान किया जाता है।

७. अश्—अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) को अश् प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरणार्थ "भोभगोअघो अपूर्वस्य योऽशि" सूत्र के उदाहरण भी देवा + इह, भगो नमस्ते आदि में अश् प्रत्याहार का वर्ण आगे होने के कारण भोस्, भगोत् आदि के स् को य होने पर लोप हो जाता है।

८. अल्—अइउण्, को अ से लेकर हल् के ह तक समस्त स्वर और व्यंजन का अल् प्रत्याहार द्वारा बोध होता है। उदाहरणार्थ अलोऽन्त्यस्य सूत्र के माध्यम से अन्तिम वर्ण के स्थान पर आदेश, लोप आदि कार्य होते हैं।

९. इक्—इउण्, ऋलृक्, (इ, उ, ऋ, लृ) को इक् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "इकोयणचि" सूत्र में इक् अर्थात् इ, उ, ऋ, लृ के स्थान पर अच् आगे होने पर य्, व्, र्, ल् होते हैं।

१०. इच्—इउण्, ऋलृक्, एओङ, ऐऔच् (इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ) को इच् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **नादिचि** अकारान्त शब्दों से इच् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर सवर्ण दीर्घ (अकः सवर्णे दीर्घः) नहीं होता है। जैसे 'रामौ' में सवर्ण दीर्घ न होकर वृद्धि हो गई है।

१३. इण्—इउण्, ऋ, लृक्, एओङ, ऐऔच्, हयवरट्, लण् (इ, उ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल) को इण् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "इण: षः" सूत्र से जिगमिषति आदि में षत्व होता है।

१२. उण्—उण्, ऋलृक् (उ, ऋ, लृ) को उण प्रत्याहार कहते हैं जैसे उगिदचां "सर्वनामस्थानेचासम्बुद्धौ" सूत्र के उदाहरण भवान् आदि इत्संज्ञा होने से दीर्घ का विधान किया जाता है।

१३. एङ्—ए, ओङ् (ए, ओ) को एङ् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "एङ: पदान्तादति" सूत्र के उदाहरण में हरेऽव विष्णोऽव में ए, ओ के अन्त में होने के कारण हरे विष्णो को एङन्त कहते हैं।

१४. एच्—एओङ्, ऐऔच् (ए, ओ, ऐ, औ) को अच् प्रत्याहार कहते है। जैसे "एचोऽयवायावः" में हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः आदि में ए, ओ ऐ, औ को क्रम से अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होता है।

१५. ऐच्—ऐऔच् (ऐ, औ) को ऐच् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "वृद्धिरादैच" सूत्र के उदाहरण कृष्णैकत्वम्, गंगौधः आदि में ऐच् की वृद्धि संज्ञा होने से वृद्धिरेचि से वृद्धि होती है।

१६. हश्—हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडद (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) को हश् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "हशि च" सूत्र से शिवोवन्द्यः में हश् प्रत्याहार का वर्ण आगे होने र्, उ हो जाता है। फिर गुण होकर शिवोवन्द्यः निष्पन्न होता है।

१७. हल्—हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ् घढधष्, जबगडदश् खफछठथचटतव्, कपय, शषसर्, हल् (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) को हल् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "हलन्त्यम्' सूत्र के नियम उपदेश में अन्तिम हल् व्यंजन) की इत्संज्ञा होती है, जिससे अण्, अक्, अच्, आदि प्रत्याहारों की सिद्धि होती है।

१८.यण्—यवरट् लण् (य, व, र, ल) को यण् प्रत्याहार कहते हैं जैसे 'इकोयणचि' सूत्र में इक् के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं जिससे सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्रंशः, लाकृतिः आदि की सिद्धि होती है।

१९. यम्—यवरट्, लण्, ञमङणनम् (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न) को यम् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "हलोयमाँ यमि लोपः" सूत्र से आदित्यं में आदित्यो देवताऽस्येति, आदित्य + ण्य→ य यस्येति च" सूत्र से य की अ का लोप होने पर (हलोयमां यमि लोपः सूत्र से) य् का लोप हो जाता है जिसके आदित्य आदित्यम् निष्पन्न होता है।

२०. यञ—यवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ, (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ) को यञ् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "अतो दीर्घो यञि" सूत्र से "भवामि" में अदन्त भव से यञ प्रत्याहार का म वर्ण आगे होने से दीर्घ हो जाता है। जिससे "भवामि" निष्पन्न होता है।

२१. यय्—यवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष् जबगडदश् खफछठथचटतव्, कपय् (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प को यय् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" सूत्र से "शान्तः" में यय् प्रत्याहार का वर्ण आगे होने के कारण अनुस्वार को पर सवर्ण "न" हो जाता है।

२२. यर्—यवरट्, लण्, अमङणनम्, झभञ्, घढधष, जबगडदश् खफछठथचटतव् कपय्, शषसर् (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष. स) को यर् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" सूत्र से त्वङ करोषि, त्वं करोषि, इत्यादि प्रयोगों में यर् प्रत्याहार का वर्ण आगे होने के कारण विकल्प से अनुस्वार को परसवर्ण हो जाता है।

२३. वश्– वरट्, लण, अमङणनम् झभञ्, घढधष, जबगडदश् (व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) को वश् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "नेडवशिकृति" वश् प्रत्याहार के वर्ण आने आगे पर कृदन्तीय प्रत्यय होने पर इट् का आगम नहीं होता है। इसीलिये—शॄ धातु से मनिन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यय होने पर इट् का आगम नहीं होता है। जिससे सुशर्मा प्रथमा एकवचन में निष्पन्न होता है।

२४. **वल्**—ञरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् (व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) को वल् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे '**लापोव्योर्वलि**' सूत्र के उदाहरण से प्राप्त होता है।

२५. **रल्**—रट् लण्, ञमङणनम्, झभञ, घढधष् जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् (र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ' ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ. छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) को रल् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे '**रलोव्युपधादधलादेः संश्च**' सूत्र से उ और ई हैं उपधा में जिससे उसके हलन्त रल् प्रत्याहार के वर्णों के क्त्वा और सन् प्रत्यय विकल्प से कित् होते हैं जिसके परिणामस्वरूप रूरुचिषते में कित होने पर गुण नहीं होता है और पक्ष के गुण होने पर रूरोचिषते बनता है।

२६. **मय्**—मङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव् कपय् (म, ड, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, क, प) को मय् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे—'**मयउञो वो वा**' मय् प्रत्याहार के वर्ण की उकार को व् विकल्प से होता है। उदाहरणार्थ '**किम्बुक्तम**' में किमु + उक्तम् में उ को विकल्प से उ को व् हो जाता है।

२७. **ङम्**—ङणनम् (ङ, ण, न) को ङम् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे 'ङमो ह्रस्वादचिङमुण् नित्यम्' ह्रस्व ङम् प्रत्याहार के वर्णों से आगे स्वर आने पर क्रमशः ङमुट्, णुट्, नुट्, का आगम होता है। जैसे प्रत्यङङात्मा सुगण्णीश इत्यादि।

२८. **झष्**—झभञ् घढधष्, (झ, भ, घ, ढ, ध) को भष् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे—'एकाचो वशोभष् झषन्तस्य स्ध्वोः' सूत्र से गर्धप्=गर्धभमाचष्टे इति गर्द भयति, फिर क्विप् प्रत्यय होता है जिसका पूर्ण लोप हो जाता है गर्दभ् की द को एकाचो इत्यादि सूत्र से द को ध हो जाता है।

२९. **झश्**—झभञ, घढधष् (जबगडदश् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द,) को झश् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे '**झलां जश झशि**' झल् प्रत्याहार के वर्णों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण हों झश् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर। उदाहरणार्थ—मद्ध्वरिः में मध्ध्व् + अरिः की दशा में प्रथम झल् ध् से झश् द्वितीयध् को जश् प्रत्याहार का द् वर्ण हो जाता है।

३०. झय्—झभञ् घढधष् जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प) को झय् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **"झयो होऽन्यतरस्याम्"** सूत्र से वाग्घरिः में झय् क् से ह् को विकल्प से पूर्व सवर्ण घ् हो जाता है।

३१. झर्—झभञ् घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर् (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स) झर् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **"झरो झरि सवर्णे"** सूत्र से झर् प्रत्याहार से सवर्णी झर् प्रत्याहार के वर्ण आगे आने पर सवर्णी झर् का लोप हो जाता है जैसे उत्थानम् में उद् थ् थानम् की दशा में थ् का लोप हो जाता है जिससे उत्थानम् निष्पन्न होता है।

३२. झल्—झभञ् घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श ष, स, ह) को झल् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **झलां जश् झशि**=झल् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण होते हैं। झश् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर, उदाहरणार्थ मध् ध् व् + अरिः इस स्थिति में प्रथम ध् झल् को जश् 'द्' होती है आगे द्वितीय ध होने पर।

३३. भष्—भञ्, घढधष् (भ, घ, ढ, ध) को भष् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "एकाचोवशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः" सूत्र से गधप् में वश् द् को भष् ध् हो गया।

३४. जश्—जबगडदश् (ज, ग, ड, द) को जश् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **"झलां जशोऽन्ते"** पदान्त झल् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण हों। उदाहरणार्थ बागीशः=वाक् + ईशः में झल् क् के स्थान पर जश् ग् हो जाता है।

३५. बश्—बगदडदश् (ब, ग, ड, द) को बश् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाचो "**बशो भष् झषन्तस्यस्ध्वोः**" सूत्र के द्वारा गर्धभ् शब्द से क्विप् होने पर वश् प्रत्याहार की झ आगे होने के कारण ध् को द् हो जाता है। जिससे गर्धप् शब्द प्रथमा एकवचन में बनता है।

३६. **खय्**—खफछठथचटतव्, कपय्, (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प) को खय् प्रत्याहार कहते हैं। "पुमः खय्यम् परे" पुम् शब्द से अम् परे खय् प्रत्याहार के होने पर पुम् की म् को रूत्व होता है जिससे पुंस्कोकिलः प्रयोग निष्पन्न होता है।

३७. **खर्**—खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स) को खर् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे **खरिच्** झलों के स्थान पर चर् प्रत्याहार के वर्ण हो यदि झल् के आगे खर् प्रत्याहार के वर्ण आये हों तो। जैसे षड् + **सन्तः** में झल् ड् को चर् ट् हो जाता है आगे खर् "स" होने से।

३८. **छव्**—छठथचटतव् (छ, ठ, थ, च, ट, त) को छव् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे नश्छव्य प्रशान् नकारान्त शब्दों से छव् प्रत्याहार के वर्ण आगे आने पर न् को रूत्व होता है। उदाहरणार्थ चक्रिंस्त्रास्यव निष्पन्न होता है।

३९. **चय्**—चटतव्, कपय्, (च, ट, त, क, प) को चय् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "चयो द्वितीयाशरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्" इस वार्तिक से प्राङ् क् षष्ठः में चय् शर् क् को द्वितीय अक्षर ख् हो जाता है।

४०. **चर्**—चटतव, कपय्, शषसर् (च, ट, त, क, प, श, ष, स) को चर् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "अभ्यासे चर्च" सूत्र से भभूव की स्थिति में भ को चर् व हो जाता है जिससे बभूव बनता है।

४१. **शर्**—शषसर् (श, ष, स) को शर् प्रत्याहार कहते हैं जैसे "वाशरि" शर् प्रत्याहार के आगे आने पर विसर्ग को स् विकल्प से होता है जैसे हरिः शेते, हरिश्शेते से दो शब्द निष्पन्न होते हैं।

४२. **शल्**—शषसर्, हल् (श, ष, स, ह) को शल् प्रत्याहार कहते हैं। जैसे "शल इगुपधादनिटः क्सः" से अधुक्षत" में दुह् धातु से लुङ् लकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वर भेद विवेचनम्)

५. ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुतः १।२।२७।।

ऊश्च ऊश्च ऊ ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच्क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् ।

स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा—

च्लि के स्थान पर शल् प्रत्याहार की इक् उपधा होने से (शल् इगुधा० इत्यादि सूत्र से, क्स हो जाता है। जिससे अधुक्षत बनता है।

इस प्रकार ४२ प्रत्याहारों का विवेचन किया गया है। इनमें किसी इत्संज्ञक वर्ण का ग्रहण नहीं किया गया है। क्योंकि कहा भी है कि "प्रत्याहारेषु इतां न ग्रहणम्" अर्थात् प्रत्याहारों में इत्संज्ञक वर्णो का ग्रहण नहीं किया जाता है।

ऊकालोलोऽजिति—एकमात्रिक, द्विमात्रिक, और त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय जिस किसी स्वर के उच्चारण में लगे स्वर की क्रम ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञा होती है।

ऊकालः + अच् + ह्रस्व, दीर्घप्लुतः। वां काल इव कालोयस्य सः ऊकालः। ऊकालः इव कालः यस्य सः यहां बहुव्रीहि समास में उत्तर पद काल का लोप हो गया है। ऊ के द्वारा एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक तीनों प्रकार के उकारों का ग्रहण किया गया है। ऊ का प्रथमा बहुवचन में वः बनता है और षष्ठी बहुवचन में वाम् बनता है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पाणिनि ने अ, इ को छोड़कर ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घ प्लुतः क्यों लिखा, ऊकालः के स्थान पर अकालः अथवा इकालः क्यों नहीं लिखा ? इसके उत्तर में प्रसिद्ध है कि पाणिनि ब्राह्ममुहूर्त्त में ज्यों ही सूत्र निर्माण करने बैठे त्यों ही कुक्कुट (मुर्गे) ने कुङ्कू की ध्वनि की उसी को सुनकर "ऊकालोऽज्" इत्यादि सूत्र का निर्माण किया और उ के तीन भेदों का कथन करके शेष, अ, इ आदि का भी ऊ के समान ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, भेद किया है। एकमात्रिक स्वर को ह्रस्व, द्विमात्रिक स्वर को दीर्घ और त्रिमात्रिक स्वर को प्लुत कहते है, जैसा कि कहा भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. उच्चैरूदात्तः १।२।२६॥

तालवादिषु सभागेषु स्थानेपूर्ध्वंभागे निष्पन्नोऽज्नुदात्त संज्ञः स्यात् ।

७. नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मा समाःह्रियते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात् ।

८. समाहारः स्वरितः १।२।३१॥

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

एकमात्रे भवे ह्रस्वो द्विमात्रोदीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रिकम् ॥

स प्रत्येकम्—वह ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, संज्ञक, अ, इ, उ, ऋ आदि स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से तीन भेद होते हैं ।

उच्चैरिति—तालु, कण्ठ, मूर्धा आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारित किये जाने वाले अ, इ, उ, ऋ आदि स्वर को अनुदात्त कहते हैं ।

नीचैरिति—तालु, कण्ठ, आदि स्थानों के नीचे वाले भाग से उच्चारण किये जाने वाले अ, इ, उ आदि स्वर को अनुदात्त कहते हैं ।

समाहार रीति—जिस स्वर के उच्चारण काल में उदात्त, अनुदात्त दोनों का मिश्रण प्राप्त हो रहा हो उसे स्वरित कहते हैं ।

विशेष—उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरों का लौकिक संस्कृत में ध्यान नहीं किया जाता है । केवल वैदिक साहित्य में उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरों का व्यवहार किया जाता है, वैदिक मन्त्रों में उदात्त के लिये कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता है । अनुदात्त स्वर की सूचना के लिये वर्ण के नीचे पड़ी रेखा (—) लगाई जाती है और स्वरित स्वर के सूचनार्थ वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा (|) लगाई जाती है ।

स नव—वह अ, इ, उ, ऋ आदि नव प्रकार का स्वर अनुनासिक, अननु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनुनासिक संज्ञा सूत्रम्)

९. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८।।

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणोवर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् ।
तदित्थं—अ इ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः ।
लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् ।
एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ।

नासिक भेद से दो प्रकार का होता है। उदाहरणार्थ निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

(अ, इ, उ, ऋ आदि के अठारह भेद बोधक चक्र)

अनुनासिक

(१) ह्रस्व उदात्त	(२) ह्रस्व अनुदात्त	(३) ह्रस्व स्वरित
(४) दीर्घ उदात्त	(५) दीर्घ अनुदात्त	(६) दीर्घ स्वरित
(७) प्लुत उदात्त	(८) प्लुत अनुदात्त	(९) प्लुत स्वरित

अननुनासिक

(१) ह्रस्व उदात्त	(२) ह्रस्व अनुदात्त	(३) ह्रस्व स्वरित
(४) दीर्घ उदात्त	(५) दीर्घ अनुदात्त	(६) दीर्घ स्वरित
(७) प्लुत उदात्त	(८) प्लुत अनुदात्त	(९) प्लुत स्वरित

इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ आदि स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और उदात्त, अनुदात्त भेद से प्रत्येक को अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत को उदात्त अनुदात्त, स्वरित से गुणा करने पर प्रत्येक के नौ भेद होते हैं और इनके भी अनुनासिक भेद से १८ भेद होते हैं।

मुखनासिकेति—मुख और नासिका (नाक) की सहायता से उच्चारण किये जाने वाले स्वरों को अनुनासिक कहते हैं अर्थात् प्रत्येक स्वर अथवा वर्ण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सवर्णसंज्ञासूत्रम)

१०. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९।।

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्ण-स्यात् ।

(वा०) ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ।

(वर्णानां स्थानानि)

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालू । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् नासिकानुस्वारस्य ।

उच्चारण मुख से होता है परन्तु अनुनासिक संज्ञक स्वरों का (अं आं, कां) उच्चारण नासिका की सहायता के बिना नहीं हो सकता है । अतः मुख और नासिका से बोले जाने वाले स्वर को अनुनासिक कहते हैं और अननुनासिक स्वरों का केवल मुख से ही उच्चारण हो सकता है । नासिका के सहयोग की आवश्यकता नहीं रहती है । ऐसे स्वरों को अननुनासिक अथवा निरनुनासिक कहते हैं ।

तदित्थम्—तो इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ इन सभी वर्णों में से प्रत्येक के १८ भेद होते हैं ।

लृवर्णस्येति—लृ वर्ण के केवल १२ भेद होते हैं क्योंकि लृ को दीर्घ नहीं होता है । अतः दीर्घ के ६ भेद कम हो जाते हैं । अतः लृ वर्ण को दीर्घ नहीं होता है ।

एचामपि—ए, ओ, ऐ, ओ के भी १२ भेद होते हैं क्योंकि ए, ओ, ऐ, औ को ह्रस्व नहीं होता है । अतः ह्रस्व के उदात्त आदि छः भेद कम हो जाते हैं जिससे ए, ओ, ऐ, औ के बारह ही भेद होते हैं ।

तुल्यास्येति—तालु, कण्ठ आदि स्थान और आभ्यन्तर ये दोनों एक हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस जिस वर्ण के उन समान स्थान और समान आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्ण की परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।

ऋलृवर्णयोरिति—ऋ, लृ, वर्णों की आपस में सवर्ण संज्ञा होती है।

यहां शंका उत्पन्न होती है कि ऋ का स्थान मूर्धा और लृ का स्थान दन्त है अर्थात् स्थान में भेद होने पर भी सवर्ण संज्ञा का विधान क्यों किया है ? इस प्रश्न के समाधानार्थ 'अकः सवर्णे दीर्घ' में फल देखा जा सकता है। सभी वर्णों के स्थान का विवेचन निम्न प्रकार है:—

(१) अ, कवर्ग अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्गों का कण्ठ स्थान है अर्थात् इन वर्णों की ध्वनि कण्ठ से ध्वनित होती हुई मुख से बाहर निकलती है। अतः इनका उच्चारण स्थान कण्ठ है।

(२) इ, चवर्ग अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ, य, श इन वर्णों का उच्चारण स्थान तालु है।

(३) ऋ, टवर्ग अर्थात ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष इन वर्णों का उच्चारण स्थान मूर्धा है।

(४) लृ, तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल, स इनका उच्चारण स्थान त दन्त है

(५) उ, पवर्ग अर्थात् प, फ, ब, भ, म और उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है।

(६) ञ, म, ङ, ण, न का उच्चारण स्थान नासिका भी है।

(७) ए, ऐ का कण्ठ और तालु उच्चारण स्थान है।

(८) ओ, औ का कण्ठ और ओष्ठ उच्चारण स्थान है।

(९) व का दन्त और ओष्ठ उच्चारण स्थान है।

(१०) जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वा की मूल है।

(११) अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

उपध्मानीय उसे कहते हैं जो कभी-कभी प और फ से पहले अर्ध विसर्ग के रूप में (≍) लगाई जाती है। जैसे कः फलति का क≍ फलति भी हो जाता है। उपध्मानीय का चिन्ह ≍ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रयत्न विवेचनम्)

यत्नो द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च ।

आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात् तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानानाम् । ईषदविवृतमूष्मणाम् विवृतं स्वराणाम् ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव ।

जिह्वामूलीय उसे कहते हैं जो कभी क, ख के योग में अर्ध विसर्ग के रूप में लगाई जाती है उसे जिह्वामूलीय कहते हैं । उदाहरणार्थ कः खादति का क≍ खादति, कः करोति का क≍ करोति होता है । जिह्वामूलीय का चिन्ह (≍) है ।

वर्णों का स्थानबोधक चक्र

स्थान	वर्ण
(१) कण्ठ	अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह (:)
(२) तालु	इ, च, छ, ज, झ, ञ, य, श
(३) मूर्धा	ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष
(४) ओष्ठ	उ, उपध्मानीय प, फ, ब, भ, म
(५) दन्त	लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स
(६) नासिका	ञ, म, ङ; ण, न, अनुस्वार
(७) कण्ठ, तालु	ए, ऐ
(८) कण्ठ, ओष्ठ	ओ, औ
(९) दन्त, ओष्ठ	व
(१०) जिह्वामूल	जिह्वामूलीय

(आभ्यान्तर और बाह्य प्रयत्नों का विवेचन करते हैं)

यत्नो द्विधा—प्रयत्न दो प्रकार का होता है—

(१) आभ्यान्तर और (२) बाह्य ।

आद्यः— आद्यः अर्थात् पहला (आभ्यान्तर) प्र त्न (१) स्पृष्ट,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) ईषत्स्पृष्ट, (३) ईषद्विवृत, (४) विवृत और (५) संवृत भेद से पांच प्रकार का होता है।

वर्णों के उच्चारण में एक विशेष प्रकार का व्यापार करना होता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह प्रयत्न (१) आभ्यान्तर और (२) बाह्य भेद से दो प्रकार का होता है।

(१) **स्पृष्टम्**—उनमें जिन वर्णों की स्पर्श संज्ञा होती है, उन वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है।

(२) **ईषत्स्पृष्ट**—जिन वर्णों की अन्तःस्थ संज्ञा होती है, उनका ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है।

(३) **ईषद्विवृत**—जिन वर्णों की ऊष्माण संज्ञा होती है, उनका ईषद्-विवृत प्रयत्न होता है।

(४) **विवृत**—स्वरों का विवृत प्रयत्न होता है।

(५) **संवृत**—ह्रस्व 'अ' का उच्चारण समय में संवृत प्रयत्न होता है परन्तु प्रक्रिया अर्थात् शब्द सिद्धि के प्रसंग में 'अ' का विवृत ही प्रयत्न होता है।

(१) **स्पृष्ट**—तालु, कण्ठ आदि स्थानों को जिन वर्णों के उच्चारण काल में जिह्वा पूर्ण स्पर्श करती है, उन वर्णों की स्पर्श संज्ञा और स्पृष्ट प्रयत्न होता है।

(२) **ईषत्स्पृष्ट**–जिन वर्णों के उच्चारण काल में जिह्वा, तालु, कण्ठ आदि स्थानों को कुछ ही स्पर्श करती है, उन वर्णों का ईषत्स्पृष्ठ प्रयत्न और अन्तः-स्थ संज्ञा होती है।

(३) **ईषद्विवृत** –जिन वर्णों के उच्चारण काल में जिह्वा, तालु, कण्ठ आदि स्थानों से कुछ दूर रहती है, उन वर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न और ऊष्माण संक्षा होती है।

(४) **विवृत**—जिन वर्णों के उच्चारण काल में जिह्वा, तालु, कण्ठ आदि स्थानों से दूर रहती है, उन वर्णों का विवृत प्रयत्न और स्वर संज्ञा होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बाह्य प्रयत्न विवेचनम्)

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादोघोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति । खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च । हशः संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीय चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः ।

अर्थात् अ, इ, उ आदि स्वरों का विवृत प्रयत्न होता है ।

(५) **संवृत**—जिन वर्णों के उच्चारण काल में जिह्वा, तालु, कण्ठ आदि स्थानों से दूर नहीं अर्थात् समीप रहती है, उन वर्णों का संवृत प्रयत्न होता है अर्थात् 'अ' का संवृत प्रयत्न होता है । केवल शब्द सिद्धि की दशा में 'अ' का विवृत प्रयत्न ही होता है ।

आभ्यन्तर प्रयत्नबोधक चक्र

वर्ण	संज्ञा	प्रयत्न
क से लेकर म तक	स्पर्श	स्पृष्ट
य, व, र, ल	अन्तःस्थ	ईषत्स्पृष्ट
श, ष, स, ह	ऊष्माण	ईषद्विवृत
इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ ऐ, औ	स्वर	विवृत
'अ'	स्वर	संवृत
प्रक्रिया दशा में 'अ'	स्वर	विवृत

बाह्यप्रयत्नस्तु—बाह्य प्रयत्न तो ११ प्रकार का होता है । (१) विवार, (२) संवार, (३) श्वास, (४, नाद, (५) घोष, (६) अघोष, (७) अल्पप्राण (८) महाप्राण, (९) उदात्त, (१०) अनुदात्त और (११) स्वरित ।

खर् प्रत्याहार के वर्णों का (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष स, वर्णों का) विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विश्वनाथ स्मृति संग्रह

हश् प्रत्याहार के वर्णो का (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द इन वर्णों का) संवार, नाद, घोष प्रयत्न होता है।

वर्णों के (कबर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तबर्ग, पवर्ग के) प्रथम, तृतीय, पञ्चम वर्णों का (क, च, ट, त, प, ग, ज, ड, द, व, ङ, ञ, ण, न, म) य, व, र, ल इन वर्णों का अल्पप्राण प्रयत्न होता है।

वर्णों के (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के)दूसरे, चौथे वर्ण अर्थात् ख, छ, ठ, थ, फ और शल् प्रत्याहार के वर्णों का अर्थात् श, ष, स, ह का महाप्राण प्रयत्न होता है।

यहां बाह्य प्रयत्न के आठ भेदों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। शेष उदात्त, अनुदात्त स्वरित प्रयत्न केवल स्वरों के ही होते हैं जिनका वर्णन "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः" सूत्र के प्रसंग में किया जा चुका है। अतः यहां नहीं किया है।

8239

बाह्य प्रयत्नबोधक चक्र

वर्ण	प्रयत्न
ख, फ, छ, थ, च, ट, त, क, प श, ष, स	विवार श्वास, अघोष
ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ़, ध, ज, ब, ग, ड, द	संवार नाद, घोष
क, च, ट, त, प, ग, ज, ड, द, ब, ङ, ञ, ण, न, म, य, व, र, ल	अल्पप्राण
ख, छ, ठ, थ, फ, घ, झ, ढ, ध, म, श ष, स, ह	महाप्राण
अ, इ, उ, ऋ लृ, ए, ओ, ऐ, औ	उदात्त, अनुदात्त, स्वरित

विशेष—वर्णों के मुख से निकलते समय गले के विकसित होने को "विवार "कहते हैं।

वर्णों के उच्चारण काल में कण्ठ का संकुचित होना "संवार" कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादयो मावसानाः स्पर्शाः यणोऽन्तःस्थाः। शल ऊष्मणः। अच स्वराः। क⌣ख इतिकखाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीय ⌣प⌣फ इति पफाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः 'अं अः' इत्यच परावनुस्वारविसर्गौ।

जिन वर्णों के उच्चारण काल में श्वास क्रिया की गति चलती हुई प्रती होती है, उस श्वास की गतिशीलता को श्वासानुप्रदान अथवा श्वास यत्न कहते हैं।

जिन वर्णों के उच्चारण के पश्चात् भी नाद ध्वनि होती रहती है, उ वर्णों को नाद प्रयत्न अथवा नादानुप्रदान कहते हैं।

जिन वर्णों के उच्चारण में गूंज सी उत्पन्न होती है, उन वर्णों का 'घोष' प्रयत्न होता है।

जिन वर्णों के उच्चारण में गूंज सी उत्पन्न नहीं होती है, उन वर्णों का **अघोष** प्रयत्न होता है।

जिन वर्णों के उच्चारण में कम वायु के वेग की आवश्यकता होती है, उ वर्णों का **अल्प प्राण** प्रयत्न होता है।

इसके विपरीत जिन वर्णों के उच्चारण में अधिक वायु वेग लगाना पड़ता है, उन वर्णों का **महाप्राण** प्रयत्न होता है।

कादय इति—क से लेकर म तक के वर्णों को (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म) स्पर्श कहते अथवा इन वर्णों की स्पर्श संज्ञा होती है।

यणोऽन्तःस्थाः—य, व, र, ल की अन्तःस्थ संज्ञा होती है।

शलऊष्माणः—शल् प्रत्याहार अर्थात् श, ष, स, ह की ऊष्माण संज्ञा होती है।

अचः स्वराः—अच् प्रत्याहार अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ को स्वर कहते हैं अथवा अचों की स्वर संज्ञा होती है।

⌣क⌣ख ईति—क, ख से पहले अर्ध विसर्ग के रूप में जो ध्वनि होती है उसे जिह्वामूलीय कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६६॥

प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् ।

अत्रैवाण परेण णकारेण । कु, चु, टु, तु, पु एते उदितः । तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवं लृकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् ।

अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाननुनासिकांस्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ।

इसी प्रकार प, फ से पूर्व अर्ध विसर्ग के समान जो ध्वनि होती है उसे उपध्मानीय कहते हैं ।

अं, अः—अ के ऊपर (˙) बिन्दी को अनुस्वार और अ के अन्त में (:) को विसर्ग कहते हैं ।

अणुदित्—इस सूत्र की वार्तिक में पठित प्रत्यय शब्द का अर्थ है कि जिसका विधान किया जाय, उसे प्रत्यय कहते हैं । अविधीयमान जो अण् अर्थात् जिसका विधान न किया गया वह अण् (अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, ल) और उदित (अर्थात् जिनके उकार की इत्संज्ञा) हो चुकी है ।

कु, चु, टु, तु, पु ये उदित हैं अर्थात् जिस वर्ण के उ की इत्संज्ञा होती है, उसे उदित् कहते हैं । अण् और उदित् की सवर्ण संज्ञा होती है ।

अत्रैव—यहां पर अर्थात् आगे की णकार तक अण् प्रत्याहार का ग्रहण किया जाता है अर्थात् यहां लण् की णकार तक अण् प्रत्याहार का ग्रहण करना चाहिये ।

कु, चु, टु, तु, पु को उदित कहते हैं ।

तदेवम्—तो इसी प्रकार 'अ' के अठारह भेद होते हैं अथवा अ अठारह प्रकार का होता है, और इसी प्रकार इ, उ के भी अठारह भेद होते हैं । ऋ के तीस भेद होते हैं अर्थात् ऋ तीस प्रकार का होता है । इसी प्रकार लृ के भी तीस भेद होते हैं । ए, ओ, ऐ, औ अर्थात् एच् प्रत्याहार के वर्णों के बारह भेद होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२. परः सन्निकर्षः संहिता ।४।१०६।।

वर्णानामातिशियितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

१३. हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।७।।

अज्भिरव्यवहिता हलः सयोग संज्ञाः स्युः ।

१४. सुप्तिङन्तं पदम १।४।१३।।

सुबन्तं तिङन्तं त्र पदसंज्ञं स्यात् ।

इति संज्ञा प्रकरणम्

अनुनासिक, अननुनासिक भेद से य, व, ल के दो भेद होते हैं। अतः य, व, ल ये तीनों वर्ण अनुनासिक, अननुनासिक संज्ञक होते हैं ।

सन्निकर्षः सं०—वर्णों की अत्यन्त समीपता की संहिता संज्ञा होती है। संहिता संज्ञा का फल सुद्ध्युपास्यः आदि प्रयोगों की सिद्धि है।

हलोऽनन्तरा—अच् से रहित अर्थात् स्वर अ, इ, उ आदि के व्यवधान से रहित हल् वर्णों की संयोग संज्ञा होती है अर्थात् स्वर रहित वर्ण संयोग संज्ञक होता है जैसे मद्ध्वरि में द्, ध्, व् की संयोग संज्ञा होती है।

सुप्तिङन्तम्—सुवन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। तिङन्त तिङ् (तिप्, तस्, भ्भि) आदि विभक्तियां अन्त में हों जिनसे उनको तिङन्त कहते हैं अर्थात् क्रिया पदों को तिङन्त कहते हैं।

सुवन्त—सुप् (सु, औ, जस्) आदि विभक्तियां जिसके अन्त में हों उनको सुबन्त कहते हैं अर्थात् रामः, रामौ, रामाः, रमा, रमे, रमाः, पुस्तकं, पुस्तके पुस्तकानि को सुबन्त कहते हैं अथवा शब्द रूपों को सुवन्त कहते हैं। तिङन्त से पठति, पठत , पठन्ति, सेवते, सेवेते. सेवन्ते आदि क्रिया पदों को समझना चाहिये। अतः सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

इति तंज्ञा प्रकरणम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सन्धि प्रकरणम्

अच् सन्धि

(यण्विधायक सूत्रम्)

१५. इको यणचि ६।१।७७।।

इकः स्थाने यण स्यादचि संहितायां विषये । 'सुधी उपास्यः' इति स्थिते ।

१६. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६६।।

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यविहतस्य पूर्वस्य बोध्यम् ।

स्वर सन्धि को ही अच् सन्धि कहते हैं अर्थात् अ, इ, उ आदि स्वरों के परस्पर सन्धि सम्बन्धी नियमों का वर्णन होने से इस प्रकरण का नाम स्वर सन्धि रखा है ।

जब दो वर्ण अत्यन्त समीप आते हैं, तो उनके परस्पर मेल को सन्धि कहते हैं सन्धि शब्दों की होती है परन्तु जिन शब्दों में स्वरों का स्वर के साथ मेल होता है वहाँ स्वर संधि होती है जैसे "दैत्यारिः" में दैत्य + अरिः इस स्थिति में य की "अ" और "अरि" की "अ" के परस्पर मेल से (अ + अ = आ) हो जाता है । इसे स्वर सन्धि कहते हैं ।

संहिता—वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं । अत्यन्त समीपता से तात्पर्य यह है कि मध्य में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान न हो अतः शब्दों की अति समीपता को संहिता कहते हैं ।

इको०—इक् प्रत्याहार के (इ, उ, ऋ, लृ) वर्णों के स्थान पर यण् प्रत्याहार (य, व, र, ल) हों संहिता के विषय में यदि आगे (विषम) स्वर हो अर्थात् विषम स्वर आगे होने पर इ, उ, ऋ, लृ को क्रमशः य, व्, र्, ल् होते हैं, संहिता के विषय में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७. स्थानेऽन्तरमः १।१।५०॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ।

१८. अनचि च ८।४।४७॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वेन सु ध् ध् य् उपास्य इति जाते ।

इको यणचि—इस सूत्र में पठित 'इक' शब्द षष्ठयन्त है और यण् प्रथमान्त है, अचि शब्द सप्तम्यन्त है जिसका अर्थ है स्वर आगे होने पर। संहितायाम् शब्द भी सप्तम्यन्त है । यहां संहिता का पाठ अधिकार अर्थ में किया गया है ।

सुधी + उपास्यः इस स्थिति में यह शंका उत्पन्न होती है कि किस इक के स्थान पर यण् आदेश हों क्योंकि यहां इक् उ, ई, ऊ ये तीन हैं । अतः किस स्वर को यण् हो । इस शंका के समाधानार्थ अग्रिम सूत्र का प्रणयन किया गया है ।

तस्मिन्निति—सप्तमी के निर्देश से किया जाने वाला कार्य अन्य वर्णों के व्यवधान से रहित पूर्व वर्ण के स्थान में होना चाहिये अर्थात् सप्तम्यन्त पद के निर्देश से किये जाने वाला कार्य व्यवधान पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है, ऐसा समझना चाहिये ।

इसका तात्पर्य यह है कि किसी वर्ण से किसी वर्ण के आगे होने पर जो कार्य किया जाता है उसके बीच में कोई अन्य वर्ण नहीं होना चाहिये । **'इको यणचि'** सूत्र से इक् के स्थान में किये जाने वाला यण् रूप कार्य से आगे अच् का होना अनिवार्य है अतः ध् की ई से आगे उपास्यः की उकार अच् है । इससे यह निश्चित हुआ है कि सुधी + उपास्यः में धकार की ईकार को यण् हो क्योंकि इसी के आगे अच् उकार है ।

परन्तु ईकार एक है और यण् में य्, व्, र्, ल् चार वर्ण हैं तो ईकार के स्थान पर कौन यण् हो अर्थात् य्, व्, र्, ल् में एक कौन हो । इसके निर्णयार्थ निम्न सूत्र का प्रणयन किया गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

१९. **झलां जश् झशि ८।४।५३।।**

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ।

२०. **संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३।।**

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ।

२१. **अलोन्त्यस्य १।१।५२।।**

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते यणः प्रतिषेधो वाच्यः ।। सुद्युपास्यः । मद्ध्वरिः । धात्त्रंशः लाकृतिः ।

स्थानेऽन्त—प्रसंग होने पर अर्थात् एक के स्थान पर अनेक के आदेश होने की स्थिति में सदृशतम अर्थात् अत्यन्त समान आदेश होता है ।

यह समानता चार प्रकार की होती है । (१) स्थान (तालु, कण्ठ आदि उच्चारण स्थान), (२) अर्थ, (३) गुण और प्रमाण के द्वारा । तालु, कण्ठ आदि स्थान की समानता अधिक बलवती होती है । जैसा कि कहा भी है "यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः" । सुधी + उपास्य में ई को यण् य् होता है । क्योंकि ई का तालु स्थान है और यण्, य् का भी तालु स्थान है, अतः स्थान की समानता के कारण ई को य् होता है ।

अनचिच—अच् प्रत्याहार अर्थात् स्वर अ, इ, उ आदि से आगे यर् प्रत्याहार के वर्ण को (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, झ, भ, घ, ढ, ध, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स) को विकल्प से द्वित्व होता है । परन्तु यर् के आगे अच् न हो अच् से यर् हो ।

द्वित्व से तात्पर्य है एक वर्ण, को दो वर्ण वा विभाषा, अन्यतस्याम् शब्द से विकल्प का अर्थ प्रकट किया जाता है । विकल्प का अर्थ है कि कभी होने और कभी न होने वाले कार्य को विकल्प से अभिहित करते हैं ।

इस प्रकार सुध्य् + उपास्य→ इति स्थिति में अनचि सूत्र के अच् सु की उकार के आगे यर् ध् को द्वित्व होने पर सुध्, ध्, य् + उपास्य हो जाता है । इसके बाद अग्रिम सूत्रों का अवतरण करते हैं ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झलामिति—झल् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण हों, यदि आगे झश् प्रत्याहार के वर्ण आगे हों। अतः सुध् ध् य् + उपास्यः इस स्थिति में झल् प्रथम धकार को जश् दकार होता है, द्वितीय ध् जश् आगे होने के कारण। द्वितीय धकार से आगे य् झश् नहीं है। अतः द्वितीय ध् को द् नहीं हुई, प्रथम ध् को द् होता है। अतः सुद्ध् य् + उपास्य यह बनता है। अब इस दशा में—

संयोगान्तः— संयोगान्त पद के अन्तिम पद का लोप होता है यहां "पदस्य" ८।१।१६ सूत्र की अनुवृत्ति ग्रहण होने से **"संयोगान्तस्य लोपः"** का अर्थ है कि संयोग है, अन्त में जिस पद के उस पद (संयोगान्त) का लोप होता है परन्तु **"अलोऽन्त्यस्य"** सूत्र के अनुसार संयोगान्त "द्, ध्, य्" के अन्तिम वर्ण य् का लोप प्राप्त होता है।

अलोऽन्त्यस्य—षष्ठी विभक्ति से युक्त पद से कहा गया आदेश उस षष्ठ्यन्त पद के अन्तिम वर्ण के स्थान में होता है। इस प्रकार इस सूत्र के नियमानुसार "संयोगान्तस्य लोपः" सूत्र से सुद्ध् य् + उपास्यः में य् का लोप प्राप्त होने पर—

"यणः प्रतिषेधो वाच्य" यण् प्रत्याहार के वर्णों का अर्थात् य, व, र, ल के लोप निषेध कहना चाहिये अथवा य, व, र, ल का लोप वर्जित है। अतः सुद्ध्य् + उपास्यः में य् का लोप नहीं होता है।

य् के लोप के निषेध हो जाने पर अज्झीनं "परेण संयोज्य" के अनुसार क्रमशः द्, ध्, य् आगे के वर्णों से मिल जाते हैं जिससे "सुद्ध्युपास्यः" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

सुद्ध्युपास्यः—(सुधी अर्थात् विद्वज्जनों के द्वारा आराधनीय विष्णु) सुधी + उपास्यः इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, "स्थानेऽन्तरतमः"** इन दो सूत्रों की सहायता से "इकोयणचि" सूत्र से सुधी की ईकार को यण् य् हो जाता है और फिर **"अनचिच"** सूत्र से ध को द्वित्व हो जाता है। **झलां** जश् झशि, सूत्र से पूर्वं धकार को दकार होने पर, **अलोन्त्यस्य** की सहायता से (तथा नियम से) द्, ध्, य् इस संयोगान्त पद के अन्तिम वर्ण य् का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोगान्तस्य लोपः सूत्र से लोप प्राप्त होता है, परन्तु "**यणः प्रतिषेधो वाच्यः**" इस वार्तिक से यण् प्रत्याहार के वर्ण का लोप नहीं करना चाहिये। इस नियम से य् के लोप का निषेध हो जाता है जिससे "सुद्ध्युपास्यः" यह शब्द निष्पन्न होता है।

धात्रंश—धातृ (ब्रह्मा का) अंशः। धातृ+अंशः। इस स्थिति में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** के नियम से तृ की ऋ को यण् (य्, व्, र्, ल्) प्राप्त होता है परन्तु **स्थानेऽन्तरतमः** सूत्र के ऋकार स्थानीय य् यण् होता है और ऋ और र् का मूर्धा स्थान होने के कारण स्थान की समानता से ऋ के स्थान पर र् होता है। **अनचिच** सूत्र से त् को द्वित्व होने पर धात्त्र्+ अंशः होता है। इस स्थिति में **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से र् का लोप प्राप्त होता है परन्तु "**यणः प्रतिषेधो वाच्यः**" इस वार्तिक से यण् र् का लोप निषेध हो जाता है। फिर क्रमशः स्वर्हीन वर्ण अग्रिम वर्ण से मिल जाते हैं जिससे **धात्रंशः** यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

मद्ध्वरिः—(मधु नामक दैत्य के अरि अर्थात् शत्रु अर्थात् विष्णु) मधु +अरिः। इस स्थिति में "**तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य**" स्थानेऽन्तरतमः इन दो सूत्रों की सहायता से **इकोयणचि** सूत्र से उपकार को व् यण् होता है। "**अनचिच**" सूत्र से ध् को द्वित्व और "**झलां जश झशि**" सूत्र से पूर्व धकार को दकार हो जाता है। मद्ध्व्+अरिः इस स्थिति में **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से व् का लोप प्राप्त होता है परन्तु "**यणः प्रतिषेधो वाच्यः**" इस वार्तिक से व् का लोप निषेध हो जाता है और क्रमशः स्वरहीन वर्ण अग्रिम वर्णों से मिल जाते हैं जिससे "मद्ध्वरिः" यह निष्पन्न होता है।

लाकृतिः -(लृकार के समान आकृति वाला) लृ+आकृतिः। इस दशा में **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य स्थानेऽन्तरतमः** इन दो सूत्रों के साहचर्य से इकोयणचि सूत्र से दन्तस्थानीय लृ के स्थान पर दन्त स्थानीय ल् हो जाता है जिससे "लाकृतिः" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार यण् सन्धि के अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ उदाहरण निम्न प्रकार प्रस्तुत हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. एचोऽयवायावः ६।१।७८॥

एचः क्रमाद् अय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ।

२३. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् ।

हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ।

प्रति + आह = प्रत्याह, मधु + अत्र = मध्वत्र ।

प्रति + उवाच = प्रत्युवाच, तानि + अपि = तान्यपि ।

दधि + आनय = दध्यानयः, मातृ + अंशः = मात्रंशः ।

लृ + अकारः = ल्कारः, पितृ + आकृतिः = पित्राकृति ।

गुरु + अर्थं = गुर्वर्थम्, मधु + अर्थं = मध्वर्थम् ।

एच इति—एच् प्रत्याहार के स्थान पर अर्थात् ए, ओ, ऐ, औ के स्थान पर क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हो यदि आगे स्वर हो तो ।

परन्तु इस सूत्र से यह स्पष्ट नहीं हो सका कि किस स्थान में किसका आदेश हो ? इसके समाधानार्थ निम्न सूत्र का निर्माण किया गया है—

यथा संख्यमिति—सम सम्बन्धी विधि को यथासंख्य कहते हैं अर्थात् जिनके स्थान पर आदेश होता है और जिनका होना है, उन दोनों की संख्या यदि समान हो तो क्रम से आदेश होता है अर्थात् प्रथम स्थानी के स्थान पर प्रथम आदेश और द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ स्थानी के स्थान पर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदेश होते हैं ।

यहां चार स्थानी ए, ओ, ऐ, औ, हैं और चार ही अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हैं । अतः क्रम से ए के स्थान पर अय् "ओ" के स्थान पर अव, "ऐ" के स्थान पर आय्, "औ" के स्थान पर आव् आदेश होता है । जैसे—

हरये—हरे + ए इस स्थिति में **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र के नियमानुसार "एचोऽयवायावः" सूत्र से ए के स्थान पर "अय्" आदेश होता । हर् + अय् + ए = हरये । इस प्रकार "हरये" निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४. वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७६।।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम् नाव्यम् । (वा) अध्वपरिमाणे च । गव्यूतिः ।

विष्णवे—विष्णों + ए इस स्थिति में **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र की सहायता से 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ के स्थान पर अव् आदेश होता है जिससे विष्णवे निष्पन्न होता है ।

नायकः—नै + अकः इस दशा में **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र के नियम से '**एचोऽयवायाव**' से ऐ को आय् हो जाता है । न् आय् + अकः = नायकः बनता है ।

पावकः—पौ + अकः इस दशा में **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र की सहायता से **एचोऽयवायावः**' सूत्र से क्रमशः औ को 'आव्' आदेश होता है । प् आव् + अक = पावकः यह बनता है ।

वान्तो यि०—यकार आदि प्रत्यय के आगे होने पर ओ और औ को क्रमशः अव् तथा आव् आदेश होवें । जैसे । गव्यम्, नाव्यम् ।

गव्यम्—गोर्विकारः गव्यम् = गो शब्द से '**गोपयसोर्यत्**' सूत्र से यत् प्रत्यय होता है जिससे गव्यम् निष्पन्न होता है । गो + यम् इस दशा में **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**' इस सूत्र की सहायता से 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से गो की ओ को अव् आदेश होता है क्योंकि यकारादि प्रत्यय यत् की य आगे परे हैं। ग् अव् + यम् = गव्यम् बनता है ।

नाव्यम्—नावा तार्यं। नाव्यम् = नौ शब्द से शक्यार्थ में यत् प्रत्यय होता है जिससे नाव्यम् बनता है । नौ + यम् इस दशा में यथा **संख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र की सहायता से वान्तो यि प्रत्यये सूत्र से यकारादि प्रत्यय यत् भी य आगे होने के कारण औ को आव् होता है न् आव् + यम् = नाव्यम् निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गुण संज्ञा सूत्रम्)

२५. अदेङ् गुणः१।१।२॥

अत् एङ च गुणसंज्ञः स्यात् ।

२६. तपरस्तत्कालस्य१।१।७०॥

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।

अध्वेति—रास्ते के परिमाण अर्थ में गो शब्द से यूति शब्द आगे आने पर 'ओ' के स्थान पर अव् आदेश होता है । जैसे गव्यूतिः ।

गव्यूतिः—गो + यूतिः इस दशा में 'अध्वपरिमाणे च' इस वार्तिक से मार्ग के परिमाणवाचक अर्थ के योग में गो शब्द की 'ओ' अव् आदेश होता है, जिससे गव्यूतिः निष्पन्न होता है । गव्यूतिः शब्द का अर्थ 'दो कोस' होता है ।

अदेङ् गुणः—अत् अर्थात् 'अ' और एङ् प्रत्याहार अर्थात् ए, ओ की गुण संज्ञा होती है अथवा 'अ', 'ए', 'ओ' को गुणा कहते हैं । जैसे उपेन्द्र, गङ्गोदकम् कृष्णर्द्धिः इत्यादि ।

तपरस्तात्कालस्य—'त' से परे (आगे) स्वर तथा स्वर से परे तकार हो ऐसा उच्चार्यमाण स्वर समान काल का ही बोधक होता है ।

यदि लघु 'अ' से आगे अथवा पीछे 'त' का प्रयोग किया गया है तो वह 'अ' के ६ भेदों का ही बोधक होता है । दीर्घ प्लुत आदि का बोधक नहीं होता है । समकाल (उच्चारण समय के समान समय) इसीलिये ह्रस्व अ की अपेक्षा दीर्घ 'आ' और प्लुत 'अ३' के उच्चारण में दुगना तथा तिगुना समय लगेगा । इसी प्रकार अन्यत्र भी तपरकरण की क्रिया समझनी चाहिये ।

'पहले 'अ' के १८ भेदों का निर्देश किया गया है परन्तु यहां सामान्य नियम का विशेष नियम के द्वारा अपवाद प्रदर्शित करते हुये कहा है कि यदि 'अ' आदि से परे त हो अथवा त से परे अ आदि हो तो वे समकाल के ही अर्थात् ६ भेदों के ही बोधक होते हैं । अदेङ् गुणः सूत्र में अकार से परे तकार हैं । अतः 'अत्' अर्थात् अकार के ६ भेदों का ही (यहां) बोध होता है अथवा 'अ' (ह्रस्व अकार की ही) की ही गुण संज्ञा होती है । इसी प्रकार एङ् (ए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गुणविधायकसूत्रम्)

२७. आद् गुणः ६।१।८७।

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः गङ्गोदकम् ।

ओ) त् से परे हैं । अतः छः प्रकार के ए, ओ की गुण संज्ञा होती है अर्थात् एकमात्रिक, द्विमात्रिक स्वर की (अ, ए ओ की) गुण संज्ञा होती है, त्रिमात्रिक की नहीं । इसीलिये तथा + इति = तथेति, गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् आदि में आ + इ और आ + उ को ए, ओ गुण हो जाता है परन्तु त्रिमात्रिक को गुण नहीं होता है अर्थात् आ३ + ए को गुण नहीं होता है । यद्यपि समानता के आधार से आ + ए को भी गुण होना चाहिये परन्तु तपर करण के विशेष नियम से त्रिमात्रिक को (आ३ + ए को) गुण नहीं होता है ।

आद् गुणइति—अवर्ण अर्थात् अकार से आगे स्वर आने पर पूर्व और आगे के स्वर को गुण एकादेश होता है । अ, ए, ओ को गुण संज्ञा से अभिहित किया गया है । जैसे उपेन्द्रः उप + इन्द्रः इस स्थिति में 'आद् गुण' सूत्र से पकार की 'अ' इन्द्रः की 'इ' को मिलाकर दोनों के स्थान पर 'ए' गुण होता है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि गुण अ, ए, ओ तीन हैं । अतः कौनसा गुण हो इसके समाधानार्थ 'स्थानेऽन्तरतमः' सूत्र के अनुसार स्थान की समानता से अ + इ को 'ए' गुण होता है क्योंकि 'अ' का कण्ठ स्थान है और इ का तालु स्थान है । कण्ठ तालु स्थानीय 'ए' ही है । अतः स्थान की समानता के कारण 'ए' ही गुण होता है जिससे उपेन्द्र प्रयोग निष्पन्न होता है ।

गङ्गोदकम्—गङ्गा + उद्कम् इस दशा में आद् गुणः सूत्र से आ + उ को स्थान की समानता से कण्ठ ओष्ठ स्थानीय 'ओ' गुण होता है । क्योंकि 'आ' का कण्ठ और उ का ओष्ठ स्थान है । अतः 'ओ' ही गुण होता है जिससे गङ्गोदकम् यह शब्द बनता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये । उदाहरणार्थं कुछ शब्दों को निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इत्संज्ञा विधायक-सूत्रम्)

२८. उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।१।२।

उपदेशेऽजनुनासिकोऽजित् संज्ञः स्यात् प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ।

२९. उरण् रपरः १।१।१।

ऋ इति त्रिशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः । सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः ।

रमा + ईशः = रमेशः, महा + इन्द्रः = महेन्द्रः, नग + इन्द्रः = नगेन्द्रः लङ्का + ईशः = लङ्केशः, चन्द्र + उदयः = चन्द्रोदयः, तव + उन्नतिः = तवोन्नतिः, पुरूष + उत्तमः = पुरुषोत्तमः, शिला + उच्चयः = शिलोच्चयः, भाग्य + उदयः = भाग्योदयः, विमल + उदकम् = विमलोदकम् इत्यादि ।

उपदेशइति—उपदेश में जो स्वर अनुनासिक हो उस स्वर की इत्संज्ञा होती है अथवा उपदेश काल में जो स्वर अनुनासिक होता है वह अनुनासिक स्वर इत्संज्ञक होता है ।

प्रतिज्ञेति—यहां स्वर के अनुनासिक होने और अनुनासिक न होने का प्रमाण केवल पाणिनि की प्रतिज्ञा है अर्थात् जिस स्वर के विषय में जहां पाणिनि ने अनुनासिक घोषित कर दिया है वह स्वर वहां अनुनासिक होगा और कुछ नही कहा है, वहां वह स्वर अनुनासिक नहीं होगा । सम्भव है पहले अनुनासिक का बोधक कोई चिन्ह लगाया जाता हो परन्तु अब वह चिन्ह सर्वथा लुप्त हो गया है । ब केवल पाणिनि का कथन (प्रतिज्ञा) ही प्रमाण है । जैसे रामः में राम + सु आता है । यहां उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है और स् को रुत्व विसर्ग हो जाते हैं । यहां सु की उकार अनुनासिक है । इसीलिये इत्संज्ञा होकर लोप हो गया है और रामेषु में 'सुप्' की 'सु' अनुनासिक नहीं है । इसीलिये उकार की इत्संज्ञा नहीं हुई और फिर लोप भी नहीं हो सका । अतः स्वर के अनुनासिक होने न होने का प्रमाण पाणिनि का कथन (प्रतिज्ञा) ही है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लण् सूत्रेति—उदाहरणार्थ लण् सूत्र के अकार की इत्सँज्ञा होती है। अतः लण् सूत्र के ल का अकार अनुनासिक है। हयवरट् के रकार से लण् के ल् तक र और ल प्रत्याहारों की सिद्धि होती है जिसके द्वारा अर्थात् लण् सूत्र में स्थित अकार के साथ उच्चार्यमाण रकार (र) और लकार (ल) दोनों का बोधक होता है।

लण् सूत्र के अकार की इत्संज्ञा करने का परिणाम र, ल प्रत्याहार की सिद्धि है जिससे परिणामस्वरूप कृष्णर्द्धिः, तवल्कारः आदि प्रयोगों की सिद्धि होती है।

उरण रपरः—ऋ तीस प्रकार का होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। ऋकार के स्थान पर जो अण् अर्थात् अ, इ, उ आदेश हो वह रपर होकर ही प्रवृत्त होगा अर्थात् ऋ के स्थान पर होने वाले अ, इ, उ के आगे र जुड़ जायेगा। र, ल प्रत्याहार की सिद्धि लण् सूत्र के अकार की इत्संज्ञा करके की गई है। अतः ऋ के स्थान पर होने वाले स्वर के आगे ल् जुड़ जायेगा। इस क्रिया को रपर और लपर कहते हैं। उदाहरणार्थ निम्न प्रकार देखिये—

कृष्णर्द्धि—कृष्ण + ऋद्धिः इस स्थिति में 'आद्गुणः' इस सूत्र के णकार की 'अ' और 'ऋ' के स्थान पर 'अ' गुण होता है 'उरण रपरः' इस सूत्र के नियमानुसार ऋ के स्थान पर होने वाला अ, इ, उ आदि स्वर के आगे र् हो जाता है जिसे रपर कहते हैं। अतः कृष्ण् + अर् + द्धिः हो गया। फिर स्वरहीन वर्ण अग्रिम वर्णों से मिल जाते हैं। इस नियम के अनुसार 'कृष्णर्द्धिः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

तवल्कारः—तव + लृकारः इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र के वकार के अकार और लृ के स्थान पर 'अ' गुण होता है। 'उरण रपरः' सूत्र के नियम से लपर होने से ल् और जुड़ जाता है। अतः अल् गुण समझा चाहिये जिससे तव् अल् + कारः। इस दशा में अच् से हीन वर्ण अग्रिम वर्ण से मिल जाते हैं। अतः 'तवल्कारः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये।

राज + ऋषिः = राजर्षिः, देव + ऋषिः = देवर्षिः,—महा + ऋषिः =

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०. लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ।

(अधिकारसूत्रम्)

३१. पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् स्यात् । हर इह, हरयिह । विष्ण इह, विष्ण विह ।

महर्षिः, बसन्त + ऋतुः = बसन्तर्तुः, ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः, परम + ऋतुः = परमर्तुः, गुण + ऋद्धिः = गुणर्द्धिः, मम + लृकारः = ममल्कारः, विप्र + ऋषिः = विप्रर्षिः ।

लोपः शाकल्येति०—अवर्ण है पूर्व में जिन वर्णों के उन वर्णों से अर्थात् पदान्त अवर्ण शब्द से य् व् का विकल्प से लोप हो जाता है । अश् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द में से किसी एक वर्ण के आगे होने पर यह शाकल्य नामक आचार्य का मत है ।

इस सूत्र में शाकल्य नामक वैयाकरण का उल्लेख किया गया है । अतः शाकल्य के मत में अवर्ण पदान्त शब्द से य् व् का लोप होता है । अश् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर परन्तु पाणिनि के मत में य् व् का लोप अभीष्ट नहीं है । इसीलिये उन्होंने य् व् के लोप का विधान विकल्प से वर्णन किया है । जैसे—

हरइह—हरे + इह स्थिति में 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' सूत्र की सहायता से 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अय् आदेश हो जाता है । हर् अय् + इह इस स्थिति में पदान्त अवर्ण हर शब्द से अश् प्रत्याहार का वर्ण 'इ' आगे होने पर शाकल्य के मत से ("लोप शाकल्यस्य" इस सूत्र से) य् का विकल्प से लोप हो जाता है । हरइह, पक्ष में अर्थात् य् के लोप के अभाव में हरयिह इस प्रकार दो रूप (१) हरइह, (२) हरयिह निष्पन्न होते हैं ।

विष्णइह – विष्णो + इह, इस स्थिति में "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" की सहायता से "एचोऽयवायावः" सूत्र से "ओ" को अव् आदेश हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लोपः शाकल्यस्य" सूत्र से शाकल्य ऋषि के मत में व् का लोप हो जाता है। अतः विष्ण इह बनता है परन्तु अन्य आचार्यों के मत से लोप इष्ट नहीं है। अतः उनके मत से अर्थात् लोप के अभाव पक्ष में विष्णविह रूप बनता है। लोप पक्ष में गुण की शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र से लोप के असिद्ध हो जाने पर व् की उपस्थिति से गुण नहीं होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये। जैसे—

विधौ + उदिते—विधाउदिते, विधावुदिते, तौ + उभौ = ताउभौ, तावुभौ गुरौ + उत्कः = गुराउत्कः, गुरावुत्कः इत्यादि।

पूर्वत्रासिद्धमिति—सवा सात अध्याय में पठित सूत्रों के प्रति त्रिपादी के सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादी में भी पूर्वशास्त्र के प्रति पर शास्त्र असिद्ध होता है।

पाणिनी ने व्याकरण के सूत्रों की रचना आठ अध्यायों में की है। जिस ग्रन्थ को अष्ठाध्यायी के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद होते हैं। प्रथम अध्याय से लेकर सात अध्याय और आठवें अध्याय का प्रथम पाद मिलाकर सवा सात अध्याय होते हैं जिसको सपाद सप्ताध्यायी कहा है। आठवें अध्याय के शेष तीन पादों को त्रिपादी कहा है। तीन पादों में सूत्रों के द्वारा कहे हुये कार्य पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध होता है अर्थात् पूर्व के प्रति परसूत्रों द्वारा किया गया कार्य असिद्ध होता है। असिद्ध का तात्पर्य यह है कि किया गया कार्य भी दृष्टिगोचर नहीं होता है अर्थात् अस्तित्वहीन हो जाता है।

"पूर्वत्रासिद्धम्"—यह अधिकार सूत्र है। इसकी आवश्यकता इसीलिये उपस्थित हुई कि जब हर + इह और विष्ण + इह आदि प्रयोगों में य् व् का लोप हो जाने पर गुण प्राप्त होता है तब इस सूत्र (पूर्वत्रासिद्धम्) से सवा सात अध्याय के अन्तर्गत पठित "आद्गुणः" यह सूत्र त्रिपाठी में पठित "लोपः शाकल्यस्य" के प्रति अर्थात् असिद्ध हो जाता है। यही इसका प्रयोजन है क्योंकि आद्गुण की दृष्टि में य् व् का लोप नहीं हुआ है। अतः गुण नहीं होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२. वृद्धिरादैच् १।१।१॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ।

३३. वृद्धिरेचि ६।१।८८॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् गङ्गौघः देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठयम् ।

वृद्धिरिति—आ, ऐ, औ की (आ और ऐच् प्रत्याहार की) वृद्धि संज्ञा होती है अर्थात् आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा होती है। गुण संज्ञा का अपवाद सूत्र है।

वृद्धिरेचि—अवर्ण से अच् प्रत्याहार के वर्ण ए, ओ, ऐ, औ के आगे आने पर पूर्व और पर दोनों स्वरों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश होता है। उदाहरणार्थ निम्न प्रयोग प्रस्तुत हैं—

कृष्णैकत्वम्—कृष्ण + एकत्वम् इस स्थिति में "वृद्धिरेचि" सूत्र से णकार की 'अ' और एकत्वम् की एकार के स्थान पर स्थान की सादृश्यता से ऐ वृद्धि होती है जिससे 'कृष्णैकत्वम् यह शब्द वनता है।

गङ्गौघः—गङ्गा + ओघ इस दशा से 'वृद्धिरेचि' सूत्र से ग की आ और ओघः की ओ को मिलाकर दोनों के स्थान पर स्थान की सादृश्यता से 'औ' वृद्धि होती है जिससे गङ्गौघः यह प्रयोग बनता है।

देवैश्वर्यम्—देव + ऐश्वर्यम् इस दशा में 'वृद्धिरेचि' सूत्र से स्थान की समानता से अ + ए को मिलाकर 'ऐ' की वृद्धि होती है जिससे देवैश्वर्यम् निष्पन्न होता है।

कृष्णौत्कठयम्—कृष्ण + ओत्कण्ठयम् इस दशा में 'वृद्धिरेचि' सूत्र से णकार की अ और ओत्कण्ठयम् की ओ को मिलाकर दोनों के स्थान पर औ वृद्धि होती है जिससे 'कृष्णौत्कण्ठयम्', यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण को समझना चाहिये जैसे—

तथैव, तवौष्ठः, तवैव, बनौषधि, परमैश्वर्यम्, परमौदार्यम् जलौघः इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४. एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९।।

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । उपैति । उपैधते । प्रष्ठौहः एजाद्योः किम् ? उपेतः । मा भवान् प्रेदिधत् ।

अपवाद—अपवाद से तात्पर्य यह है कि पूर्व से प्रसिद्ध नियम आदि के विपरीत नियम को अपवाद कहते हैं जैसे गङ्गौधः आदि में पूर्व नियम के अनुसार गुण प्राप्त होता है क्योंकि अवर्ण से आगे होने पर 'आद्गुणः' से गुण होता है। वह यहां भी गंगा पद अवर्ण और अच् 'अ' है परन्तु यदि ऐसा करेंगे तो वृद्धिरेचि आदि वृद्धि विधायक सूत्रों को भी अवकाश नहीं प्राप्त होगा जिससे वृद्धि विधायक सूत्र ही निष्प्रयोजन हो जायेंगे। अतः 'निरवकाशो विधिः अपवादो भवति' इस नियम के अनुसार अवकाशहीन वृद्धि गुण का अपवाद हो जाती है जिससे गंगौघः, तथैव, उपैति आदि में वृद्धि ही होती है, गुण नहीं होता है।

एत्येधत्यू०—अवर्णान्त शब्द से एजादि, इण् और एध् धातु के तथा ऊठ् के परे होने पर पूर्व और दोनों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। यह सूत्र पररूप और गुण का अपवाद है। जैसे—

उपैति उप + एति इस स्थिति में 'एत्येधत्यूठ्सु' सूत्र से पकारोत्तरवर्ती अवर्ण 'अ' से इण् धातु की 'ए' के आगे होने पर दोनों के स्थान पर ऐ वृद्धि एकादेश होता है जिससे 'उपैति' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

उपैधते—उप + एधते इस दशा में 'एत्येधत्यूठ्सु' सूत्र के प की अ और एध् की ए के स्थान पर (दोनों के स्थान पर) 'ए' वृद्धि एकादेश होता है जिससे 'उपैधते' यह प्रयोग बनता है।

प्रष्ठौहः—प्रष्ठ + ऊहः इस दशा में 'एत्येधत्यूठ्सु' इस सूत्र में ठकार की 'अ' और ऊह की ऊ के स्थान पर 'औ' वृद्धि होती है जिससे 'प्रष्ठौहः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

एजाद्योः किम्—इस सूत्र में 'एजाद्योः' इस पद का क्यों पाठ किया है? इसका अभिप्राय यह है कि यदि एज् आदि का पाठ न करते तो उपेतः आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् । अक्षौहिणी सेना ।

प्रादूहोढोढयेषैष्येषु । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः प्रैष्यः ।

ऋते च तृतीयासमासे ।

सुखेन ऋतः सुखार्तः तृतीयेति किम् ? परमर्तः ।

में भी वृद्धि हो जाती है, जो इष्ट नहीं थी । अतः उपेतः आदि में वृद्धि निषेधार्थक एज् आदि का पाठ किया गया है जैसे—

उपेतः—उप + इतः इस दशा में 'ऐजाद्योः' इस पद के पाठ करने से 'एत्येधत्यूठ्सु' सूत्र से वृद्धि नहीं होती है और आद्गुणः से अ + इ को ए गुण हो जाता है जिससे 'उपेतः' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

मा भवान्प्रेदिधत्—प्र + इदिधत् इस स्थिति में एजाद्योः के अभाव में एत्येधत्यूठ्सु से वृद्धि नहीं होती है और 'आद्गुणः' से अ + इ को मिलाकर 'ए' गुण होता है जिससे मा भवान् प्रेदिधत् यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

अक्षादूहि०—अक्ष शब्द से आगे ऊहिनी शब्द के आने पर पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । जैसे—

अक्षौहिणी—अक्ष + ऊहिनी इस स्थिति में 'अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्' इस वार्तिक से अक्ष शब्द की 'अ' और ऊहिनी शब्द की ऊ को मिलाकर औ वृद्धि एकादेश होता है । '**पूर्वपदात् संज्ञायामगः**' सूत्र से 'नी' की न को ण हो जाता है जिससे अक्षौहिणी शब्द निष्पन्न होता है । अक्षौहिणी का अर्थ सेना है अर्थात् जिस सेना में २१८७० हाथी, ५५६१० घोड़े तथा १०९ ३५० पैदल सिपाही होते हैं । उस सेना को अक्षौहिणी सेना कहते हैं ।

प्रादूहौ०—प्र उपसर्ग से ऊह, ऊठ, ऊठि, एष और एष्य शब्द आगे आने पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । जैसे—

प्रौहः—प्र + ऊहः इस स्थिति में प्र उपसर्ग से ऊह शब्द के आगे होने के कारुण 'प्रादूहोढोढयेषैष्येषु' इस वार्तिक से प्र की 'अ' और ऊह की ऊ को मिलाकर औ वृद्धि एकादेश हौता है जिससे प्रौहः शब्द बनता है ।

प्रौढः—प्र + ऊढः इस स्थिति में प्रादूहोढोढयेषैष्येषु इस वार्तिक से प्र की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अ' और ऊढः की ऊ को मिलाकर 'औ' वृद्धि एकादेश होता है जिससे प्रौढः शब्द निष्पन्न होता है।

प्रौढिः—प्र + ऊढिः इस स्थिति में "प्रादूहोढोढयेषैष्येषु' इस वार्तिक से प्र की 'अ' और ऊढिः की ऊ को मिलाकर पूर्व पर के स्थान में 'औ' वृद्धि एकादश हो जाता है जिससे प्रौढिः निष्पन्न होता है।

प्रैषः—प्र + एष्यः इस स्थिति में 'प्रादूहोढोढयेषैष्येषु' वार्तिक से प्र की 'अ' और एष्यः की 'ए' को मिलाकर 'ऐ' वृद्धि एकादेश हो जाता है जिससे 'प्रैषः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

प्रैष्यः–प्र + एष्य इस स्थिति में 'प्रादूहोढोढयेषैष्येषु' इस वार्तिक से प्र की 'अ' और एष्यः की 'ए' को मिलाकर 'ऐ' वृद्धि एकादेश हो जाता है जिससे प्रैष्यः रूप बनता है।

ऋते च तृतीया समासे—तृतीया समास में अवर्ण शब्द से ऋकार आगे आने पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे—

सुखार्तः—सुख + ऋतः इस स्थिति में सुखेन ऋतः इस तृतीया समास होने के कारण अवर्णान्त सुख शब्द से ऋ के आगे आने पर 'ऋते च तृतीया-समासे' इस वार्तिक से स की 'अ' और ऋतः की ऋ को मिलाकर दोनों के स्थान पर 'उरण रपरः' से रपर होकर आर् वृद्धि एकादेश होता है जिससे सुखार्तः शब्द निष्पन्न होता है।

परमर्तः—परम + ऋतः इस स्थिति में तृतीया समास के अभाव में वृद्धि-एकादेश नहीं होता है। 'आद्गुणः' सूत्र से म की 'अ' और ऋतः की ऋ को 'उरण रपरः' से रपर होकर अर् गुण होता है जिससे परमर्तः शब्द बनता है। इस वार्तिक में 'तृतीया समासे' वह क्यों पढ़ा गया है ? इसके समाधानार्थ "परमर्तः" को उद्धृत किया गया है। यदि इस वार्तिक में तृतीया समास का पाठ न किया गया होता तो 'परमर्तः' में भी वृद्धि हो जाती जिससे अनिष्ट रूप की सिद्धि हो जाती। अतः अनिष्ट रूप की सिद्धि को दूर करने के लिये ही इस वार्तिक में तृतीया समास का पाठ किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वा) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे । प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् इत्यादि।

(उपसर्ग संज्ञासूत्रम्)

३५. उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५६॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ।

प्र परा अप् सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप-एते प्रादयः ।

३६. भूवादयो धातवः १।३।१॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ।

प्रवत्सतरकम्बल०—प्र, वत्सतर, कम्वल, वसन, दशन, ऋण शब्दों से ऋ शब्द के आगे आने पर पूर्व पर के स्थिान में वृद्धि एकादेश होता है । जैसे—

प्रार्णम्—प्र + ऋणम् इस स्थिति में प्र उपसर्ग से ऋण शब्द के आगे आने पर 'प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे' इस वार्तिक से प्र की 'अ' और ऋणम् की 'ऋ' को मिलाकर दोनों के पर 'उरण रपरः' की सहायता से रपर होकर आर् वृद्धि एकादेश होता है जिससे प्रार्णम् प्रयोग बनता है ।

वत्सतरार्णम्—वत्सतर + ऋणम् इस स्थिति में 'प्रवत्सतरकम्वलवसनार्ण-दशानामृणे' इस वार्तिक से 'उरण रपरः' की सहायता से आर् वृद्धि एकादेश होता है जिससे 'वत्सतरार्णम्' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

कम्बलार्णम्—कम्वल + ऋणम्, वसन + ऋणम् = वसनार्णम्, दशन + ऋणम् = दशनार्णम्, ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम् आदि प्रयोगों में भी वृद्धि एकादेश होता है ।

उपसर्गाः क्रियायोगे—क्रिया के योग में (पचति, पचतु, पक्ष्यति, अपचत् आदि के योग में) प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव आदि की उपसर्ग संज्ञा हाती है अर्थात् क्रिया के योग में प्र, परा आदि उपसर्ग संज्ञक होते हैं ।

भूवादयो धातवः—क्रियावाची भू, प‍ गम् आदि की धातु संज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृद्धिविधायकसूत्रम्)

३७. उपसर्गादृति धातौ ६।१।६१॥

अवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्रार्च्छति ।

३८. एङि पररूपम् ६।१।६१॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोषति ।

उपसर्गादृति०—अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के आगे आने पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । जैसे—

प्रार्च्छति—प्र + ऋच्छति इस दशा में अवर्णान्त प्र उपसर्ग ऋकारादि ऋच्छ धातु आगे परे होने पर 'उपसर्गादृति धातौ' सूत्र से प्र की 'अ' और ऋच्छति की ऋ को मिलाकर पूर्व पर के स्थान में 'उरण रपरः' से रपरः होकर आर् वृद्धि होती है जिससे प्रार्च्छति प्रयोग बनता है ।

एङि पररूपम्—अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के आगे आने पर पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है ।

पररूप का अर्थ है कि पर अर्थात् आगे आने वाले वर्ण के समान पूर्व वर्ण का रूप हो जाता है अर्थात् पूर्व और पर दोनों वर्ण समान हो जाते हैं । जैसे—

प्रेजते—प्र + एजते इस स्थिति में अवर्णान्त प्र उपसर्ग से एङादि एज् धातु के आने पर पूर्व प्र की 'अ' और 'एज्' की ए को पररूप होता है अर्थात् दोनों का एक जैसा रूप हो जाता है । इस प्रकार 'प्रेजते' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

उपोषति—उप + ओषति इस स्थिति में अवर्णान्त उप उपसर्ग से एङ् ओष धातु से 'एङि पररूपम्' सूत्र से उप की 'अ' और ओषति की 'ओ' को पर अर्थात् आगे 'ओ' का रूप हो जाता है अर्थात् दोनों एक रूप 'अ' हो जाते हैं जिससे "उपोषति' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(टिसंज्ञा सूत्रम्)

३९. अचोऽन्त्यादिटि १।१। ६४।।

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञः स्यात् ।

वा०, शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्च टेः ।

शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा । आकृतिगणोऽयम् । मार्तण्डः ।

अचोऽन्त्या०—शब्द के अचों में जो अन्तिम स्वर उसके बाद जो वर्ण हो, उस वर्ण और अन्तिम स्वर की टि संज्ञा होती है । जैसे–आगे मनीषा, शकन्धुः आदि उदाहरणों से स्पष्टतया टि संज्ञा देखी जा सकती है ।

शकन्ध्वादि०—शकन्धु आदि गण में पठित शब्दों को पररूप एकादेश होती है तथा यह पररूप टि संज्ञक पूर्वपद को ही होता है । जैसे—मनीषा, शकन्धुः, कर्कन्धुः आदि ।

मनीषा—मनस् + ईषा इस दशा में 'अचोऽन्त्यादिटि' सूत्र से मनस् की नकार की 'अ' और 'स्' की अर्थात् 'अस्' की टि संज्ञा होती है । फिर 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इस वार्तिक से टि संज्ञक 'अस्' का पररूप अर्थात् आगे का रूप 'ई' ही हो जाता है जिससे 'मनीषा' यह शब्द बनता है ।

शकन्धु—शक + अन्धुः इस दशा में 'अचोऽन्त्यादिटि' सूत्र से 'क' के उत्तरवर्ती 'अ' की टि संज्ञा होती है । फिर 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इस वार्तिक से पररूप हो जाता है जिससे शकन्धुः शब्द निष्पन्न होता है ।

(शकन्धुः=शक देश के राजाओं का कुआं)

कर्कन्धु—कर्क + अन्धुः इस स्थिति 'अचोऽन्त्यादिटि' सूत्र से कर्क की अन्तिम ककार के उत्तरवर्ती 'अ' की टि संज्ञा होती है । फिर 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इस वार्तिक से पररूप हो जाता है जिससे 'कर्कन्धुः' शब्द बनता है ।

(कर्कन्धुः=कर्क देश के राजाओं का कुआं)

आकृतिगणोयम्—यह शकन्धुः, कर्कन्धु आदि आकृति गण हैं । पाणिनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०. ओमाङोश्च ६।१।९५

ओमि आङि चात् परे पररूपमेकादेश स्यात् । शिवायो नमः । शिव एहि ।

४१. अन्तादिवच्च ६।१।८५।।

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत् । शिवेहि ।

ने गन्थ की विशालता के भय से-सूत्र शैली के साथ-साथ गण पाठ की रचना की है। अधिक विस्तृत शब्द समूह को "गणपाठ" के माध्यम से अति संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है अर्थात् गण शब्द का अर्थ समूह है। एक विषय से सम्बन्धित शब्द समूह को कहने के लिये एक शब्द का नाम लेकर आदि के माध्यम से आगे बढ़ जाते हैं। ऐसे संक्षिप्त कथन के लिये गण शब्द प्रयोग किया है। शकन्धुः, कर्कन्धुः आदि पदों में पररूप करने के लिये आदि शब्द के माध्यम से गण पाठ का संकेत किया है। **आकृत्या स्वरूपेण गणयते इति** आकृतिगणः' अर्थात् आकृति एवं कार्य की समानता से अन्य शब्दों को भी उसी गण में गिन लेना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार शकन्धुः, कर्कन्धु आदि में पररूप होता है, उसी प्रकार टि संज्ञक समान कार्य वाले शब्दों को भी पररूप होता है। उदाहरणार्थ "मार्तण्डः" दिया गया है। कार्य की समानता देखकर उस शब्द को शकन्ध्वादिगण में गिन लेना चाहिये। यह आकृतिगण का अभिप्राय है।

मार्तण्डः—मार्त + अण्डः इस स्थिति में आकृति अर्थात् कार्य की समानता से 'अचोऽन्त्यादिटि' सूत्र से तकार की अ की टि संज्ञा होती है और फिर टि संज्ञक "अ" का "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' से पररूप होता है जिससे "मार्तण्डः" इस शब्द की निष्पत्ति होती है।

इसी प्रकार कुलटा, सीमन्तः, हलीषा, लाङ्गलीषा, पतञ्जलिः, सारङ्गः आदि शब्दों में भी टि संज्ञा होने पर पररूप हो जाता है।

ओमाङोश्च --अवर्णान्त शब्दों से ओम् और लाङ् के आगे परे होने पर पररूप एकादेश होता है। जैसे—

शिवायोनमः—शिवाय + ओनमः इस दशा में "वृद्धिरेचि" सूत्र से वृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होती है परन्तु 'ओमाङोश्च' सूत्र से अवर्णान्त य से ओम् शब्द आगे होने के कारण वृद्धि को निषेध करके पररूप हो जाता है जिससे शिवायोनमः शब्द बनता है।

अन्तादिवच्च—जो यह एकादेश (पररूप एकादेश) है, वह पूर्व के अन्तवत् पर के आदिवत् होता है।

इसका आशय यह है कि एकादेश करने से पूर्व शब्द में और पर शब्द में जो उपसर्गत्व या क्रियात्व आदि होता है वे धर्म एकादेश होने पर भी व्यवहृत होवें। जैसे –

शिवेहि में शिव + आ + इहि में आ + इ को गुण ए होने पर तथा पररूप होने पर भी अन्तादिवच्च से पूर्व तथा पर शब्द में आ और इदि में गण धातु का व्यवहार होता रहेगा। अतः "अन्तादिवच्च" के नियम को स्वीकार करने पर "ओमाङोश्च" से पररूप आदेश होता है।

शिवेहि—यिव + आ + इहि इस स्थिति में वकारोत्तरवर्ती 'अ' और आङ् की आ को 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है और आङ् उपसर्ग की 'आ' तथा इहि की इ को 'आद्गुणः' से गुण प्राप्त होता है। इस समस्या में 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" अर्थात् अन्तरङ्ग कार्य के समक्ष बहिरङ्ग कार्य का विधान किया जाता है और बहिरङ्ग कार्य असिद्ध हो जाता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कौनसा कार्य अन्तरङ्ग है और कौनसा कार्य बहिरङ्ग है? इसके समाधानार्थ कहा है कि "धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्ग मन्यदवहिरङ्गम्" अर्थात् धातु (पठ्, गम् आदि) उपसर्गों के कार्यों को अन्तरङ्ग और अन्य कार्यों को वहिरङ्ग कहते हैं। इस नियम के अनुसार आ + इ के गुण का कार्य धातु और उपसर्ग से सम्वन्धित होने के कारण अन्तरङ्ग कार्य माना गया है। इसलिये 'आद्गुण' से आ + इ को 'ए' गुण होता है दीर्घ नहीं।

शिव + एहि इस स्थिति में 'अन्तादिवच्च' इस सूत्र के नियम से आ + इ =ए यहां पूर्व को अन्तवत् स्वीकार करने से 'ए' को भी 'आङ्' मान लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दीर्घ विधायक सूत्रम्)

४२. अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः । श्रीशः विष्णूदयः । होतॄकारः ।

(पूर्वरूप विधायक सूत्रम्)

४३. एङः पदान्तादति ६।१।१०९॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव । विष्णोऽव ।

जाता है जिससे 'ओमाङोश्च' से पररूप अर्थात् शिव के यकारोत्तरवर्ती 'अ' को ए रूप हो जाता है जिससे शिवेहि शब्द बनता है ।

इसी प्रकार उपेहि, अपेहि आदि प्रयोगों की सिद्धि होती है ।

अकः सवर्णे दीर्घ—अक् प्रत्याहार के वर्णों से अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ के आगे समान स्वर आने पर पूर्व और पर दोनों स्वरों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है जैसे—

दैत्यारिः—दैत्य + अरिः इस स्थिति में यकारोत्तरवर्ती 'अ के समान स्वर अरि की 'अ' आगे होने से "अकः सवर्णे दीर्घः" सूत्र से अ + अ की 'आ' एकादेश होता है जिससे दैत्यारिः शब्द निष्पन्न होता है ।

श्रीशः—श्री + ईशः इस स्थिति में श्री की ईकार से आगे ईशः की ईकार होने के कारण 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से सवर्ण ई + ई को ई दीर्घ एकादेश हो जाता है । जिससे 'श्रीशः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

विष्णूदयः—विष्णु + उदयः इस स्थिति में णकारोत्तरवर्ती उकार से सवर्णी उदयः की उकार आगे होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से उ + उ को ऊ दीर्घ एकादेश हो जाता है जिससे 'विष्णूदयः' प्रयोग बनता है ।

होतॄकार—होतृ + ऋकारः इस स्थिति में तृ की ऋ से आगे सवर्णी ऋकारः की 'ऋ' होने से 'अकः सवर्णे दीर्घ' से ऋ + ऋ की ॠ दीर्घ एकादेश होता है जिससे 'होतॄकार' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रकृतिभाव विधायक सूत्रम्)

४४. सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।१२२॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते । गो+अग्रम्, गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् ? चित्रग्वग्रम् पदान्ते किम् ? गोः ।

४५ अनेकाल्शित्सर्वस्य १।१।५५॥

इति प्राप्ते ।

एङः पदान्तादति—पदान्त एङन्त शब्द से अर्थात् पदान्त ए, ओ वाले शब्दों के आगे 'अ' होने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

सुबन्त और तिङन्त शब्दों को पद कहते है अर्थात् सु और जस् आदि २१ विभक्तियां सुप् कहलती हैं । तिप्, तस्, झि आदि नो परस्मैपद की और नो आत्मने पद की विभक्तियों को तिङ् कहते हैं । ये सुप् और तिङ् विभक्तियां जिनके अन्त में होती हैं उन पदों को क्रमशः सुबन्त और तिङन्त कहते हैं सुबन्त रामः, रामौ, रामाः आदि तिङन्त पठति, लिखति आदि तिङन्त को पद कहते हैं और ये पद जिनके अन्त में हों, उसे पदान्त कहते हैं । जैसे—

हरेऽव–हरे+अव इस दशा में हरे यह पद हरि शब्द के सम्बोधन (प्रथमा एकवचन का सुवन्त पद है औइ इसके अन्त में एकार हैं अतः "हरे" यह पदान्त और एङन्त पद है। इसके आगे 'अव' की 'अ' है । अतः एङः पदान्तादति सूत्र से अव की 'अ' को पूर्वरूप (ऽ) हो जाता है । अर्थात् 'अ' लुप्त हो जाती है और उसका चिन्ह (ऽ) शेष रहता है जिससे "हरेऽव" यह प्रयोग बनता है ।

विष्णोऽव—विष्णो+अव इस दशा में ओकारांन्त सम्बोधन का एक वचन पदान्त एङन्त विष्णो शब्द से आगे अकार होने पर 'एङः पदान्तादति' सूत्र से "अव" की 'अ' को पूर्वरूप अर्थात् ओ का रूप होने से 'अ' लुप्त हो जाती है और अकार का सूचक 'अ' का चिन्ह (ऽ) शेष रहता है जिससे 'विष्णोऽव' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्रे ति—लोक अथवा वेद में एङन्त गो शब्द से आगे अकार होने पर विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। पदान्त में प्रकृतिभाव से तात्पर्य यह है कि जहाँ जिस शब्द में प्रकृतिभाव होता है, वहां कोई सन्धि नहीं होती है अर्थात् सभी सन्धि के नियम निष्प्रयोजन हो जाते हैं और शब्द ज्यों का त्यों रह जाता है। कोई विकार अथवा परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—

गोअग्रम्—गो + अग्रम् इस स्थिति में पदान्त गो शब्द की 'औ' से आगे अग्रम् की 'अ' होने के कारण 'सर्वत्र विभाषा गोः' सूत्र के विकल्प से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे कोई सन्धि विकार नहीं होता ज्यों की त्यों रह जाता है। अतः प्रकृतिभाव पक्ष में 'गो अग्रम्' बनता है और प्रकृतिभाव के अभाव पक्ष में 'एङः पदान्तादति' सूत्र से पदान्त षष्ठयन्त एङन्त गो शब्द से 'अ' आगे होने पर 'अ' को पूर्वरूप होता है जिससे 'गोऽग्रम्' शब्द बनता है।

एङन्तस्य किम्—इस सूत्र में एङन्त गो शब्द को ही प्रकृतिभाव होता है। ऐसा क्यों कहा गया है ? इसके समाधानार्थ कहा है कि यदि एङन्त गो शब्द का पाठ न करते तो 'चित्रग्वग्रम्' में भी प्रकृतिभाव हो जाता, जो इष्ट नहीं है। चित्रग्वग्रम् में प्रकृतिभाव न हो जावे, इसीलिये एङन्त शब्द का पाठ किया गया है।

चित्रग्वग्रम्—चित्रगु + अग्रम् इस दशा में 'सर्वत्र विभाषा गोः' सूत्र में एङन्त गो शब्द का पाठ होने से यहां प्रकृतिभाव नहीं होता है क्योंकि यहाँ एङन्त गो शब्द नहीं है। अतः 'इकोयणचि' सूत्र से इक् उ के स्थान पर यण् व् हो जाता है जिससे 'चित्रग्वग्रम्' शब्द बनता है।

पदान्ते किम्—अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'सर्वत्र विभाषा गोः' इस सूत्र में पदान्ते अर्थात् पदान्त गो शब्द का पाठ क्यों किया गया है ? यदि पदान्ते शब्द का पाठ न करते तो 'गोः' में भी प्रकृतिभाव होने लगता, जो इष्ट नहीं है क्योंकि गो + अ इस स्थिति में यदि पदान्ते न कहते तो प्रकृतिभाव हो जाता जिससे गोः के स्थान पर गो अः शब्द बनता है। इस अनिष्टापत्ति के वारणार्थ पदान्ते शब्द का पाठ किया गया है जिससे प्रकृतिभाव नहीं होता है। पूर्वरूप होकर षष्ठी विभक्ति में गोः शब्द निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४६. ङिच्च १।१।५३

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्

४७. अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३।।

पदान्ते ऐङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि । गवाग्रम्, गेऽग्रम् । पदान्ते किम् ? गवि ।

अनेकाल्०—जिस आदेश में अनेक वर्ण हों और जो शित् हों अर्थात् जिसकी शकार की इत्संज्ञक हो, वह आदेश अनेक वर्णमाला शित् आदेश समस्त शब्द के स्थान पर होता है। जैसे 'अस्' धातु के स्थान पर 'भू' आदेश होता है और गम् को गच्छ्, पा को पिव्, दृश् को पश्य, घ्रा को जिघ्र, स्था को तिष्ठ् आदेश होता है।

इसी प्रकार गो+अग्रम् इस स्थिति में 'अवङ् स्फोटायनस्य' से होने वाला अनेकाल् 'अवङ्' आदेश समस्त गो शब्द के स्थान पर प्राप्त होता है।

ङिच्च—अनेकाल् आदेश समस्त शब्द के स्थान पर होता है परन्तु जो अनेक वर्ण वाला आदेश ङित् हो अर्थात् जिसका ङकार इत्संज्ञक हो तो वह आदेश समस्त पद के स्थान पर न होकर केवल अन्तिम वर्ण के स्थान पर ही आदेश होता है। गो+अग्रम् में 'अवङ् स्फोटायनस्य' सूत्र से प्राप्त अवङ् आदेश सबके स्थान पर न होकर 'ङिच्च' सूत्र के नियमानुसार गकारोत्तरवर्ती ओ' को ही अवङ् आदेश होता है।

अवङ् स्फोटायनस—स्फोटायन नामक वैयाकरण प्रसिद्ध विद्वान् के मत से पदान्त एङन्त गो शब्द के स्थान में विकल्प से अवङ् आदेश होता है। अच् (स्वर) आगे परे होने पर। जैसे—

गवाग्रम्—गो+अग्रम् इस दशा में 'अवङ् स्फोटायनस्य' इस सूत्र से स्फोटायन आचार्य के मत से पदान्त गो शब्द को 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' सूत्र के अनुसार (समस्त गो को) अवङ् आदेश प्राप्त होता है परन्तु अवङ् आदेश ङित् होने के कारण समस्त गो शब्द के स्थान पर न होकर 'ङिच्च' सूत्र के अनुसार गो की 'ओ' के स्थान पर अवङ् आदेश होता है। ग् अवङ्→अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

८. इन्द्रे च ६।१।१२४॥
गोरवङ् स्यादिन्द्रे गवेन्द्रः ।

९. दूराधूते च ८।२.८४॥ ✓ 1979

दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा ।

१०. प्लुवप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।११५॥

एतेऽचि प्रकृत्या स्यु । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

-अग्रम् इस स्थिति में वकारोत्तरवर्ती 'अ' और अग्रम् की 'अ' को मिलाकर कः सवर्णे दीर्घ से सवर्ण दीर्घ 'आ' हो जाता है जिससे 'गवाग्रम्' शब्द ता है ।

अवङ् के अभाव पक्ष में 'एङः पदान्तादति' सूत्र से गो के आगे अग्रम् की ' को पूर्वरूप हो जाता है (ऽ) जिससे 'गोऽग्रम' प्रयोग बनता है ।

पदान्ते किम् गवि—अब यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'अवङ् स्फोटाय-' सूत्र में पदान्त गो शब्द का प्रतिबन्ध क्यों स्वीकार किया है अर्थात् गो द के साथ पदान्त विशेषण क्यों लगा दिया है ?

इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि यदि यहां पदान्त शब्द का पाठ न करते वा प्रतिबन्ध न कहते तो गो शब्द से सप्तमी एकवचन में विकल्प से प्रकृति व होने लगता जिससे 'गवे' इस अनिष्ट रूप की सिद्धि हो जाती है । इस निष्टापत्ति को दूर करने के लिये गो शब्द का विशेषण पदान्त स्वीकार किया जिससे गो + इ इस दशा में विकल्प से अवङ् आदेश नहीं होता है और गो इ में एचोऽयवायावः' से गो की ओ को अव् आदेश होता है जिससे 'गवि' पन्न होता है ।

इन्द्रे च – गो शब्द से आगे इन्द्र के परे होने पर गो शब्द को अवङ् देश होता है । जैसे—

गवेन्द्रः—गो + इन्द्रः इस स्थिति में गो शब्द से इन्द्र शब्द के आगे परे ने पर 'इन्द्रे च' सूत्र से 'गौ' की 'ओ' के स्थान पर अवङ् आदेश होता है । न्त्यम् से अवङ् के ङ् की इत्संज्ञा होकर 'तस्यलोपः' से ङ् का लोप हो ता है जिससे ग् अव + इन्द्र इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से वकारोतर-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५१. इदूदद्द्विवचनं प्रगृह्यम १।१।११

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यम् स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू।

५२. अदसो मात् १।१।१२

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात् मिम्? अमुकेऽत्र।

वर्ती 'अ' और इन्द्रः की इ को मिलाकर दोनों के स्थान पर 'ए' गुण एकादेश होता है जिससे 'गवेन्द्रः' शब्द बनता है।

दूराद्धूते च - दूर से सम्बोधन अर्थात् पुकारने के अर्थ में प्रयुक्त वाक्य को 'टि' की विकल्प से प्लुत संज्ञा होती है।

प्लुत प्रगृह्या अचि०—प्लुत संज्ञा वाले और प्रगृह्य संज्ञा वाले शब्दों को अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ के आने पर नित्य प्रकृतिभाव होता है। जैसे—

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति = हे कृष्ण! आइये यहाँ गाय चरती हैं। यहां आगच्छ कृष्ण! यह वाक्य कृष्ण को दूर से बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

इसलिये 'दूराद्धूते च' सूत्र से कृष्ण शब्द से णकारोत्तरवर्ती 'अ' की प्लुत संज्ञा होती है। इस ण की आकार की 'अचोऽन्त्यादिटि' से टि संज्ञा हो जाती है। कृष्ण की णकार की 'अ' से आगे अत्र की 'अ' है। 'अकः सवर्णे दीर्घ' सूत्र से अ+अ को 'आ' दीर्घ प्राप्त होता है परन्तु कृष्ण की णकार की 'अ' की प्लुत संज्ञा होने से 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे फिर दीर्घ सन्धि नहीं होती है। ज्यों का त्यों बना रहता है। इस प्रकार आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति' में प्रतिभाव हो गया है।

ईदूदेद्द्वि०—ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचनान्त शब्दों की प्रगृह्य संज्ञा होती है और प्रगृह्य होने पर प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे फिर कोई संधि के नियम नहीं लागू होते हैं। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरी एतौ—हरी + एतौ इस दशा में ईकारान्त द्विवचनान्त हरी शब्द से एतौ की एकार स्वर होने पर भी 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्य' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है और 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे हरी एतौ ज्यों का त्यों रह जाता है अर्थात् 'इकोयणचि' से ईकार से स्वर ए आगे होने पर भी यण नहीं होता है क्योंकि प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव होता है।

विष्णू इमौ—विष्णू + इमौ इस स्थिति में ऊकारान्त द्विवचन शब्दों से आगे स्वर आने पर भी 'ईदूदेद्द्विवचनम् प्रगृह्य सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है और प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे 'इकोयणचि' सूत्र के ऊकार को यण् व नहीं होता है। ज्यों की त्यों बना रहता है। यही प्रकृतिभाव का फल है।

गंगे अम्—गङ्गे + अम् इस दशा में एकारान्त द्विवचनान्त गङ्गे शब्द की 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्य' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है जिससे 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है। जिससे 'एचोऽयवायावः' सूत्र से प्राप्त अय् आदेश नहीं होता है। ज्यों की त्यों गङ्गे अम् बना रहता है।

अदसोमात्—मकारान्त अदस् शब्द से आगे ईकार, ऊकार के आने पर ईकार, ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—

अमी ईशाः—अमी ईशाः, यह अमी शब्द अदस् शब्द का प्रथमा बहुवचन का रूप है। अतः अदस् शब्द की मकार की ईकार की 'अदसोमात्' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है जिससे फिर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे प्रकृतिभाव होने के कारण 'अकः सवर्णे दीर्घः' से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है। 'अमी ईशाः' यह ज्यों की त्यों बना रहता है।

रामकृष्णावम् आसाते—रामकृष्णावम् + आसाते इस दशा में अदस् शब्द की मकारोत्तरवर्ती ऊ की प्लुतअदसोमात्' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है जिससे फिर 'प्रगृह्या अचि नित्यम् से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे फिर 'इकोयणचि' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती ऊकार को स्वर आगे होने पर भी यण् व् नहीं होता है। इस प्रकार 'रामकृष्णावम् आसाते' ज्यों की त्यों बना रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५३. चादयोऽसत्त्वे १।४।५७॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ।

५४. प्रादयः १।४।५८॥

एतेऽपि तथा ।

५५. निपात एकाजना १।१।१४॥

एकोऽज् निपातः आङ् वर्जः प्रगृह्य स्यात् । इ इन्द्रः । उ उमेशः ।

'वाक्यस्मरणयोरङित्' आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र आ ईषदुष्णम् ओष्णाम् ।

मात्किम अमुकेऽत्र—अमुके + अत्र इस स्थिति से पदान्त एङन्त अमुके की एकार से आगे 'अ' को 'एङः पदान्तादति' सूत्र से पूर्वरूप हो जाता अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'आदसोमात्' इस सूत्र में मात् क्यों पढ़ा है ? इसके उत्तर में कहा है कि यदि 'मात्' नहीं पढ़ेंगे तो अमुकेऽत्र में 'आदसोमात्' से प्रकृतिभाव हो जाता जो इष्ट नहीं है । अतः अमुकेमात् इष्ट सिद्धि के लिये 'अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये 'अदसोमात्' इस में 'मात्' शब्द का पाठ किया गया है अन्यथा अमुकेऽत्र में पूर्णरूप होता है ।

चादयो सत्वे—जो शब्द किसी द्रव्य (वस्तु) के वाचक नहीं है द्रव्यभिन्न अर्थ वाले च, अव, ह, नु, आदि शब्दों की निपात संज्ञा होती है आदि शब्दों का उल्लेख अव्यय प्रकरण में किया है ।

प्रादयः—प्र, परा, अप,, सम्, अनु, अव, निस्, निर् आदि प्रादि अर्थात् उपसर्गों की भी निपात संक्षा होती है ।

प्र, परा आदि जब क्रिया के योर में आते हैं तब प्रादिकों की उपसर्ग और जब क्रिया से पृथक वाक्यों में पदों के साथ आते हैं तब इनकी नि संज्ञा होती है ।

निपात एका०—आङ् को छोड़कर एक अच् अर्थात् एक स्वर वाले नि की प्रगृह्य संज्ञा होती है । जंसे—

इ इन्द्रः—इ + इन्द्रः इस स्थिति में प्रथम इ की 'चादयोंऽसत्वे'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपात संज्ञा होती है तथा यह निपात एक स्वर वाला है। इसलिये 'निपात-एकाजनाङ्' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है जिससे 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे 'अकः सवर्णे दीर्घः' से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है और ज्यों की त्यों इ इन्द्र बना रहता है।

उ उमेशः—उ + उमेशः इस दशा में 'चादयो सत्वे' सूत्र से उ को निपात संज्ञा होती है और 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है जिससे 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे फिर 'अकः सवर्णे दीर्घः' से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है। इस प्रकार उ उमेशः ज्यों की त्यों बना रहता है।

वाक्यस्मरणयोङित्—वाक्य और स्मरण अर्थ में प्रयुक्त 'आ' ङित् नहीं होता है अर्थात् आङ् का 'आ' नहीं माना जाता है अपितु एक स्वतन्त्र 'आ' माना जाता है। निपात् एकाजनाङ्' से 'अनाङ्' अर्थात् आङ् रहित एक अच् को प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—

आ एवं नु मन्यसे—आ + एवं नु मन्यसे इस स्थिति में (क्या तुम ऐसा मानते हो?) इस वाक्य के स्मरण अर्थ में प्रयुक्त आ ङित नहीं माना जाता है। इसलिये यहाँ 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा होती है जिससे 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे आ + एवं नु मन्यसे में वृद्धि सन्धि नहीं होती है क्योंकि प्रकृतिभाव होने पर कोई सन्धि कार्य नहीं होते हैं। अतः आ एवं नु मन्यसे यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

आ एवं किल तत्—आ + एवं किल तत् इस स्थिति में 'हाँ यह ऐसा ही है' यहां 'आ' स्मरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है इसलिये 'आ' ङित् नहीं माना जाता है क्योंकि यह नियम है कि वाक्य और स्मरण अर्थ में प्रयुक्त 'आ' ङित् नहीं होता है। अतः 'निपात एकाजनाङ्' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है जिससे फिर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है अतः आ + एवं किल तत् में वृद्धि सन्धि नहीं होती है। क्योंकि प्रकृतिभाव होने पर कोई सन्धि नहीं होती है।

अन्यत्रङित—वाक्य और स्मरण अर्थ से पृथक् 'आ' ङित् ही होती है अर्थात् केवल वाक्य और स्मरण अर्थ में प्रयुक्त 'आ' को ङित् नहीं माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६. ओत् १।१।१५॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् अहो ईशाः ।

५७. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे ।

विष्णो इति, विष्ण इति, विष्ण इति, विष्णविति ।

५८. मय उञो वो वाः ८।३।३३॥

मयः परस्य उञो वाऽचि किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् ।

जाता है । शेष स्थानों पर 'आ' ङित् होता है अर्थात् 'आ' आङ का ही माना जाता है, अतः अन्यत्र आ' को प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है, क्योंकि इसलिये कहा गया है कि—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्यात् वाक्यस्मरणयोरङित ॥

अर्थात् ईषत् (अल्प) अर्थ में, क्रिया के योग में, मर्यादा और अभिविधि अर्थ में, जो 'अ' प्रयुक्त होता है उसे आङ् का 'आ' समझना चाहिये और इसके अतिरिक्त वाक्य तथा स्मरण अर्थ में पठित 'आ' को ङित् नहीं समझना चाहिये अर्थात् वाक्य और स्मरण अर्थ में पठित 'आ' आङ् का नहीं माना जाता है । इसलिये निम्न उदाहरणों में प्रगृह्य संज्ञा नहीं हुई ।

ईषदुष्णम्–ईषत् + उष्णम् = ईषदुष्णम् (कुछ गरम) = औष्णम् = आ + उष्णम् इस स्थिति में यहां 'आ' ईषत् अर्थ में पढ़ा गया है । इसलिये आ की प्रगृह्य संज्ञा होती है क्योंकि 'आ' ङित् माना गया है अतः 'आद्गुणः' सूत्र से गुण आ + उ = 'ओ' हो जाता है जिससे 'ओष्णम्' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

ओत्—ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है । जैसे—

अहो ईशा—अहो + ईशा, (अरे ये राजा है) इस स्थिति में 'अहो' इस ओकारान्त निपात की ओत् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है फिर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव होता है जिससे अहो के ओकार को 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अव् आदेश नहीं होता है । इस प्रकार अहो ईशाः यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बुद्धौशाकल्यस्ये०—वैदिक भिन्न अर्थात् लौकिक इति शब्द के आगे होने पर सम्बुद्धि अर्थात् सम्बोधन की ओकार की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—

विष्णो इति—विष्णो + इति इस स्थिति में णकार की 'ओ' सम्बोधन की है, विष्णु शब्द से सम्बोधन के प्रथमा एकवचन में 'विष्णो' बनता है अतः सम्बुद्धि निमित्तक विष्णो की ओकार से अवैदिक इति शब्द आगे परे है। अतः 'सम्बुद्धौशाकल्यस्शयेतावनार्षे' सूत्र से विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है फिर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्ययम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे विष्णो इति बनता है। प्रगृह्य संज्ञा के अभाव पक्ष में, 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'ओ को अव्' आदेश होता है 'लोपः शाकल्स्यस्य' इस सूत्र से व् को विकल्न से लोप हो जाता है जिससे 'विष्ण इति' और वकार के लोप के अभाव में 'विष्णविति' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

मयोऽञो वो वा—मय् प्रत्याहार के वर्णों से अर्थात्, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, इन वर्णों की उकार को विकल्प से 'व्' होता है। अन्य स्वर आगे होने पर और पक्ष में प्रकृतिभाव होता है, जैसे—

किम्बुक्तम्—किमु + उक्तम् इस स्थिति में 'मु' की 'उ' को 'मयउञो वो वा' सूत्र से विकल्प से व् हो जाता है जिससे 'किम्बुक्तम्' प्रयोग बनता है। पक्ष में 'निपात एकाजनाङ्' से निपात संज्ञा होती है और फिर प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे 'अकः सवर्णे दीर्घ' सूत्र से दीर्घ एकादेश नहीं होता है और 'किम् उक्तम्' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

यहाँ किमु शब्द में पठित उकार एकाच् निपात होने के कारण 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा प्राप्त होती है परन्तु 'मयउञो वो वा' से निरवकाश होने के कारण मु की उ को व् हो जाता है। यदि कोई यह कहे कि यहाँ 'इकोयणचि' सूत्र से भी व् यण् हो सकता था 'मय उञो वो वा' इस सूत्र का निर्माण क्यों किया गया है? इसका समाधान यह है कि यदि 'मयउञो वो वा' सूत्र का निर्माण न किया जाता तो एकाच् 'मु' की उकार की निपात संज्ञा होने से 'निपात एकाजनाङ्' से प्रगृह्य संज्ञा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५९. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ।६।१।१२७।।

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि । ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र चक्रयत्र । पदान्ता इति किम् ? गौर्यौ—

(वा०) न समासे । वाप्यश्वः ।

६०. अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६।।

अच पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो वा स्तः । गौर्य्यौ ।

६१ ऋत्यकः ५।१।१२८।।

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा ! ब्रह्मर्षिः, ब्रह्मर्षिः । पदांता किम् ? आर्च्छत् ।

जाती जिससे 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्, से प्रकृतिभाव हो जाता है और केवल एक रूप 'किमु उक्तम्' ही बनता । अतः 'किम्वुक्तम्' की सिद्धि के लिये 'मयउञो वो वा' सूत्र का निर्माण अनिवार्य हो गया अन्यथा वकार का आदेश नहीं होता ।

इकोऽसवर्णे०—पदान्त इक् प्रत्याहार के वर्णों को अर्थात् इ, उ, ऋ, लृ, को विकल्प से ह्रस्व होता है, असवर्णी अर्थात् असमान स्वर आगे आने पर। जैसे—

चक्रि अत्र—चक्री + अत्र इस दशा में इक् प्रत्याहार की चक्री में ईकार से आगे असवर्णी स्वर अत्र की 'अ' होने के कारण 'इको सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' सूत्र से चक्री की ईकार को ह्रस्व इ' हो जाती है जिससे चक्रि अत्र बनता है, पक्ष में (ह्रस्व के अभाव में) 'इकोयणचि' सूत्र से चक्रा की ईकार को यण् य् हो जाता है जिससे 'चक्र् अत्र' प्रयोग निष्पन्न होता है।

'चक्रि अत्र' यहां ह्रस्व होने पर भी 'इकोयणचि' सूत्र से चक्रि की इकार को यण् य् होना चाहिये क्योंकि विषम स्वर 'अ' आगे परे है । यहां यह शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि ह्रस्व के विधान की विशेष सामर्थ्य के कारण 'इकोयणचि' से यण् की शंका नहीं करनी चाहिये अर्थात् ह्रस्व विधि की सामर्थ्य से यण् नहीं होता है ।

पदान्ता इति किम्—**गौर्यौ**—गौरी . औ यहां गौरी शब्द से प्रथमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा द्वितीया के द्विवचन 'औ' स्वर से आगे होने के कारण रकारोत्तरवर्ती ईकार को 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' सूत्र से ह्रस्व क्यों नहीं हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर के लिये कहा है कि पदान्ता इति अर्थात् पदान्त इक् प्रत्याहार के वर्णों वाले शब्द को ही ह्रस्व होता है जो पदान्त नहीं है। उसको ह्रस्व नहीं होगा। गौरी + 'औ' यहां गौरी की ईकार पदान्त नहीं है। अतः ह्रस्व की प्राप्ति ही नहीं होती है। इसलिये पदान्त शब्द का पाठ किया गया है जिससे अपदान्त पदों को ह्रस्व नहीं होता है। अतः 'गौरी + औ' इस दशा में इकोयणचि' सूत्र से ईकार यण् य् हो जाता है जिससे गौर्य्यौ निष्पन्न होता है।

न समासे—समास के प्रसंग में पदान्त इक् प्रत्याहार के वर्णों से असवर्णी अच् आगे होने पर भी 'इको सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' सूत्र से ह्रस्व होता है। जैसे—

वाप्यश्वः=वापी + अश्वः इस दशा में 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' इस सूत्र से पकारोत्तरवर्ती ईकार को असवर्णी अश्व की 'अ' आगे होने के कारण विकल्प से ह्रस्व प्राप्त होता है परन्तु 'न समासे' इस वार्तिक से वापी और अश्व में समास होने के कारण (वाप्याम् अश्वः) ह्रस्व का निषेध हो जाता है और फिर 'इकोयणचि' सूत्र से पकार की ईकार को यण् य् हो जाता है जिससे 'वाप्यश्वः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

अचोरहा०—अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, के आगे जो रकार और हकार उनसे परे जो यर् प्रत्याहार का वर्ण (य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स) हो तो उस वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है। जैसे—

गौर्य्यौ—गौरी=औ इस दशा में 'इकोयणचि' सूत्र से रकारोत्तरवर्ती ईकार को यण् य् हो जाता है और फिर 'अचोरहाभ्यां द्वे' सूत्र से गौ की औ के रकार और रकार से यर् प्रत्याहार के य् वर्ण की विकल्प से द्वित्व होता है जिससे गौर्य्यौ और पक्ष में (द्वित्व के अभाव में) गौर्यौ ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्यकः—ऋकार अर्थात् ह्रस्व ऋ आगे परे होने पर पदान्त अक् प्रत्याहार के वर्णों को अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ को विकल्प से ह्रस्व होता है। जैसे—

ब्रह्म ऋषिः—ब्रह्मा + ऋषिः इस दशा में पदान्त ब्रह्मा शब्द की मकारोत्तरवर्ती 'आ' को ऋषि शब्द की ऋ आगे परे होने पर 'ऋत्यकः' सूत्र से विकल्प से ह्रस्व होता है जिससे 'ब्रह्म ऋषि.' बनता है और ह्रस्व के अभाव पक्ष में 'आद्गुणः' सूत्र से और 'उरण रपरः' सूत्र से रपर होकर 'अर्' गुण होता है जिससे 'ब्रह्मर्षिः' प्रयोग बनता है।

ब्रह्म ऋषिः यहां 'आद् गुणः' से गुण की आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि फिर ह्रस्व विधि का फल ही समाप्त हो जायेगा। अतः ह्रस्व विधि की सामर्थ्य से गुण नहीं होता है।

पदान्ताः इति किम् आर्च्छत्—ऋत्यकः' सूत्र में पदान्त अक् प्रत्याहार के वर्णों का ही विकल्प से ह्रस्व का विधान किया गया है, अपदान्त अक् को नहीं। अतः आ + ऋच्छत् में ह्रस्व नहीं होता है क्योंकि यह 'आ' पदान्त नहीं है, वृद्धि होकर 'आर्च्छत्' बनता है। यदि 'ऋत्यकः' में पदान्त अक् का पाठ न करते तो 'आर्च्छत्' में भी विकल्प से ह्रस्व हो जाता। अतः पदान्त अक् का पाठ करना आवश्यक ही है।

इति अच् सन्धिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ हल् सन्धि

(श्चुत्वविधायकसूत्रम्)

६२. **स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०॥**

सकारतकारयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जय।

स्तोः श्चुनाश्चुः—सकार और तवर्ग (त, थ, द, ध, न) के स्थान में शकार और चवर्ग के योग में शकार और चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) आदेश होते हैं।

आशय यह है कि जब स् तथा त् थ, द्, ध्, न् के योग में (आगे या पीछे शकार का चवर्ग (च, छ, ज, झ' ञ) आवे तो श् को स् और द्, ध्, को क्रम से च्, छ्, ज्, झ्, ञ् हो। इसको 'श्चुत्व' के नाम से अभिहित किया जाता है। जैसे—

रामश्शेते—रामस्+शेते इस दशा में सकार से शेते की सकार का योग होने के कारण 'स्तोः श्चुनाश्चुः' सूत्र से स् को श् हो जाता है। जिससे रामश्शेते' प्रयोग निष्पन्न होता है।

रामश्चिनोति—रामस्+चिनोति, इस दशा में स् से चिनोति की चकार का योग होने के कारण 'स्तोः श्चुनाश्चु' सूत्र से रामस् की स् को श् हो जाता है जिससे 'रामश्चिनोति' बनता है।

सच्चित्—सत्+चित् इस दशा में सत् की त् से चित् की चकार का योग होने से 'स्तोः श्चनाश्चुः' सूत्र से त को चवर्ग च् हो जाता है जिससे 'सच्चित्' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

शार्ङ्गिञ्जय—शार्ङ्गिन्+जय इस दशा में शार्ङ्गिन् की तवर्ग न् का जय की चवर्ग ज् से योग होने से 'स्तोः श्चुनाश्चुः' सूत्र से न् को ञ् हो जाता है जिससे 'शार्ङ्गिञ्जय' यह प्रयोग बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३. शात् ८।४।४०।।

शात् परस्य तवर्गस्यश्चुत्वं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः ।

६४. ष्टुना ष्टु ८।४।४१

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहियें । उदाहरणार्थं कुछ निम्न इस प्रकार हैं ।

कस् + चित् = कश्चित्, सत् + जनः = सज्जनः, सत् + चित्रम् = सच्चित्रम् एतत् + चित्रम् = एतच्चित्रम्, रमायास् + छात्रः = रमायाश्छात्र, विपद् + जालम् = विपज्जालम्, उत् + ज्वलः = उज्जवलः, तत् + च = तच्च, महत् + चित्रम् = महच्चित्रम्, हरिस् + शेते = हरिश्शेते ।

शात्—शकार से तवर्ग (त, थ, ध, द, न) को श्चुत्व नहीं होता है । यह सूत्र 'स्तोः श्चुनाश्चु' का अपवाद है । जैसे—

विश्नः—विश् + नः इस दशा में शकार से तवर्ग का योग होने के कारण 'स्तोः श्चुनाश्चु' सूत्र से तवर्ग न को श्चुत्व (ञ) प्राप्त होता है परन्तु 'शात्' इस सूत्र से श्चुत्व का निषेध हो जाता है क्योंकि यहां शकार से तवर्ग (न) परे है । इससे 'विश्नः' प्रयोग बनता है ।

प्रश्नः—प्रश् + नः इस दशा में शकार और तवर्ग न का योग होने के कारण 'स्तोः श्चुनाश्चु' सूत्र से श्चुत्व (न को ञ) प्राप्त होता है परन्तु शकार से तवर्ग (न) का योग होने के कारण 'शात्' सूत्र से श्चुत्व का निषेध हो जाता है जिससे 'प्रश्नः' प्रयोग बनता है ।

ष्टुनाष्टुः – सकार और तवर्ग का षकार और टवर्ग का योग होने पर स् को ष् और तवर्ग (त, थ, द, ध, न) को क्रमशः टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) होता है । जैसे —

रामषष्ठः – रामस् + षष्ठः इस दशा में रामस् की सकार और षष्ठ. की षकार का योग होने से 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से रामस् की स् को ष्टुत्व ष् हो जाता है जिससे 'रामषष्ठः' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६५. न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२॥

पदान्ताट्टवर्गात्परस्यानामस्तोष्टुर्न स्यात् । षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात् किम् ? ईट्टे । टोः किम् ? सर्पिष्टमम् ।

रामष्टीकते—रामस् + टीकते इस दशा में रामस् की स् और टीकते की टकार का योग होने से 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से स् को ष्टुत्व ष् हो जाता है जिससे 'रामष्टीकते' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

पेष्टा—पेष् + ता इस दशा में पेष् की षकार और ता की तकार का योग होने से 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से त को ष्टुत्व 'ट' हो जाता है जिससे 'पेष्टा' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

तट्टीका—तत् + टीका इस दशा में तत् की त् और टीका की टकार का योग होने से 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से ष्टुत्व त को ट हो जाता है जिससे 'तट्टीका' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

चक्रिण्ढौकसे—चक्रिन् + ढौकसे इस स्थिति में चक्रिन् की न् तवर्ग का और ढौकसे की ढ टवर्ग का योग होने से 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से न को ष्टुत्व ण हो जाता है जिससे 'चक्रिण्ढौकसे' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये । जैसे कुछ निम्न इस प्रकार हैं—

हरिश् + षष्ठः = हरिष्षष्ठः, अधिस् + थाता = अधिष्ठाता, कष् + तः = कष्टः, हृष् + तः = हृष्ट. इत्यादि ।

न पदान्ता०—पदान्त टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) से परे नाम शब्द को छोड़कर स और तवर्ग (त, थ, द, ध, न) को ष्टुत्व न हो । जैसे—

षट् सन्त—षट् + सन्तःइस दशा में पदान्त षट् की ट् से सन्तः की सकार का योग होने पर 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से ष्टुत्व श् को ष् प्राप्त होता है परन्तु 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र से ष्टुत्व का निषेध हो जाता है जिससे 'षट् सन्तः' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*अनामनवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् षण्णवतिः ।

६६. तोः शि ८।४।४३॥

न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः ।

षट्ते=षट्+ते इस दशा में ट वर्ग षट् की ट् और तवर्ग 'ते' की त का योग होने पर 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से त को ष्टुत्व ट प्राप्त होता है परन्तु षट् की टकार पदान्त की ट् होने से तवर्ग का योग होने पर भी 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र से ष्टुत्व का निषेध हो जाता है जिससे 'षट् ते' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

पदान्तात्किम् इट्टे—पदान्त टवर्ग से सकार और तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है, ऐसा क्यों कहा गया है ! यदि 'न पदान्ताटोरनाम्' सूत्र में पदान्ता टवर्ग का पाठ न करते तो इट्टे आदि में ष्टुत्व का निषेध हो जाता, जो इष्ट नहीं है जिसके परिणामस्वरूप इट्टे आदि प्रयोग में भी ष्टुत्व का निषेध हो जाता है। अतः पदान्त टवर्ग का ही ग्रहण किया जाय इसीलिये 'न पदान्त ट्टोरनाम्' इस सूत्र में पदान्त टवर्ग का पाठ किया गया है। ईट्+ते यहां ईट् की ट् से ते की त का योग होने पर 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से त को ट ष्टुत्व हो जाताहै जिससे 'इट्टे' प्रयोग बनता है।

टोः किम् सर्पिष्टमम्—सर्पिष+तमम् इस दशा में 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से सर्पिष् की ष् और तमम् की त का योग होने से ष्टुत्व त को ट हो जाता है जिससे 'सर्पिष्टमम्' यह प्रयोग बनता है।

'टोः किम्' यदि पदान्त टवर्ग से परे ही सकार और तवर्ग के ष्टुत्व के निषेध का विधान न करते तो 'सर्पिष्टमम्' में भी ष्टुत्व का निषेध हो जाता जो इष्ट नहीं है। ष्टुत्व के निषेध से अनिष्ट रूप की आपत्ति हो जाती इसके निवारणार्थ पदान्त टवर्ग का पाठ किया गया है।

अनाम्नवति—ना, नवति और नगरी इन तीनों शब्दों को जोड़कर ष्टुत्व का निषेध होता है अर्थात् इन तीनों शब्दों के योग में पदान्त टवर्ग से स, तवर्ग का योग होने पर भी ष्टुत्व होगा 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र से निषेध नहीं होगा। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षण्णाम्—षट् + नाम् इस दशा में षट् पदान्त शब्द की ट् से नाम् शब्द परे होने पर तवर्ग न को ष्टुत्व ण हो जाता है। यहां 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र से ष्टुत्व के निषेध की शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि 'अनाम्नवतिनगरीणा-मिति' वाच्यम् इस वार्तिक से ष्टुत्व के निषेध का प्रतिषेध हो जाता है जिससे ष्टुत्व में कोई बाधा नहीं आती है। षट् + णाम् इस स्थिति में 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इस वार्तिक से णाम् की अनुनासिक र परे होने से षड् की डकार के स्थान में अनुनासिक 'ण' हो जाता है जिससे षण्णाम्' यह प्रयोग बनता है।

षण्णवतिः—षड् + नवतिः इस दशा में पदान्त टवर्ग से नवति के न तवर्ग का योग होने से 'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र से ष्टुत्व का निषेध प्राप्त होता है परन्तु 'अनाम्नवति नगरीणामि वाच्यम्' इस वार्तिक से नाम् नवति और नगरी इन तीनों शब्दों के ष्टुत्व का निषेध नहीं होता है अपितु 'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से ष्टुत्व हो जाता है जिससे षड् + णवति बनता है। इस दशा में 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इस वार्तिक से णवति ी अनुनासिक णकार परे होने से षड् की डकार को अनुनासिक ण् हो जाता है जिससे षण्णवतिः प्रयोग बनता है।

षण्णगर्यः—षट् + नगर्यः इस दशा में 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' इस वार्तिक से 'न पदान्ताट्टोरनाम्' के द्वारा ष्टुत्व के निषेध का प्रतिषेध हो जाता है जिससे 'ष्टुना ष्टुः' से न को ण ष्टुत्व हो जाता है। षड् + णगर्यः 'इस स्थिति में' प्रत्यये भाषायां नित्यं इस वार्तिक से णगर्य की अनुनासिक णकार 'के परे होने से ड् को अनुनासिक ण् हो जाता है जिससे 'षण्णगर्यः' यह प्रयोग बनता है।

तोः षि—तवर्ग से (त, थ, द, ध, न) परे षकार के होने पर तवर्ग को ष्टुत्व नहीं है।

सन्षष्ठः—सन् + षष्ठः इस दशा में तवर्ग न् और षष्ठः की ष्कार के योग में 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से ष्टुत्व प्राप्त होता है परन्तु तवर्ग से ष परे होने पर ष्टुत्व नहीं होता है। अतः 'तोः षि' सूत्र से ष्टुत्व का निषेध हो जाता है जिस से 'सन्षष्ठः' बनता है।

झलां जशोऽन्ते—पदान्त में झल् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जश्त्वविधायक सूत्रम्)

६७. झलां जशोऽन्ते ८।२।३६॥

पदान्ते झलां जश, स्यु । वागीशः ।

६८. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५

परः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः, एतद् मुरारिः ।

झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, ह इन वर्णों के स्थान पर जश् प्रत्याहार के वर्ण हों अर्थात् ज, ब, ड, द हों । जैसे—

वागीशः—वाक् + ईशः इस दशा में पदान्त वाक् शब्द में झल् प्रत्याहार के वर्ण क् को 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से जश् प्रत्याहार का ग् हो जाता है जिससे वागीशः यह प्रयोग निष्पन्न होता है । जश् प्रत्याहार में ५ वर्ण हैं फिर क् को ग् ही क्यों होता है और कोई वर्ण क्यों नहीं होता है ? इसके उत्तर में यह कहा जायेगा कि क् का कण्ठ स्थान है जश् प्रत्याहार के वर्णों में केवल ग् ही कण्ठ स्थानीय है । अतः स्थान की समानता के कारण क् को ग् ही होता है अन्य वर्ण नहीं ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहियें, जैसे कुछ निम्न प्रकार के हैं—

वाक् + अधिपः = वागधिपः, वाक् + ईश्वरः = वागीश्वरः, जगत् + ईशः = जगदीशः, चित् + अंशः = चिदशंः, दिक् + ईशः = दिगीशः, अचः + अन्तः = अजन्तः, अच् + हीनम् = अज्झीनम्, षट् + ऐते = षडेते, आम् + अन्तः = आवन्तः इत्यादि ।

यरोऽनुनासिके०—पदान्त यर् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान में अर्थात् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, इन वर्णों के स्थान पर अनुनासिक वर्ण विकल्प से हों, आगे अनुनासिक वर्ण होने पर ।

अनुनासिक—मुख और नाक से बोले जाने वाले वर्णों को अनुनासिक कहते हैं, अर्थात् ञ, म, ङ, ण, न को अनुनासिक कहते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वा) प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम्, चिन्मयम् ।

६६. तोर्लि ८।४।६०॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । तल्लयः । विद्वांल्लिखति । नस्यानुनासिको लः ।

एतद्+मुरारीः इस दशा में पदान्त यर् प्रत्याहार के द् वर्ण के स्थान पर अनुनासिक अर्थात तवर्ग का पञ्चम वर्ण 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' सूत्र से न् विकल्प से होता है, अनुनासिक मुरारि की म् परे होने के कारण, इस प्रकार अनुनासिक न् होने पर एतन्मुरारिः बनता है, पक्ष में एतद् मुरारिः भी बनता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार हैं—

धिक्+मूर्खः=धिङ्मूर्खः, प्राक्+मही—प्राङ्मही, मद्+न्यायः=मन्न्यायः, षड्+महात्मानः=षण्महात्मानः, इत्यादि।

प्रत्यते भाषायाम्०—लौकिक व्याकरण में 'अथवा' काव्य नाटकादि भाषा के लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् प्रत्याहार में वर्णों के स्थान पर नित्य अनुनासिक आदेश हो, अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहने पर अर्थात् लौकिक भाषा में (वैदिक भाषा को छोड़कर) यर् अर्थात् पदान्त य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स के स्थान पर अनुनासिक प्रत्यय परे होने पर नित्य अनुनामिक आदेश होता है। जैसे—

चिन्मयम्—चिद्+ममम् इस दशा में मयट प्रत्यय की मकार अनुनासिक परे होने के कारण 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इस वार्तिक से पदान्त यर् की द् को अनुनासिक न् हो जाता है जिससे 'चिन्मयम्' प्रयोग निष्पन्न होता है।

तन्मात्रम्—तत्+मात्रम् इस स्थिति में मात्रम् प्रत्यय की अनुनासिक म परे होने से 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इस वार्तिक से पदान्त यर् प्रत्याहार की द् को अनुनासिक 'न्' हो जाता है जिससे तन्मात्रम् यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्वसवर्णविधायक सूत्रम्)

७० उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः ।

(नियमविधायकपरिभाषा सूत्रम्)

७१. तस्मादित्युत्तरस्य१।१।६७॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये । उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार हैं ।

मृड् + मयम् = मृण्मयम् अट् + मयम् = अम्मयम्, वाग् + मयम् = वाङ्मयम्, षड् + णगर्यः = षण्णगर्य, इत्यादि ।

तोर्लि—तवर्ग के स्थान में (स, थ, द, ध, न के स्थान में) लकार हो लकार आगे होने पर, अर्थात् तवर्ग को लकार आदेश होता है । यदि आगे लकार परे हो तो । जैसे—

तल्लयः—तत् + लयः यहां तवर्ग की त् से लकार लयः की 'ल' आगे परे होने से 'तोर्लि' सूत्र से त् को ल् पर सवर्ण हो जाता है जिससे 'तल्लयः' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

विद्वांल्लिखति— विद्वान् + लिखति इस स्थिति में तवर्ग की न् से लिखति की ल परे होने से 'तोर्लि' सूत्र से अनुनासिक न् को अनुनासिक ल् पर सवर्ण हो जाता है जिससे 'विद्वांल्लिखति' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

इसी प्रकार कुछ अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिये । जैसे—

धीमान् + लिखति = धीमांल्लिखति, तत् + लीत = तल्लीनः; कुशान् + लाति = कुशांल्लाति, तत् + लीला = तल्लीला, हसन् + लिखति = हसल्लिखति इत्यादि ।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्व—उत् उपसर्ग से आगे स्था और स्तम्भ शब्द होने पर पूर्व वर्ण को सवर्णी पूर्व सवर्ण आदेश होता है । उत्थानम्—तस्मादित्युत्तरस्य—पञ्चम्यन्त शब्द से किया जाने वाला कार्य किसी अन्य वर्ण के व्यवधान रहित वर्ण के स्थान में (पर के स्थान में) आदेश हो ऐसा समझना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नियमविधायकपरिभाषासूत्रम्)

७२. आदेः परस्य १।१।५४।।

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थः ।

७३. झरो झरि सवर्णे ८।४।६५।।

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ।

(चर्त्वविधायक सूत्रम्)

७४. खरि च ८।४।५५।।

खरि झलां चरः स्युः इत्युदो दस्य तः उत्थानम् ।

उत्तम्भनम् ।

अर्थात् 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' सूत्र में उदः इस पञ्चम्यन्त शब्द से पूर्व सवर्ण का निर्देश किया गया है । इस पञ्चम्यन्त उदः शब्द से व्यवधान रहित पर वर्ण के स्थान पर पूर्व सवर्ण हो ।

आदेः परस्य— पर वर्ण के स्थान पर कहा गया कार्य उस वर्ण के अर्थात् पर वर्ण के स्थान पर आदेश हो ।

झरोझरि सवर्णे—हल् अर्थात् व्यंजनों से परे झर प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर अर्थात् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ढ, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स इन वर्णों से सवर्णी अर् परे होने पर विकल्प से (अर् प्रत्याहार के वर्णों का) लोप हो जाता है ।

खरि च—खर् प्रत्याहार के वर्णों के परे होने पर अर्थात् ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स के आगे परे होने पर झल् प्रत्याहार के स्थान में अर्थात् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ट, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह के स्थान में चर् प्रत्याहार के वर्ण होवें । इस सूत्र से उ द् की दकार को चर्त्व त हो जाता है जिससे उत्थानम् आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं ।

उत्थानम्—उद्+स्थानम् इस दशा में उद् उपसर्ग से 'स्था' शब्द परे होने क कारण उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' सूत्र से पूर्व सवर्ण आदेश प्राप्त होता है 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र में अन्तिम वर्ण द् को पूर्व सवर्ण प्राप्त होता है परन्तु पञ्चमी के निर्देश से किये जाने वाला कार्य वर्णों के व्यवधान से रहित पर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान में आदेश है। उसके पश्चात् 'आदेः परस्य' इस सूत्र से पर से स्थान पर कहा गया आदेश आदि वर्ण के स्थान पर होता है। अतः स्था के स् के स्थान पर थ् आदेश होता है जिससे उद् + थ् थानम् इस स्थिति में हल् अर् अर्थात् झर् प्रत्याहार के दकार से परे अर् प्रत्याहार के वर्ण थ् को झर् के आगे होने पर विकल्प से लोप हो जाता है। उद् + थानम् इस दशा में खर् प्रत्याहार के वर्ण ककार के परे होने से झल् प्रत्याहार के वर्ण द् को चर् प्रत्याहार का वर्ण त् हो जाता है जिससे उत्थानम् निष्पन्न होता है। लोप के अभाव में अर्थात् जब 'झरोझरि सवर्णे' से थ् का लोप नहीं होता है तो 'खरि च' सूत्र में पठित चकार के कारण द् और थ् दोनों चर्त्व (त्) हो जाता है जिससे उत्थानम् भी निष्पन्न होता है।

उत्तम्भनम्—उद् + स्तम्भनम् इस दशा में उद् से स्तम्भ शब्द के परे होने से 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णस्य' सूत्र से परसवर्ण प्राप्त होता है। तस्मादुत्तरस्य' सूत्र से पञ्चमी अर्थात् उदः इस पञ्चम्यन्त शब्द से निर्दिष्ट कार्य व्यवधान रहित पर के स्थान में हों परन्तु 'आदेः परस्य' इस सूत्र के नियम पर के स्थान पर होने वाला आदेश आदि के स्थान पर हो। अतः स्तम्भ' शब्द की स् के स्थान पर थ् हो जाता है। उद् थ् + थानम् इस स्थिति में हलन्त द् से झर् प्रत्याहार के वर्ण का (थ् का) झर् त परे होने से 'झरोझरि सवर्णे' सूत्र से थ् का लोप विकल्प से होता है। उद् तम्भनम् इस दशा में 'खरि च' सूत्र खर् प्रत्याहार के वर्ण 'त' परे होने पर झल् प्रत्याहार के वर्ण द् को चर्त्व त् हो जाता है जिससे 'उत्तम्भनम्' शब्द निष्पन्न होता है। पक्ष में अर्थात् थ् लोप के अभाव में थ् को भी 'खरिच्' से चर्त्व त् हो जाता है जिससे भी 'उत्तम्भनम्' बनता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ नियम इस प्रकार हैं—

उत्थापनम्—उद् + स्थापनम् = उत्थापनम, उत्थापयति—उद् + स्थापयति = उत्थापयति, उत्तम्भते—उद् + स्तम्भते = उत्तम्भते इत्यादि।

झयो होऽन्य०—झय् प्रत्याहार के वर्णों से अर्थात् झ, घ, ढ, ध, ख,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७५. **झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२॥**

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः ।

नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः—वाग्घरिः वाग्हरिः ।

७६. **शश्छोऽटि ८।४।६३॥**

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि । तद् शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन । जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः । तच्छिवः तच्शिवः ।

झ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प इन वर्णों से परे ह' के स्थान में विकल्प से पूर्व सवर्ण आदेश होता है ।

नादस्य—नाद, घोष, सम्वार तथा महाप्राण प्रयत्न वाले 'ह' वर्ण के स्थान में उसके समान ही नाद, घोष, संवार तथा महाप्राण प्रयत्न को प्रत्येक वर्ग का चौथा वर्ण होता है अर्थात् प्रत्येक कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग आदि वर्गों के चतुर्थ वर्ण घ, झ, ढ, ध, भ नाद, घोष. संवार और महाप्राण प्रयत्न वाले होते हैं और हकार का भी नाद, घोष, संवार और महाप्राण प्रयत्न होता है । यदि पूर्व शब्द का अन्तिम वर्ण क् होगा तो 'ह' को 'थ' होगा । इसी च् को झ, ट, को ढ, त को 'ध', 'प' को 'भ' होगा ।

वाग्घरिः—वाक् + हरिः इस दशा में झल् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान में जश् प्रत्याहार का वर्ण ग् झलां जशोऽन्ते सूत्र से होता है । फिर झय् प्रत्याहार के वर्ण ग् से 'झयोहोऽन्यतरस्याम्' सूत्र से नाद, घोष, संवार तथा महाप्राण प्रयत्न वाले 'ह' के स्थान में नाद, घोष, संवार तथा महाप्राण प्रयत्न वाला 'घ' विकल्प से हो जाता है जिससे वाग्घरिः शब्द निष्पन्न होता है । पक्ष में पूर्वसवर्ण 'घ' आदेश के अभाव में वाग्हरि' प्रयोग निष्पन्न होता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये । उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार हैं—

अच् + हीनम् = अज्झीनम्, तत् + हित्वा = तद्धित्वा, तत् + हस्ते = तद्धस्ते, महत् + हर्ष = हमद्धर्षः, अच् + हलौ = अज्झलौ पक्ष में चतुर्थ वर्ण नहीं होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शश्छोऽटि—झय् प्रत्याहार की श् को विकल्प से छ होता है। अट् प्रत्याहार के वर्ण परे होने पर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र के आगे होने पर झय् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले श को विकल्प से छ होता है। जैसे—

तच्छिवः—तद्+शिवः इस स्थिति में तवर्ग द् शिवः के शकार का योग होने से 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से द् को ज् होता है 'खरि च' झल प्रत्याहार के वर्ण ज् को खर् प्रत्याहार की श आगे परे होने से च् हो जाता है। झय् प्रत्याहार की शकार को विकल्प से 'शश्छोऽटि' सूत्र से 'छ' होता है। क्योंकि अट् प्रत्याहार का 'व' वर्ण आगे परे है। अतः छत्व पक्ष में 'तच्छिवः' प्रयोग निष्पन्न होता है और छत्व के अभाव पक्ष में 'तच्छिवः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरण कुछ निम्न प्रकार हैं—

तद्+श्रुत्वा=तच्छ्रुत्वा, तच्श्रुत्वा, तद्+शयः=तच्छयः, तच्शयः, तद्+शयनम्=तच्छयनम्, तच्शयन, तत्+शेते=तच्छेते, तच्शेते, वाक्+शूरः=वाग्शूरः, तद्+शान्तिः=तच्छान्ति, यावत्+शक्यं=यावच्छक्यं इत्यादि।

मोऽनुस्वार—मकारान्त पद के स्थान में हल् (व्यंजन) परे होने पर अनुस्वार होता है। जैसे—

हरिं वन्दे—हरिम्+वन्दे इस दशा में "अलोऽन्त्यस्य" से मकारान्त हरिम् की म् को व व्यंजन वर्ण परे होने से "मनोऽनुस्वारः" सूत्र से अनुस्वार (ं) हो जाता है जिससे "हरे वन्दे" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरण कुछ निम्न प्रकार दिये गये हैं—

लेखम्+वाचयति=लेखं वाचयति, चित्रम्+पश्यति=चित्रं पश्यति, शिवम्+भजति=शिवं भजति, गुरुम्+प्रणमति+गुरुं प्रणमति, मित्रम्+हसति=मित्रं हसति, वेदम्+पठति=वेदं पठति इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनुस्वार-विधायक-सूत्रम्)

छत्वममीति वाच्यम् । तच्छ्लोकेन ।

७७. मोऽनुस्वारः ८।३।२३।

मान्तयस्य पदस्यानुस्वारो हलि । हरिं वन्दे ।

७८. नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४।।

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः । यशांसि । आक्रंस्यते । झलि किम् ! मन्यते ।

(परसवर्ण-विधायक-सूत्रम्)

७९. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८।।

स्पष्टम् । शान्तः ।

नश्चापदान्तस्यझलि—अपादान्त अर्थात् पदान्तभिन्न नकार और मकार के स्थान में अनुस्वार हो । झल् प्रत्याहार से वर्ण आगे परे होने पर अर्थात् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह इन वर्णों में किसी वर्ण के आगे परे होने पर । जैसे—

यशांसि—यशान् + सि इस दशा में अपदान्त यशान् शब्द की न को झल् प्रत्याहार के वर्ण स के परे होने के कारण 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से अनुस्वार (ं) हो जाता है जिससे 'यशांसि' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

आक्रंस्यते—आक्रम् + स्यते इस दशा में अपदान्त आक्रम् की म् से झल् प्रत्याहार के वर्ण स के परे होने से 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है जिससे 'आक्रंस्यते' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

झलि किम् मन्यते—मन् + यते इस स्थिति में अपदान्त मन् की न् है परन्तु झल् प्रत्याहार का कोई वर्ण न् से परे नहीं है । अतः 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से मन् की न् को अनुस्वार नहीं होता है । यदि प्रस्तुत सूत्र में 'झलि' अर्थात् झल् प्रत्याहार का वर्ण परे हो, ऐसा प्रतिबन्ध न होता तो 'मन्यते' में न् को अनुस्वार हो जाता जो इष्ट नहीं है । अतः इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८०. वा पदान्तस्य ८।४।५९॥

त्वङ् करोषि, त्वं करोषि।

८१. मो राजि समः क्वौ ८।३।२५॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

लिये ही 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र में झलि अर्थात् झल् प्रत्याहार का प्रतिबंध स्वीकार किया गया है जो सर्वथा उचित ही है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार हैं—

मनान् + सि = मनांसि, पयान् + सि = पयांसि, सरान् + सि = सरांसि, नम् + स्यति = नंस्यति।

अनुस्वारस्ययि परसवर्णः—यय् प्रत्याहार के वर्ण आगे परे होने पर अर्थात् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प इन वर्णों में किसी एक वर्ण के परे होने पर अनुस्वार को पर सवर्ण होता है। जैसे—

शान्तः—शाम् + तः इस दशा में मकारान्त शाम् की मकार को 'मोऽनुस्वारः' सूत्र से म् को अनुस्वार हो जाता है। फिर यय् प्रत्याहार का वर्ण त आगे परे होने पर अनुस्वार को परसवर्ण अर्थात् त का सवर्णी न् हो जाता है जिससे 'शान्तः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार है—

काम् + तः = कां + तः = कान्तः, गुम् + फित् = गुं + फित् = गुम्फितः, शाम् + तिः = शां + तिः = शान्तिः, काम् + तिः = कां + तिः = कान्तिः इत्यादि।

वापदान्तस्य—यय् प्रत्याहार के वर्णों के आगे परे होने पर अर्थात् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प इन वर्णों में से किसी एक वर्ण के आगे आने पर पदान्त अनुस्वार के स्थान पर विकल्प से परसवर्ण होता है। जैसे—

त्वङ् करोषि—त्वम् + करोषि इस दशा में मकारान्त त्वम् पद की मकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८२. हे मपरे वा ८।३।२६॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा। किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।

(वा) यवलपरे यवला वा। कियँ ह्यः किं ह्यः। किवँ ह्वलयति, किं ह्वलयति किल् ह्लादयति किं ह्लादयति।

को 'मनोऽनुस्वारः' सूत्र से अनुस्वार हो जाता है और अनुस्वार को 'वा पदान्तस्य' सूत्र से विकल्प से परसवर्ण अर्थात् परवर्ण क का सवर्णी ङ् हो जाता है तो 'त्वङ् करोषि निष्पन्न होता है। पक्ष में त्वं करोषि प्रयोग बनता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। जैसे कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

त्वम् + गतिः = त्वं गतिः = त्वङ्गतिः, धर्मम् + चरति = धर्मं चरति = धर्मञ्चरति, शत्रुम् + जयति = शत्रुं जयति = शत्रुञ्जयति, जलं + तरति = जलन्तरति, धर्मम् + चर = धर्मं चर = धर्मञ्चर इत्यादि।

मोराजिसमः क्वौ—क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के आगे परे होने पर उपसर्ग को म् की म् ही होता है अर्थात् 'मोऽनुस्वारः' सूत्र से 'म्' को अनुस्वार नहीं होता है। अतः यह 'मोऽनुस्वारः' का अपवाद सूत्र है। जैसे—

सम्राट्–सम् + राट् इस दशा में क्विप् प्रत्यान्त राज् शब्द से आगे परे होने पर सम् उपसर्ग की म् को 'मोऽनुस्वार' से प्राप्त अनुस्वार नहीं होता है 'मोराजिसमः क्वौ' सूत्र से निषेध हो जाता है अर्थात् म् को म् ही होता है जिससे 'सम्राट' प्रयोग निष्पन्न होता है।

हेमपरेवा–म परक हकार के परे होने पर म् के स्थान में म् ही हो अर्थात् जिस मकार से हकार परे हो उस मकार को मकार ही हो विकल्प से। जैसे—

किम्ह्मलयति—किम् + ह्मलयति इस स्थिति में 'मोऽनुस्वारः' सूत्र से किम् की म् को अनुस्वार प्राप्त होता है, परन्तु म् से ह परे होने के कारण 'हे मपरे वा' सूत्र से विकल्प से म् को म् हो जाता है। 'किम् ह्मलयति' बनता है पक्ष में 'मोऽनुस्वार से अनुस्वार हो जाता है, जिससे 'किं ह्मलयति' प्रयोग बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८३. नपरे नः ८।३।२७।।

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् ह्नुते, किं ह्नुते।

८४. आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६।।

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवो स्तः।

यवलपरे०—य, व, ल से परे हकार के होने पर म् को विकल्प से य, व, ल होते हैं। जैसे—

कियँ ह्यः- किम्+ह्यः इस स्थिति में 'मोऽनुस्वारः सूत्र से अनुस्वार प्राप्त होता है परन्तु म् से य् परक हकार परे होने के कारण 'यवलपरेयवला वा' वार्तिक से म् को विकल्प से य् हो जाता है, जिससे किम् ह्यः और पक्ष में अनुस्वार होने पर किं ह्यः ये रूप बनते हैं।

किव् ह्वलयति—किम्+ह्वलयति इस दशा में ह परक वकार के योग में 'यवलपरे यवला वा' वार्तिक से विकल्प से किम् की म् को वं हो जाता है, किवं ह्वलयति बनता है, पक्ष में म् को अनुस्वार हो जाता है, जिससे किं ह्वलयति प्रयोग निष्पन्न होता है।

किलं ह्लादयति—किन्+ह्लादयति इस दशा में ह परक लकार के योग में 'यवलपरे यवला वा' इस वार्तिक से किम् की म् को लं हो जाता है, जिससे 'किलँ ह्लादयति' पक्ष में म् को अनुस्वार होने पर 'किं ह्लादयति' बनता है।

नपरे नः—न परे है जिससे उस हकार के योग में अर्थात् न परक हकार के योग से म् को विकल्प से न् होता है, जैसे किन् ह्नुते किन् ह्नुते (क्या छिपाता है) किम्+ह्नुते इस दशा में न परक हकार के परे होने से 'नपरे नः' सूत्र से किम् की म् को विकल्प नूँ हो जाता है, जिससे किन्ँ ह्नुते पक्ष में म् को अनुस्वार हो जाता है, जिससे किं ह्नुते बनता है।

आद्यन्तौ टकितौ—टित् और कित् आगम जिस पद अथवा वर्ण समूह के कहे गये हों, क्रमशः उसके आदि और अन्त के हों अर्थात् टित् आगम आदि को और कित् आगम अन्त में हों, अर्थात् टित् आगम् इसे कहते हैं, जिससे ट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। वे आगम् टित् कहलाते हैं जैसे, धुट्, नुट्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८५. ङ्णोः कुक्टुक शरि ८।३।२८।।

वा स्तः । चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् ।

प्राङ् ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः । सुगणठ् षष्ठः, सुगणट षष्ठः, सुगण् षष्ठः ।

टुट् सुट् आदि में ट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । अतः इनको टित् कहते हैं ।

कित् से तात्पर्य उन प्रत्यय अथवा आगमों से है जिनके 'क' की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, वे कित् कहलाते हैं, जैसे कुक् टुक् क्त्वा क्त आदि में क् को इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, अतः इन्हें कित् कहते है ।

ङ्णो कुक्टुक् शरि—ङ्कारान्त तथा णकारान्त शब्दों में शर् प्रत्याहार के वर्ण परे होने पर अर्थात् श, ष, स वर्णों में किसी एक वर्ण के आगे परे होने पर विकल्प से क्रम से कुक् टुक् का आगम होता है ।

चयौ द्वितीया शरि पौष्क०—चय् प्रत्याहार के वर्णों के स्थान पर अर्थात् च, ट, त, क, प के स्थान पर शर् प्रत्याहार अर्थात् श ष, स परे होने पर द्वितीय वर्ण पौष्करसादि आचार्य के मत में विकल्प होते हैं । क्योंकि पाणिनि के मत में ये द्वितीय अक्षर नहीं होते हैं, इसी लिये विकल्प कहा है । जैसे—

प्राङ् ख् षष्ठः—प्राङ् + षष्ठः इस दशा में ङ् से शर् प्रत्याहार का ष परे होने से 'ङ्शोः कुक्टुक् शरि' सूत्र में कुक् का आगम विकल्प से हो जाता है, परन्तु यह कुक् आगम आदि और अन्त किसके अवयव के हो, इसके समाधानार्थ कहा है कि टित् और कित् आगम क्रम से आदि और अन्त के अवयव के हो अतः 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र की सहायता से प्राङ् की ङकार के अन्त में कुक् होता है । उक् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, प्राङ् क् षष्ठः इस स्थिति में 'चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' इस वार्तिक से चय् प्रत्याहार के वर्ण क् को द्वितीय वर्ण ख् विकल्प से हो जाता है, जिससे प्राङ् ख् षष्ठः' निष्पन्न होता है । पक्ष में क् ष के योग में दोनों मिलाकर 'क्ष्' होता है जिससे प्राङ्षष्ठः बनता है । कुक् आगम के अभाव पक्ष में प्राङ् षष्ठ ही बनता है, इस प्रकार तीन रूप बनते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८६. ङः सि धुट् ८।३।२९।।

डात्परस्य सस्य धुड्वा । षट्त्सन्तः, षट् सन्तः ।

८७. नश्च ८।३।३०।।

मान्तात्परस्य सस्य धुड् वा । सन्त्सः सन्सः ।

८८. शि तुक् ८।३।३१।।

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः सञ्च्शम्भुः सञ्शम्भुः ।

सुगण्ठ् षष्ठः—सुगण् + शष्ठः इस दशा में ण् से शर् प्रत्याहार की प परे होने से टुक् आगम कित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र की सहायता से 'ङ्णो कुक्टुक् शरि' सूत्र से विकल्प से टुक् का आगम ण् के अन्त में होता है है टुक् के उक् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, जिससे सुगण् ट् षष्ठः इस स्थिति में 'चयो द्वितीया शरि पोष्करसादेरिति वाच्यम्' इस वार्तिक से चय् प्रत्याहार के वर्ण ट् को द्वितीया वर्ण ठ् विकल्प से हो जाता है, जिससे सुगण्ठ् षष्ठः निष्पन्न होता है । द्वितीय अक्षर के अभाव पक्ष में ट् अर्थात् सुगण्ट् षष्ठः और टुक् के आगम के अभाव में सुगण षष्ठः ये तीन रूप निष्पन्न होते है ।

ङः सि धुट्—डकार से 'स' पर होने परे विकल्प से धुट् का आगम होता है । जैसे—

षट्त्सन्तः—षड् + सन्तः इस स्थिति में डकार से 'स' परे होने पर 'ङःसिधुट्' सूत्र से विकल्प से धुट् का आगम हो जाता है । धुट् का उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, षड् ध् + सन्तः इस स्थिति 'खरि च' सूत्र में झल् प्रत्याहार के वर्ण ड् और ध् दोनों को चर्त्व अर्थात् ट् त् हो जाता है क्योंकि खर् प्रत्याहार का 'स' आगे परे है, अतः 'षटत्सन्तः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है, पक्ष में (धुड् के अभाव में) षट् सन्तः ही निष्पन्न होता है ।

नश्च—नकारान्त शब्द से स परे होने पर विकल्प से धुड् का आगम होता है । जैसे—

सन्त्सः—सन् + सः इस स्थिति में नकारात्मक सन् शब्द से 'स' की 'स' परे होने से 'नश्च' सूत्र से 'आद्यन्तौ टकितौ' की सहायता से धुट् का आगम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङमुड गमविधायक सूत्रम्)

८९. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८।३।३२।।

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुट्। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन्नच्युतः।

(रूत्वविधायक-सूत्रम्)

९०. समः सुटि ८।३।५।।

समो रुः। सुटि।

(अनुनासिक-विधायक-सूत्रम्)

९१. अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८।३।२।।

अत्र रु प्रकपणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा।

हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता जिससे सन्+ध्+सः इस दशा में झल प्रत्याहार की ध् को खर् प्रत्याहार की सः को 'स' परे होने से "खरि च" सूत्र से "ध्" को चर्त्व त् हो जाता है जिससे "सन्त्स" निष्पन्न होता है और पक्ष में अर्थात् धुट् के आगम के अभाव में "सन्सः" ही बनता है।

शितुक्—पदान्त नकार से 'श' परे होने पर विकल्प से तुक् का आगम होता है। जैसे—

सञ्छशम्भुः—सन्+शम्भुः इस दशा में सन् इस नकारान्त पदान्त शब्द से शम्भुः की श परे होने से "शितुक्" सूत्र से विकल्प से तुक् का आगम हो जाता है, तुक् के उक् की इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप हो जाता है, सन् त्+शम्भुः इस स्थिति में 'शश्छोऽटि' सूत्र से विकल्प से 'श' को छ हो जाता है और 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से त् को च् और न् को ञ् हो जाता है। सञ् च् छम्भुः इस स्थिति में झर् प्रत्याहार की च् से झर् प्रत्याहार का छ परे होने से 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र से विकल्प से च् का लोप हो जाता है, जिससे सञ्छम्भुः शब्द बनता है। चकार के लोप के अभाव पक्ष में 'सञ्च्छम्भुः' बनता है, छत्व के अभाव पक्ष में सञ्चशम्भुः निष्पन्न होता है और तुक् के आगम के अभाव पक्ष में सञ्शम्भुः निष्पन्न होता है। इस प्रकार चार रूप बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनुस्वार विधायक सूत्रम्)

९२. अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८।३।४।

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ।

ङमोह्रस्वादचि०—ह्रस्व वर्ण से परे ङम् प्रत्याहार के अर्थात् ङ, ण, न वाले जो शब्द उनसे अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ परे होने पर ङ से ङुट्, ण् से णुट् और न् से नुट् का आगम नित्य होता है। जैसे—

प्रत्यङ्ङात्मा—प्रत्यङ् + आत्मा इस स्थिति में ह्रस्व ङम् प्रत्याहार के वर्ण ङ् से स्वर आत्मा की 'आ' परे होने से 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्' सूत्र से नित्य 'ङुट्' का आगम हो जाता है। ङुट् के उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'प्रत्यङ्ङात्मा' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

सुगण्णीशः—सुगण् + ईशः इस दशा में ह्रस्व ङम् प्रत्याहार की णकार से स्वर ईशः की ईकार परे होने से 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्' सूत्र से णुट् का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'सुगण्णीशः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

सन्नच्युतः—सन् + अच्युतः इस स्थिति में ह्रस्व ङम् प्रत्याहार की न् से अच्युत की "अ" पर होने से "ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्" सूत्र से "नुट्" का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे "सन्नच्युतः" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ निम्न प्रकार हैं—

गच्छन् + इति = गच्छन्निति, खादन् + अपि = खादन्नपि, लिखन् + इति = लिखन्निति, स्वपन् + इति = स्वपन्निति, तस्मिन् + इति = तस्मिन्निति, क्रीडन् + अपि = क्रीडन्नपि इत्यादि।

समः सुटि—सम् शब्द की मकार को रुत्व हो, सुट् प्रत्याहार का वर्ण आगे परे होने पर।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा—यहाँ रुत्व के प्रकारण में रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक (ँ) होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विसर्ग-विधायक-सूत्रम्)

९३. **खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५॥**

खरि परे अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः ।

(सकार-विधायक-वार्तिकम्)

(वा०) संपुंकानां सो वक्तव्यः ।सस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता ।

अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः—अनुनासिक से परे अर्थात् अनुनासिक के अतिरिक्त र के पूर्व वर्ण को अनुस्वार का आगम हो अर्थात् जिस रूत्व के प्रसंग में अनुनासिक का विधान किया जा चुका है। उसको छोड़कर अर्थात् अनुनासिक भिन्न प्रकरण में रूत्व के प्रसंग में पूर्व वर्ण को अनुस्वार होवे ।

खरवसानयो:—खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों के परे होने पर अवसान में अर्थात् शब्द के अन्त में र् को विसर्ग होवे ।

सम्पुकानां सो वक्तव्यः—सम्, पुम् और कान् के इन शब्दों की विसर्गों को स होता है। ऐसा कहना चाहिये। जैसे—

संस्कर्ता—सम् + कर्ता इस स्थिति में "समः सुट् करोतौ भूषणे" इस सूत्र से सम् उपसर्ग से कृ धातु के आगे होने पर सुट् आगम होता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे सम् + स्कर्ता इस स्थिति में "समः सुटि" सम् उपसर्ग सुट् परे रहते सम् की म् को "समः सुटि" सूत्र से रूत्व होता है। उ की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" सूत्र से र् को विसर्ग (:) हो जाते हैं फिर "सम्पुंकानां सो वक्तव्यः" इस वार्तिक से विसर्गों के स्थान में स् हो जाता है तथा "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इस सूत्र से विकल्प से रूत्व के प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को अनुनासिक (ँ) हो जाता है जिससे संस्स्कर्ता और अनुनासिक के अभाव पक्ष में "अनुनासिकात्परो-ऽनुस्वारः" सूत्र से अनुस्वार हो जाता है जिससे संस्स्कर्ता" यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ उदाहरण निम्न प्रकार दिये जाते हैं—

सम् + स्कारः + सँस्स्कारः, संस्कारः, सम् + स्कृतिः = सँस्स्कृतिः संस्कृतिः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुंस्कोकिलः
पुंस्कोकिलः
पुस्कोकिलः

९४. पुमः खय्यम्परे ८।३।६॥

अम्परे खयि पुमो रुः । पुंस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः ।

९५. नश्छव्यप्रशान् ८।३।६॥

अम्परे छवि नान्तस्य तदस्य रुः, न तु प्रशान् शब्दस्य ।

(सकार-विधायक-सूत्रम्)

९६. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४॥

खरि । चक्रिस्यात्रायस्व, चक्रिस्त्रायस्व । अप्रशान् किम् । प्रशान् तनोति । पदस्येति किम् ? हम्ति ।

सम् + स्कृतम् = संस्स्कृतम्, संस्स्कृतम्, सम् + करोति = संस्स्करोति, संस्स्करोति इत्यादि ।

पुमः खय्यम्परे—अम्परक खय् प्रत्याहार के वर्णों के आगे परे होने पर पुम् शब्द की म् को रूत्व हो । जैसे—

पुंस्कोकिलः—पुम् + कोकिलः इस स्थिति में "पुम्: खय्यम्परे" सूत्र से पुम् शब्द के म् रूत्व होता है क्योंकि खय् प्रत्याहार का वर्ण कोकिल का क के आगे परे है। "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इस सूत्र से रूत्व के प्रसंग में विकल्प से पूर्व वर्ण हो, अनुनासिक हो जाता है और पक्ष में "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" सूत्र से अनुस्वार हो जाता है। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" सूत्र से रूत्व की र को विसर्ग हो जाते हैं। फिर सम्पुंकानां सो वक्तव्यः" इस वार्तिक से विसर्गों के स्थान में स् हो जाता है जिसमें पुंस्कोकिलः और पुंस्कोकिल ये दो रूप निष्पन्न होते हैं ।

नश्छव्यप्रशान्—अम्परक छव् प्रत्याहार के वर्णों के परे होने पर नकारान्त पद की न् को रूत्व हो जाता है, किन्तु नकारान्त शब्दों में प्रशान् शब्द को छोड़कर ही रूत्व होता है ।

विसर्जनीयस्य सः—खर् प्रत्याहार के वर्णों के परे होने पर अर्थात् ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स इन वर्णों के परे होने पर विसर्गों के स्थान में स होवे । जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९७. नृन् पे ८।३।१०॥

नृन् इत्यस्त रूर्वा पे ।

९८. कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८।३।३७॥

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य≍क≍पौ स्तः चाद् विसर्गः । नृं≍पाहि, नृ≍ँ पाहि, नृ पाहि, नृ न्पाहि ।

चक्रिंस्त्रायस्व—(हे चक्रधारी विष्णु 'मेरी' रक्षा करो) चक्रिन् + त्रायस्व नकारान्त पद चक्रिन् की नकार को छव् प्रत्याहार के वर्ण त परे होने के कारण "नश्छव्यप्रशान्" सूत्र से रूत्व हो जाता है । 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" सूत्र से विकल्प से रूत्व प्रकरण में अनुनासिक (ँ) हो जाता है और पक्ष में "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" सूत्र के अनुस्वार (ं) हो जाता है । "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" सूत्र से र को विसर्ग हो जाता है और "विसर्जनीयस्य सः" सूत्र से विसर्गों के स्थान में स् हो जाता है जिससे "चक्रिँस्त्रायस्व तथा चक्रिंस्त्रायस्व" ये दो रूप निष्पन्न होते हैं ।

अप्रशान् इति किम् प्रशान् तनोति—"नश्छव्यप्रशान्" इस सूत्र में नकारान्त पदों को रूत्व होता है परन्तु प्रशान् शब्द को छोड़कर ऐसा क्यों कहा गया है? इसके समाधान में कहा गया है कि यदि अप्रशान् का सूत्र में पाठ न करते तो "प्रशान् तनोति" इस प्रयोग में भी रूत्व हो जाता जो इष्ट नहीं है । इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही सूत्र में "अप्रशान्" शब्द का पाठ किया गया है, नहीं तो इष्ट सिद्धि नही हो सकती थी ।

पदान्तस्य किम् हन्ति—"नश्छव्यप्रशान्" इस सूत्र में नकारान्त शब्दों का विशेषण पदान्त क्यों दिया गया है अर्थात् पदान्त नकारान्त शब्दों का ही रूत्व विधान क्यों किया गया है ? इसके उत्तर में कहा है कि यदि नकारान्त पदों का विशेषण पदान्त न स्वीकार करते तो "हन्ति" जैसे शब्दों में भी रूत्व होने लगता जिससे अनिष्ट रूपों की सिद्धि होने लगती । अतः अनिष्ट रूपों की आपत्ति को दूर करने के लिये पदान्त नकारान्त शब्दों का ही रूत्व विधान किया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आम्रेडित संज्ञा-सूत्रम्)

९९. तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।१२।।

द्विरुक्तस्य परम् आम्रेडितं स्यात् ।

१००. कानाम्रेडिते ८।३।१२।।

कान्नकारस्य रुः स्याद् आम्रेडिते । काँस्कान् । कांस्कान् ।

नॄ पे—पकार आगे परे होने पर नॄ न् शब्द की न् को विकल्प से रूत्व होता है ।

कुप्वोः ≍क≍पौ च—कवर्ग और पवर्ग के आगे परे होने पर विसर्गों की जिह्वामूलीय और उपध्यमानीय आदेश विकल्प से होते हैं तथा चकार ग्रहण से पक्ष में विसर्ग भी होते हैं । जैसे—

नॄः≍पाहि—नॄ न् + पाहि इस स्थिति में नॄ न् शब्द से पाहि की पा आगे परे होने से 'नॄ न् पे' सूत्र से न् को रूत्व हो जाता है । उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से र को विसर्ग हो जाते हैं और फिर 'कुप्वोः ≍क≍पौ च' सूत्र से विसर्ग के स्थान में विकल्प से उपध्मानीय हो जाते हैं तथा 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' सूत्र से विकल्प से अनुनासिक और 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' सूत्र से अनुस्वार हो जाता है । अतः नॄँ≍पाहि, नॄं≍पाहि उपध्मानीय के अभाव में नॄँः पाहि, नॄंः पाहि रूत्व के अभाव पक्ष में 'नॄ न् पाहि' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

तस्यपरमाम्रेडितम्—दो बार कहे हुए शब्द की परमाम्रेडित संज्ञा होती है ।

कानाम्रेडिते—कान् शब्द के नकार को रूत्व हो, आम्रेडित के परे होने पर । जैसे—

कांस्कान्--कान् + कान् इस दशा में 'तस्यपरमाम्रेडितम्' सूत्र से दो बार कहे हुए कान् कान् में पर भाग वाले कान् की आम्रेडित संज्ञा हो जाती है जिससे 'कानाम्रेडिते' सूत्र से कान् शब्द से आम्रेडित कान् शब्द से परे होने से प्रथम कान् के न् को रूत्व हो जाता है । 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०१. छे च ८।३।१२।।

ह्रस्वस्य छे तुक् । शिवच्छाया ।

१०२. पदान्ताद् वा ६।५।५६।।

दीर्घात् पदान्ताच्छे तुग् वा लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया ।

(इति हल् सन्धिः)

सूत्र से विकल्प से अनुनासिक (ँ) हो जाता है । पक्ष में 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' सूत्र से अनुस्वार हो जाता है । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से रुत्व की र् को विसर्ग हो जाते हैं । फिर 'सम्पुकानां सो वक्तव्यः' इस वार्तिक से विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है जिससे काँस्कान् कांस्कान् ये दो रूप निष्पन्न होते हैं ।

छेच—ह्रस्व शब्द से छकार परे होने पर तुक् का आगम होता है । जैसे—

शिवच्छाया—शिव + छाया इस स्थिति में ह्रस्व शिव की वकार से छाया की छ से परे होने से तुक् का आगम होता है । उक् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से तुक् की त् को श्चुत्व च् हो जाता है । जिससे 'शिवच्छाया' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

पदान्ताद् वा—दीर्घान्ता पदान्त शब्दों से छकार के परे होने पर विकल्प से तुक् का आगम होता है । जैसे—

लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मी + छाया इस स्थिति में पदान्त दीर्घान्त लक्ष्मी शब्द से छाया की छ परे होने से पदान्ताद्वा' सूत्र से विकल्प से तुक् का आगम हो जाता है । उक् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । 'त्' को 'स्तोः श्चुना श्चुः" सूत्र से श्चुत्व (च्) हो जाता है जिससे लक्ष्मीच्छाया बनता है । तुक् के आगम के अभाव में 'लक्ष्मीछाया' निष्पन्न होता है ।

(इति हल् सन्धि प्रकरणम्)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसर्ग सन्धिः

(सत्वविधायकसूत्रम्)

१०३. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४॥

खरि । विष्णुस्त्राता ।

१०४. वा शरि ८।३।३६॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा । हरिः शेते, हरिश्शेते ।

(रुत्वविधायक सूत्रम्)

१०५. ससजुषो रुः ८।२।६६॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ।

विसर्जनीयस्य सः—खर् प्रत्याहार के वर्ण आगे परे होने पर अर्थात् ख फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स इन वर्णों में से किसी एक वर्ण के भी आगे पर विसर्ग के स्थान में स् होता है । जैसे—

विष्णुस्त्राता—विष्णुः + त्राता इस दशा में विसर्ग से खर् प्रत्याहार का परे होने से 'ससजुषो रुः' सूत्र से विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है जिस 'विष्णुस्त्राता' शब्द बनता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में विसर्ग को स् होता है । जैसे कि कु उदाहरणों में निम्न प्रकार देखिये—

नमः + त = नमस्ते, ततः + त्वाम् = ततस्त्वाम्, कः + ते = कस्ते, यतः + = यतस्ते, यतः + त्वाम् = यतस्त्वाम्, बालकः + तिष्ठति = बालकस्तिष्ठ इत्यादि ।

वा शरि—शर् प्रत्याहार के वर्ण अर्थात् श, ष, स के आगे होने पर वि के स्थान में विकल्प से विसर्ग ही होता है । जैसे—

हरिः शेते—हरिः + शेते इस स्थिति में विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से वि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत्वविधायक सूत्रम्)

१०६. अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।११३।।

अप्लुतादप्लुतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्च्यः ।

१०७. हशि च ६।१।११४।।

तथा । शिवो वन्द्यः ।

के स्थान में स् प्राप्त होता है परन्तु 'वा शरि' इस सूत्र से विसर्ग से शर् प्रत्याहार के होने पर विकल्प से विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होता है। अतः सत्व का बाध हो जाता है और विसर्ग को विसर्ग ही रहता है जिससे 'हरिः शेते' प्रयोग बनता है। पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से स् हो जाता है और 'स्तोः श्चुनाः' सूत्र से स् का शकार से योग होने से स् को श् हो जाता है जिससे 'हरिश्शेते' शब्द भी बनता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

बालाः + सन्ति, = बालाः सन्ति, बालास्सन्ति, गुणाः + सप्त = गुणाः सप्त, गुणास्सप्त, रामः + शेते = रामः शेते, रामश्शेते, कः + शेते = कः शेते कश्शेते इत्यादि।

ससजुषो रुः—पदान्त शब्द के सकार और सुजुष् शब्द के षकार को रुत्व होता है अर्थात् स् के स्थान में रु होता है।

अतोरोरप्लुता०—अप्लुत अकार से परे अर्थात् प्लुत भिन्न 'अ' परे रु को 'उ' होता है, आगे 'अ' परे होने पर। जैसे—

शिवोऽर्च्यः—शिवस् + अर्च्यः इस दशा में 'ससजुषो रुः' सूत्र से शिवस् के स् को रुत्व 'रु' हो जाता है। 'अतोरोप्लुतादप्लुते' सूत्र से अप्लुत अकार से अर्थात् व की अप्लुत 'अ' से स् की रु को 'उ' होता है क्योंकि अर्च्यः की 'अ' आगे परे है। शिव उ + अर्च्यः इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से वकारोत्तरवर्ती 'अ' और उ के स्थान में 'ओ' गुण एकादेश होता है। शिवो + अर्च्यः इस स्थिति में 'एङः पदान्तादति' सूत्र से अर्च्यः के 'अ' को पूर्वरूप (ऽ) हो जाता है जिससे 'शिवोऽर्च्यः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्वविधायक सूत्रम्)

१०८. भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ताः निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ।

१०९. हलि सर्वेषाम् ८।३।२२॥

भो भगो अघो अपूर्वस्यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये । जैसे कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

सस् + अपि = सोऽपि: रामस् + अत्र = रामोऽत्र, देवस् + असौ = देवोऽसौ, रामस् + अवदत् = रामोऽवदत्, कस् + अपि = कोऽपि, सस् + अब्रतीत् + सोऽब्रवीत्, पुरुषस् + अस्ति = पुरुषोऽस्ति इत्यादि ।

हशि च—हश् प्रत्याहार के वर्ण आगे परे होने पर अर्थात् ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द के आगे परे होने पर रू को 'उ' होता है, अप्लुत अकार के परे होने पर । जैसे—

शिवो वन्द्यः—शिवस् + वन्द्य इस स्थिति में 'ससजुषो रुः' सूत्र से स् को रूत्व होता है । हश् प्रत्याहार का व आगे परे होने अ 'हशि च' से रू को उ होता है और उ को 'आद्गुणः' सूत्र से ओ गुण एकादेश हो जाता है जिससे 'शिवो वन्द्यः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये । उदाहरण के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

रामस् + गतः = रामोगतः, रामस् + हसति = रामोहसति, रामस् + गच्छति = रामो गच्छति, बालकस् + याति = बालको याति, रामस् + नेता = रामोनेता, रामस् + जयते = रामोजयते इत्यादि ।

भो भगो अघो अपूर्व—भोस्, भगोस्, अघोस् और अवर्ण पूर्व रू के स्थान में अश् प्रत्याहार से वर्ण परे होने पर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औ, ह य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द के परे होने पर य आदेश होता है। जैसे—

देवाइह—देवास् + इह इस दशा में 'ससजुषो रुः' सूत्र से स् को रूत्व हो जाता है। स् के रूत्व को 'भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से य आदेश होता है क्योंकि आगे अश् प्रत्याहार का वर्ण 'इ' परे है।

देवा य् + इह इस स्थिति में 'लोपः शाकल्यस्य' इस सूत्र से विकल्प से य् का लोप हो जाता है। देवा + इह इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से गुण प्राप्त होता है परन्तु 'पूर्वत्रासिद्धम्' इस से य् का लोप असिद्ध हो जाता है जिससे गुण नहीं होता है। अतः 'देवा इह' यह प्रयोग बनता है। पक्ष में अर्थात् य् लोप के अभाव में 'देवायिह' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिये। उदाहरार्थ कुछ निम्न इस प्रकार हैं—

शवस् + आगन्ता = श्व आगन्ता, बालकास् + आगच्छन्ति = बालका आगच्छन्ति, सस् + आयाति = स आयाति, देवास् + आयान्ति = देवा आयान्ति, रामस् + आश्रृणोति = राम आश्रृणोति इत्यादि।

हलि सर्वेषाम्—भोस्, भगोस्, अघोस् इन सकारान्त निपात शब्दों से सभी आचार्यों के मत में हल् परे होने पर अर्थात् व्यजन परे होने पर भोस्, भगोस्, अघोस् तथा अवर्ण पूर्व की 'य्' का लोप होता है। जैसे—

भो देवाः—भोस् + देवाः इस स्थिति में ,ससजुषो रुः' सूत्र से भोस् की स् को रूत्व होता है। फिर 'भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से रू को य् आदेश हो जाता है। 'हलि सर्वेषाम्' सूत्र से य् का लोप हो जाता है जिससे 'भो देवाः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

भगो नमस्ते—भगोस् + नमस्ते स् को रुत्व होने पर 'भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से रू को यह आदेश होता है। 'हलि सर्वेषाम्' सूत्र से य् का लोप हो जाता है जिससे 'भगो नमस्ते' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

अघो याहि—अघोस् + याहि इस स्थिति में स् को रूत्व होने पर 'भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से रू को य् आदेश हो जाता है। 'हलि सर्वेषाम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रूत्वविधायक सूत्रम्)

११०. रोऽसुपि ८।२।६९।।

अह्नोरेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ।

(र लोपविधायक सूत्रम्)

१११. रोरि ८।३।१४।।

रेफस्यरेफे परे लोपः ।

सूत्र से य् का लोप हो जाता है जिससे 'अघो याहि' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

रोऽसुपि—अहन् शब्द के न् को रूत्व होता है परन्तु अहन् की नकार से सुप् अर्थात् सु, औ, जस् आदि विभक्तियां आगे परे नहीं हों अर्थात् सु औ, जस् आदि इक्कीस विभक्तियों से भिन्न अहन् शब्द की नकार को रूत्व होता होवे यद्यपि रोऽसुपि' इस सूत्र में अहन् शब्द को रूत्व कहा गया है परन्तु यह रूत्व समस्त अहन् के स्थान में न होकर ,अलोऽत्यस्य' की सहायता से अन्त्य वर्ण न् को ही रूत्व होता है। अतः अर्थ में फलितार्थ अहन को न् को रूत्व होवे यह लिख दिया है।

अहरहः—अहन् + अहः इस स्थिति में 'रोऽसुपि' इस सूत्र से (अलोन्त्यस्य की सहायता से) अहन् के न् को रूत्व होता है। उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है जिससे 'अहरहः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

अहर्गणः—अहन् = गणः इस स्थिति में 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र की सहायता से 'रोऽसुपि' सूत्र से अहन् की न को रूत्व 'रू' होता है। उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। र् जल तुम्बिका न्याय से अग्रिम वर्ण गकार के ऊपर लग जाती है। अतः अहर्गणः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

रोरि—रकार से परे रेफ (र) का लोप होता है अर्थात् रकार से रकार के परे होने पर र् का लोप हो जाता है। जैसे—

पुनारमते, हरीरम्यः इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दीर्घ विधायक सूत्रम्)

११२. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११॥

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते । हरी रम्यः शम्भू राजते । अणः किम् ? तृढः वृढः ।

—मनस् रथः इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रो रीति लोपे च प्राप्ते ।

(विप्रतिषेध-सूत्रम्)

११३. विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२॥

8239

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते । पूर्वात्रा—सिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ।

ढ्रलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः—ढ और र लोप निमित्तक ढ तथा र के परे होने पर ढ और रेफ से पूर्व अण् प्रत्याहार के वर्णों को दीर्घ हो जाता है । जैसे—

पुनारमते—पुनर् + रमते इस दशा में र् से र के परे होने से 'रोरि' सूत्र से र् का लोप हो जाता है । फिर 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इस सूत्र से र् लोप से पूर्व न की 'अ' को दीर्घ हो जाता है जिससे 'पुनारमते' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

शम्भूराजते—शम्भुर् + राजते इस दशा में शम्भुर् के रकार से राजते की र के परे होने पर 'रोरि' सूत्र से र् का लोप हो जाता है। शम्भु की उकार अण् को 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' सूत्र से दीर्घ हो जाता है जिससे 'शम्भूराजते' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

हरीरम्यः—हरिर् + रम्यः इस स्थिति में हरिर् की हलन्तर से रम्यः की रकार के परे होने से 'रोरि' सूत्र से र् का लोप हो जाता है। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः सूत्र से हरि की अण् इकार को दीर्घ 'ई' हो जाता है, जिससे 'हरी-रम्य' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणः किम् — ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः 'सूत्र में अण्:' का प्रतिबन्ध क्यों कर दिया गया है कि रकार का तथा ढकार रकार तथा ढकार परे होने पर 'र' का लोप होने पर र् तथा ढ पहले वर्ण के अण् (अ, इ, ड) को दीर्घ होता है। अतः यहां वृढ+ढः 'दो ढे लोपः' सूत्र से ढ का लोप हो जाता है, परन्तु दीर्घ नहीं होता है, यहाँ अण् के वर्ण अ, इ, उ को दीर्घ न होकर ऋकार को दीर्घ प्राप्त होता है। ऋ अण् प्रत्याहार के अन्तर्गत नहीं आता है, अतः 'अण् किम्' के ग्रहण से तृढः वृढः में दीर्घ नहीं होता है। इष्ट सिद्धि हो जाती है अन्यथा अनिष्ट रूपों की सिद्धि हो जाती है जो प्रिय नहीं है। अतः ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः सूत्र से दीर्घ नहीं होता है, जिससे तृढः, वृढः आदि प्रयोगों की सिद्धि होती है।

विप्रतिषेधे परं कार्यम्—तुल्य बल विरोध को विप्रतिषेध कहते हैं। विप्रतिषेध के परे होने पर, कार्य होता है। मनस्+रथ यहाँ रूत्व होने पर 'हशि च' सूत्र से उत्व प्राप्त होता है, और 'रोरि' सूत्र से र् का लोप प्राप्त होता है।

मनोरथः—मनस्+रथ इस स्थिति में स् को रूत्व हो जाता है, उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, मनर् रथः 'इस दशा में हशि च' सूत्र से र को उ प्राप्त होता है, और 'रोरि' सूत्र से र का लोप हो जाता है। परन्तु अब दोनों में कौन कार्य हो, इस शंका के समाधानार्थ 'विप्रतिषेधे पर कार्यम्' इस सूत्र से समान बल वाले शब्दों के योग में समान बल वाले शब्दों का विरोध होने पर भी पर सूत्र का कार्य हो पूर्व सूत्र का नहीं।

यहां 'रोरि' यह सूत्र 'हशि च' की अपेक्षा पर सूत्र है। इसलिये 'रोरि' इस सूत्र से र् का लोप प्राप्त होता है, परन्तु 'पूर्वयासिद्धम्' इस सूत्र के नियमानुसार सवासात अध्याय के अन्तर्गत पठित सूत्र की दृष्टि में ८ वें अध्याय की त्रिपाठी में पठित सूत्र असिद्ध होते हैं। अतः हशि च के समक्ष 'रोरि' असिद्ध हो जाता है जिससे 'हशि च' सूत्र से र् को 'उ' होता है; मम उ+रथः इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से नकारोत्तरवर्ती 'अ' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुलोपविधायक सूत्रम्)

११४. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि ६।१।१३२॥

अककारयोरेतत्तदार्यः सुः तस्य लोपो हलि न तु समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः कम्? एषको रुद्र.।

'उ' को 'ओ' गुण एकादेश होता है। इस प्रकार 'मनोरथ' प्रयोग निष्पन्न होता है।

विप्रतिषेधः—विप्रतिषेधे पर कार्यम्' इस सूत्र का आशय यह है, समान बल वाला विरोध उपस्थित होता है। समान बल वाले विरोध को 'विप्रतिषेध' कहते हैं अर्थात् जब दो सूत्र कई स्थलों में चरित्रार्थ हो चुके होते हैं। फिर किसी एक ही शब्द की सिद्धि में दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं, तो वे दोनों सूत्र समान बल वाले माने जाते हैं और उन दोनों के इस विरोध को 'विप्रतिषेध' कहते हैं। क्योंकि 'हशि च' सूत्र शिवोवन्द्यः में और 'रोरि' सूत्र 'शम्भू राजते' में चरितार्थ हो चुके हैं। उसके पश्चात् दोनों एक साथ मनर् + रथः की स्थिति में प्राप्त होते हैं, इस प्राप्ति को ही तुल्यबल विरोध अथवा विप्रतिषेध कहते हैं।

एतत्तदोरिति०—ककार रहित अर्थात् ककार भिन्न एतत् और तत् शब्द का जो 'सु' प्रत्यय लोप होता है। हल् प्रत्याहार के वर्ण परे होने पर। परन्तु यह 'सु' लोप नञ् समास में नहीं होता है।

एषविष्णुः—एषस् + विष्णुः इस स्थिति में ककार रहित एतत् शब्द से होने वाले सु प्रत्यय (प्रथमा की 'सु' विभक्ति) का हल् प्रत्याहार का वर्ण विष्णुः की व परे होने से 'एतत्तदोः सुलोपोऽकोनञ् समासे हलि' सूत्र से लोप हो जाता हैं, जिससे 'एषविष्णु' प्रयोग बनता है।

सशम्भुः—सस् + शम्भुः इस स्थिति में तत् शब्द से होने वाले 'सु' प्रत्यय का हल् प्रत्याहार का वर्ण शम्भुः का सकार परे होने पर 'एतत्तदोः' सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि' सूत्र से लोप हो जाता है जिससे 'सशम्भुः' निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकोः किम् एषकोरूद्रः—'एतत्तदोः सुलोपोऽकरनञ् समासे हलि' इस सूत्र में ककार रहित एतत् और तत् की सु का लोप होता है। यहां अकोः किम् अर्थात् ककार रहित एतत् और तत् का पाठ क्यों किया है ? इसका समाधान यह है कि यदि ककार सहित एतत् और तत् शब्द के सु के लोप का निषेध न करते तो एषको रूद्रः आदि प्रयोगों में 'अकच्' प्रत्यय की ककार सहित एतत् शब्द के सु का लोप हो जाता है जो इष्ट नहीं है अतः एषकस् + रूद्रः इस स्थिति में 'अकोः' का पाठ न करने में प्रस्तुत सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है और अनिष्ट रूप की सिद्धि हो जाती है, इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही सूत्र में ककार रहित एतत् और तत् शब्द की सु का लोप कहा गया है। जो सर्वथा उचित ही है जिससे एषकम् + रूद्रः इस स्थिति में 'ससजुषो रूः' सूत्र स रूत्व होकर 'हशि च' सूत्र से उत्व हो जाता है। 'एषक उ + रूद्रः' इस दशा में 'आद्गुणः' से ककारोत्तरवर्ती 'अ' और 'उ' को 'ओ' गुण एकादेश हो जाता है जिससे 'एषको रूद्रः' यह प्रयोग बनता है।

अनञ्समाते किम् असः शिवः—'एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि' इस सूत्र में नञ् समास रहित एतत् और तत् शब्द की सु के लोप का विधान किया गया है। अतः 'न सः=असः' इस नञ् समास के होने से यहाँ तत् शब्द से सु का लोप नहीं होता है। यदि 'अनञ् समासे' का ग्रहण न करते तो यहां भी सु का लोप हो जाता है जिससे अनिष्ट रूप की सिद्धि होती। अतः अनिष्ट रूप की आपत्ति दूर करने के लिये ही प्रस्तुत सूत्र में नञ् समास के प्रसंग में सु के लोप का प्रतिषेध किया गया है जिससे इष्ट रूप की सिद्धि होती है। अत सूत्र में अनञ् समासे का ग्रहण करना उचित ही है जिससे असः शिवः की इष्ट सिद्धि होती है।

असः शिवः—असस् + शिवः इस दशा में न सः 'असः' इस नञ् समास के प्रसंग में 'ससजुषो रुः' सूत्र से 'स' को रूत्व होता है और फिर 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से र् को विसर्ग हो जाते हैं जिससे 'असः शिवः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११५. सोऽचि लोपे चेत पादपूरणम् ६।१।१३४॥

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्य्येत। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

(इति विसर्ग सन्धिः)

हल किम् एषोऽत्र—'एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि' इस सूत्र में 'हलि' शब्द का पाठ क्यों किया गया है ? इसका उत्तर यह है कि यदि हलि किम् ऐसा पाठ न करते तो 'एषोऽत्र' इत्यादि स्थलों में एषस्+अत्र इस स्थिति में भी एतत् शब्द की सु की स् का लोप हो जाता परन्तु 'हलि किम्' अर्थात् हल् प्रत्याहार के वर्ण आगे परे होने पर ही सु का लोप होता है। यहां हल् (व्यंजन) वर्ण न होने से 'सु' का लोप नहीं होता है। इसीलिये 'हलि' अर्थात् हल् परे होने पर ही सु का लोप हो गया है, यदि 'हलि' इस शब्द का सूत्र में पाठ न करते तो अनिष्ठ रूपों की सिद्धि होने लगती। उसके निवारणार्थ ही 'हलि' शब्द का सूत्र में पाठ किया गया है जिससे इष्ट सिद्धि में कोई बाधा नहीं होती है। अतः—

एषस्+अत्र इस स्थिति में :ससजुषो रुः' सूत्र से स् को रूत्व होकर 'अतोतोरप्लुतादप्लुते' सूत्र से 'र्' को 'उ' हो जाता है और षकारोत्तरवर्ती 'अ' और 'उ' को 'आद्गुण' सूत्र से 'ओ' गुण हो जाता है।

एषो+अत्र इस दशा में 'एङः पदान्तादति' सूत्र से 'अ' को पूर्वरूप (ऽ) हो जाता है जिससे 'एषोऽत्र' प्रयोग की सिद्धि होती है। यहां हल् अर्थात् व्यंजन परे होने के कारण अर्थात् हल् भिन्न रक्षर 'अ' परे होने के कारण सु का लोप नहीं होता है।

सोऽचिलोपे०—यदि आगे अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ परे हों तो तत् शब्द की सु का लोप होवे, यदि सु से लोप होने से पादपूर्ति ही रही हो।

अर्थात् यदि श्लोक रचना में तत् शब्द की सकार के कारण वाधा उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित हो रही है अर्थात् पादपूर्ति नहीं हो रही है और स् के लोप हो जाने से पादपूर्ति हो रही है तो अच् प्रत्याहार के वर्ण आगे होने पर तत् शब्द की स् का लोप होता है। जैसे—

सेमामविड्ढि प्रभृतिम्--सस् + इमामविड्ढिप्रभृतिम् इस दशा में यदि तत् शब्द की सु विभक्ति की स का लोप कर दिया जाय और फिर आद्गुण से गुण हो जाये तो यह श्लोक का एक पाद (चरण) पूरा बन जायेगा। अतः सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्' सूत्र से सस् की स् का लोप हो जाता है फिर सकारोत्तर-वर्ती 'अ' और इमाम् की 'इ' को आद्गुण' सूत्र से 'ए' गुण एकादेश हो जाता है जिससे 'सेमामविड्ढिप्रभृतिम्' यह श्लोक का एक चरण निष्पन्न होता है।

सैषदाशरथी रामः—सस् + सष दाशरथी रामः इस दशा में यदि सस् की स का लोप हो जाये और वृद्धि हो जाय तो यह अनुष्टुप छन्द का चरण बन जायेगा। इसलिये 'सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्' इस सूत्र से सस् की स् का लोप हो जाता है। फिर वृद्धि होकर 'सैष दाशरथी रामः' निष्पन्न होता है। अतः यहां पादपूर्ति के लिये तत् की स् का लोप विधान किया गया है।

(इति विसर्ग प्रकरणम्)

(इति पञ्च सन्धि प्रकरणम्)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ अजन्त पुंल्लिग प्रकरणम्

(प्रातिपदिक-संज्ञा-सूत्रम्)

११६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकं स्यात्।

११७. कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः।

अर्थवदधातुर०—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त शब्दों को छोड़कर अर्थवान् जो शब्द स्वरूप उनकी प्रातिपदिक संज्ञा होवे अर्थात् धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त भिन्न सार्थक शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

इसका आशय यह है कि उस सार्थक शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है जो न धातु हो और न प्रत्यय तथा न ही प्रत्ययान्त शब्द हो। यदि धातु भिन्न सार्थक शब्दों की प्रातिपादिक संज्ञा का विधान न किया गया होता तो 'अहन्' इस हन् धातु के लङ् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन की भी प्रातिपदिक संज्ञा होने लगती जिससे 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से 'अहन्' के न् का लोप हो जाता और अनिष्ट रूप की सिद्धि होने लगती। अतः इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही धातु भिन्न शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान किया है जो उचित ही है।

इसी प्रकार यदि प्रत्यय की प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध न करते तो रामेषु, करोषि आदि शब्दों के षु, षि की भी प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती और 'सात्पदाद्योः' सूत्र से षत्व का निषेध हो जाता जिससे अनिष्टापत्ति हो जाती। अतः इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही प्रत्यय भिन्न शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान किया गया है।

इसी प्रकार यदि प्रत्ययान्त की प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध न करते तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामेषु इत्यादि की प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'सुपोधातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से रामेषु की सु का लोप हो जाता जिससे अनिष्ट रूपों की सिद्धि होने लगती। अतः इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये प्रस्तुत सूत्र में प्रत्ययान्त भिन्न शब्दों की ही प्रातिपदिक संज्ञा का विधान किया गया है।

यदि अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान न करते तो केवल शब्दों की ही प्रातिपदिक संज्ञा का विधान करते तो अनर्थक वर्ण समुदाय की भी प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती। अतः सार्थक शब्दों की ही प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

कृत्तद्धितसमासाश्च--कृदन्त और तद्धितान्त तथा समासयुक्त शब्दों की भी प्रातिपदिक संज्ञा होवे।

कृदन्त--से तात्पर्य उन शब्दों से है जो शब्द कृदन्तीय प्रत्यय के योग से बनते हैं अर्थात क्त, क्तवतु, तृच्, ल्युट्, यत् ण्यत् तव्यत्, अनीयर, केलिमर् ण्वुल्, क्त्वा, ल्यप् तुमुन्, शतृ, शानच्, कानच् आदि प्रत्ययों के योग से निष्पन्न शब्दों को कृतः, कृता, कृतम्, कृतवान्, कृतवती, कृतवत्, कर्ता, कर्त्री, कर्तृ, करणम्, पेयम्, देयम्, नेयम्, कार्यम्, हार्यम्, कर्तव्यम्, करणीयः, पचेलिमाः, श्रावम्, कृत्वा, विलोक्य, कर्तुम्, कुर्वन्, सेवमान, चक्राणः इत्यादि को कृदन्त कहते हैं।

जिन शब्दों से तद्धितीय प्रत्यय होते हैं उनको तद्धितान्त शब्द कहते हैं जैसे—आदित्यम्, वैनतेय, औपगवः, सैकतमू, गोत्वम्, आश्वपतम्, दाशरथि वासुदेवः इत्यादि में तद्धितीय ण्य, ढक् अण, अण्, त्व, अण्, इञ्, अण् इत्यादि प्रत्ययों से युक्त शब्दों को तद्धितान्त कहते हैं।

जिन शब्दों का समास होने पर संक्षिप्त रूप बन जाता है अर्थात् शब्दों के मध्य की विभक्तियां निकल जाती हैं और शब्द मिलकर संक्षिप्त रूप धारण करते हैं जैसे—

राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः, दश आननानि यस्य सः=दशाननः, राज्ञः समीपम् = उपराजम्, माता च पिता च=पितरौ, मातापितरौ, नीलोत्पलम् पाणिपादम्, षाण्मातुरः इत्यादि शब्दों को समस्त शब्द कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११८ स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यां भ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसो-साम्ङ्योस्सुप् ४।१।२॥

सु, औ जस् इति प्रथमा। अम्, औट्, शस् इति द्वितीया। टा, भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे, भ्याम्, भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि, भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस्, आम् इति षष्ठी। ङि, ओस्, सुप् इति सप्तमी।

इस प्रकार कृदन्त, तद्धितान्त और समासयुक्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से किया गया है।

स्वौजस०—सु, औ, जस्, से लेकर ङि, ओस्, सुप् तक इन २१ विभक्तियों को सुप् कहते हैं अर्थात् सु से लेकर प् तक सुप् प्रत्याहार बनता है। ये २१ विभक्तियां जिसके अन्त में हों उसे (सुप्+अन्त) सुबन्त कहते हैं।

प्रथमा से लेकर सप्तमी तक की विभक्तियों का बोधक चक्र

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु→ स्→ र्→ :	औ	जस्→ अस्
द्वितीया	अम्	औट्→ औ	शस्→ अस्
तृतीया	टा→ आ	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे → ए	,,	भ्यस्
पंचमी	ङसि→ अस्	भ्याम्	,,
षष्ठी	ङस्→ अस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि→ इ	,,	सुप्→ सु
सम्बोधन (प्रथमा)	सु→ स्	औ	जस्→ अस्

इन २१ विभक्तियों की अनुबन्ध, इत्संज्ञा आदि विशेष नियमों के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११९. ङ्याप् प्रातिपदिकात् ४।१।१॥

१२०. प्रत्ययः ३।२।१॥

१२१. परश्च ३।१।२॥

इत्यधिकृत्य। ङ्यन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

१२२. सुपः १।४।१३०॥

सुप स्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञानि स्युः।

१२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैक बचने १।४।२।२॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः।

कुछ अंश ही शब्दों के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे रामः में सु का विसर्ग ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

ङ्याप्प्रातिप०—ङीप् ङीन तथा ङीष् प्रत्यय जिनसे हुआ हो उन ङ्यन्त तथा टाप्→आप् प्रत्ययान्त शब्दों में से तथा प्रातिपदिक संज्ञक शब्दों से (सु, औ, जस्) आदि विभक्तियां होती हैं।

प्रत्ययः—सु, औ, जस्, अम् और शस् आदि २१ विभक्तियों की प्रत्यय संज्ञा होती है।

परश्च—प्रत्यय, प्रकृति अर्थात् धातुओं से तथा शब्दों से परे (आगे) होते हैं।

इत्यधिकृत्य—ङ्याप् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, और पारश्च, ये तीनों ही सूत्र अधिकार सूत्र हैं। ङीप् ङीष् ङीन् प्रत्ययान्त और आप् अर्थात् टाप् प्रत्ययान्त और प्रातिपदिक शब्दों से सु, औ, जस् आदि प्रत्यय होवे।

सुपः—सु से लेकर सुप् की प् तक सुप् प्रत्याहार होता है, उस सुप् को क्रम से तीन तीन की एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होवे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अवसान-संज्ञा-विधायक-सूत्रम्)

१२५. विरामोऽवसानम् १।४।११०॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् । रुत्व विसर्गौ—रामः ।

द्व्येकयोर्द्वि०—द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और कत्व की विवक्षा में एकवचन विभक्ति होती हैं ।

विरामोऽवसानम्—वर्णों के अभाव की अवसान संज्ञा होती है । जैसे रामः में रामर् के र् को अवसान संज्ञा होने से विसर्ग होती है, जिससे रामः बनता है ।

रामः—रमन्ते योगिनः अस्मिन्निति रामः इस व्युत्पत्ति के अनुसार रम्+घञ् → अ (आदि वृद्धि) = राम शब्द की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होती है, और जब राम को रूढि मानकर केवल दशरथ सूत्र का ही अर्थ ग्रहण होता है तो 'अर्थ वदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होती है, फिर 'ङ्याप् प्रातिपदिकात्' 'प्रत्ययः' और 'परश्च' इन तीनों अधिकार सूत्रों की सहायता से 'स्वौजसमौट्' इत्यादि सूत्र से सभी सातों विभक्तियों के प्रत्यय राम शब्द से उपस्थित होते हैं, परन्तु 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकत्व की विवक्षा में प्रथमा एकवचन की सु विभक्ति आती है, राम + सु 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र से सु के उकार की इत्संज्ञा हो जाती है, 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक उकार का लोप हो जाता है।' 'ससजुषोरुः' सूत्र से स् को रुत्व हो जाता है । रु के उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, विरामोऽवसानम्' सूत्र से म् की अवसान सज्ञा होने पर 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इस सूत्र से र् को विसर्ग हो जाते हैं जिससे प्रथमा एकवचन में 'रामः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२५. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

१२६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते—

१२७. नादिचि ६।१।१०४॥

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि रामौ।

सरूपाणामेकशेषविभक्तौ - एक विभक्ति अर्थात् समस्त विभक्तियों में एक समान रूप वाले जो शब्द देखे जायें उनमें केवल एक रूप ही शेष रहता है। अन्य का लोप हो जाता है। जैसे—राम राम+औ इस दशा मे समान रूप वाले राम राम शब्दों में केवल एक ही शेष रहेगा, अन्य का लोप हो जायेगा। इस प्रकार बहुत्व की विवक्षा में राम, राम, राम का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु समान रूप वाले तीन रामों में केवल एक ही शेष रहता है, अन्य लुप्त हो जाते हैं। यही इस सूत्र का आशय है। ऐसा सभी विभक्तियों के विषय में समझना चाहिये।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः—अक् प्रत्याहार अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ऌ वर्णों से आगे प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति का अच् (अ, इ, उ ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) के परे होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है।

नादिचि—अवर्ण से इच् प्रत्यहार के वर्ण आगे आने पर अर्थात् इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ के परे होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होता है। जैसे रामौ में दीर्घ नहीं होता है, वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होती है।

✓ **रामौ**—प्रातिपदिक संज्ञा राम राम शब्द से 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्वित्व की विवक्षा मे द्विवचन संज्ञक 'औ' विभक्ति होती है, 'सरूपाणामेकशेष विभक्तौ' सूत्र से समान स्वरूप वाले राम राम में एक शब्द शेष रहता है, अन्य का लोप हो जाता है। राम+औ इस स्थिति

आदिच् अच से परे इच् हो तो एकादेश नहीं
६।१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२८. बहुषु बहुवचनम् १।१।२१॥

बहुत्व विवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

१२६. चुटू १।३।७॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः

१३०. विभक्तिश्च १।४।१०४।

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः

१३१. न विभक्तौ तुस्माः १।३।४।

विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेताः। इति सस्य नेत्त्वम्। रामाः।

में "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" सूत्र से पूर्व सवर्ण एकादेश प्राप्त होता है, परन्तु "नादिचि" सूत्र से दीर्घ का निषेध हो जाता है, जिससे दीर्घ नहीं होता है, और "वृद्धिरेचि" सूत्र से राम के मकारोत्तरवर्ती "अ" और 'औ" को "औ' वृद्धि एकादेश हो जाता है, जिससे "रामौ" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

बहुषुबहुवचनम्—बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन विभक्ति होती है।

चुटू—चवर्ग और टवर्ग के वर्ण यदि प्रत्यय (सु, औ जस्) के आदि में हों तो उनकी इत्सञ्ज्ञा होती है, अर्थात् इत्सञ्ज्ञा होने से लुप्त हो जाते हैं।

विभक्तिश्च—सुत् सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस् इत्यादि की तिप, तस्, झि, तथा त आताम्, झ आदि की विभक्ति संज्ञा होती है अर्थात् सुप् और तिङ् को सु से लेकर सुप् तक २१ प्रत्ययों को सुप्, और तिप् से लेकर महिङ् तथा १८ प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं, और इनकी विभक्ति सञ्ज्ञा होती है।

न विभक्तौ तुस्माः—विभक्ति के अन्तर्गत स्थित तवर्ग (त, थ, द, ध, न) स, और म की इत्संज्ञा नहीं होती है अर्थात् विभक्तियों में रहने वाले तवर्ग के वर्ण स और म इत्संज्ञक नहीं होते हैं। इसलिये जस् की स् की इत्संज्ञा नहीं होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३२. एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

१३३. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते, तदादि शब्द स्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात्।

१३४. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६९॥

एङन्तात् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद् हल् लुप्यते, सम्बुद्धेश्चेत्। राम, हे रामौ, हे रामाः।

रामाः—राम, राम, राम इस राम की प्रातिपदिक संज्ञा होने के बाद बहुत्व की विवक्षा में 'बहुषु बहुवचन' इस सूत्र से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आती है। 'चुटू' सूत्र से चवर्ग की ज् की इत्संज्ञा हो जाती है, जिससे 'तस्य लोपः' सूत्र से ज् का लोप हो जाता है। 'विभक्तिश्च' सूत्र से सु, औ, जस् आदि प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा हो जाती है। 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से जस् की स् की इत्संज्ञा प्राप्त होती है परन्तु 'न विभक्तौ तुस्माः' सूत्र से विभक्तिस्थ तवर्ग, स और म की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः जस् की स् की इत्संज्ञा नहीं होती है, 'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः' सूत्र से राम के मकारोत्तरवर्ती 'अ' और ज् के 'अ' को पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश हो जाता है, 'रामास्' इस स्थिति 'ससजुषो रुः' सूत्र से स् को रुत्व और 'खर वसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से र् को विसर्ग होती है, जिससे 'रामाः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

एकवचनमिति—सम्बोधन अर्थ में प्रथमा के एकवचन न, सु की सम्बुद्धि संज्ञा होती है।

यस्मात्प्रत्ययविधिस्त०—जो प्रत्यय जिससे किया जाता है, वह आदि में है, जिसके उस शब्द स्वरूप की उस प्रत्यय के आगे परे होने पर अङ्ग संज्ञा होती है।

एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः—यदि प्रथमा सम्बोधन की विभक्ति की सम्बुद्धि संज्ञा हो चुकी है, तो एङन्त (एकारान्त, ओकारान्त) और ह्रस्वान्त, अङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३५. अमि पूर्वः ६।१।१०७॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ॥

१३६. लशक्वतद्धिते १।३।८।

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ।

१३७. तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३॥

पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसस्तस्य नः स्वात् पुंसि ।

(णत्व-विधायक-सूत्रम्)

१३८. अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि ८।४।१।

अट्, कवर्ग, पवर्ग आङ्, नुम् एतैः समस्तैर्यथा सम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे ।

इति प्राप्ते—

१३९. नपदान्तस्य ८।४।३७॥

नस्य णो न । रामान् ।

अमिपूर्वः—अक् प्रत्याहार के वर्णों से अर्थात् अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त लृकारान्त शब्दों से अम् विभक्ति के अच् (स्वर) परे रहते पूर्वरूप एकादेश होता है । जैसे—

रामम्—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक राम शब्द से द्वितीया एकवचन में 'अम्' विभक्ति आती है, राम+अम् इस स्थिति में अकारान्त राम शब्द से अम् विभक्ति का अच् 'अ' परे होने के कारण 'अमिपूर्वः सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होता है, जिससे 'रामम्' यह प्रयोग निष्पन्न होता है ।

रामौ—प्रातिपदिक संज्ञक राम से द्वितीया एकवचन में 'औट्' विभक्ति आती है, ट् की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है, शेष प्रथमा द्विवचन 'रामौ' के समान समझना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लशक्वतद्धिते—तद्धितीय प्रत्ययों को छोड़कर प्रत्ययों के आदि में आने वाले ल, श, कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) की इत्संज्ञा होती है।

तस्माच्छसो नः पुंसि—पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे जो शस् विभक्ति की स् उसके स्थान में न् आदेश हो, पुल्लिग (शब्द) में, अन्यत्र नहीं। एङ् ह्रस्वात्संबुद्धे सूत्र से→ सम्बुद्धि संज्ञक शब्द से हल् वर्ण का लोप हो अर्थात् सम्बुद्धि संज्ञक प्रथमा एकवचन की विभक्ति सु की हल् सकार का लोप हो यदि, ह्रस्वान्त, एङन्त, तथा अङ्ग संज्ञक शब्द से परे हो तो। जैसे हे राम ?

हे राम—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, 'एकवचन सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बोधन में 'सु' की सम्बुद्धि संज्ञा होती है, और 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्' सूत्र से राम शब्द की अङ्ग संज्ञा होती है। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञक सु की स् का लोप हो जाता है, जिससे प्रथमा एकवचन में (हे) राम? निष्पन्न होता है।

हे रामौ, हे रामाः ये दोनों प्रयोग पूर्ववत् ही निष्पन्न होते हैं।

अट्कुप्वाङ् नुम्०—अट प्रत्याहार अर्थात् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, औ, ह, य, व, र) कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) आङ् उपसर्ग का 'आ' नुम् (नुम्) न् अथवा अनुस्वार इन सब का एक स्थान पृथक् पृथक् यथासम्भव एक या दो तीन के साथ मिले हुये का व्यवधान होने पर भी र् और ष् से परे न को ण् होता है। समानपदे अर्थात् पूर्ण पद में अथवा अखण्ड पद में।

इति प्राप्ते—इससे णत्व प्राप्त होने पर—

न पदान्तस्य—पदान्त अर्थात् पद के अन्त के न को णत्व नहीं होता है। अतः रामान् में णत्व का निषेध हो गया है।

रामान्—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से द्वितीया में शस् विभक्ति आती है, 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शस्' के शकार की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है, राम + अस् 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती 'अ' और अस्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४०. टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२॥

अदन्तात् टादीनामिनादयः स्युः। णत्वम्। रामेण।

१४१. सुपि च ७।३।१०२॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः। रामाभ्याम्।

१४२. अतो भिस् ऐस् ७।१।१३॥

अदन्तादङ्गात् परस्य भिस् ऐस् स्यात्।

अनेकाल् शित्सर्वस्य। रामैः।

की 'अ' को पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है, जिससे 'रामास' इस स्थिति में 'तस्माच्छसो नः पुंसि' सूत्र से शस् की स् को न् हो जाता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से रामान् इस पद के अन्त की न् को णत्व प्राप्त होने पर 'न पदान्तस्य' सूत्र से पदान्त न् के णत्व का निषेध हो जाता है, जिससे रामान् यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

टाङसिङसामिनात्स्याः—अकारान्त शब्द से टा परे होने पर टा को इन, ङसि को आत्, ङस् को स्य आदेश होता है।

रामेण—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है, टाङसिङसामिनात्स्याः इस सूत्र से टा को इन आदेश होता है। राम+इन इस स्थिति में 'आद् गुणः' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती 'अ' और इनकी इकार को 'ए' गुण होता है, रामेन इस दशा में 'अट् कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि' सूत्र से 'न' को ण हो जाता है, इस प्रकार 'रामेण' शब्द की सिद्धि होती है।

सुपि च—यञादि सुप् परे रहते अर्थात् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ इन वर्णों वाली विभक्ति परे होने पर अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है। जैसे—

रामाभ्याम्—राम शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर तृतीया द्विवचन में भ्याम् विभक्ति आती है, राम+भ्याम् इस स्थिति में सुपि च' सूत्र से यञ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४३. ङेर्यः ७।१।१३॥

अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः ।

१४४. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५६॥

आदेशः स्थानिवत्स्यात्, न तु स्थान्यलाश्रयविधौ। इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः रामाय। रामाभ्याम्।

१४५. बहुवचने झल्येत् ७।१।१०३॥

झलादौ बहुवचने सुपि अतोऽङ्गस्यैकारः। रामेभ्यः। सुपि किम्-पंचध्वम्।

प्रत्याहार का भ् वर्ण आगे परे होने पर अदन्त राम शब्द की म को दीर्घ हो जाता है, जिससे 'रामाभ्याम्' निष्पन्न होता है।

अतोभिस् ऐस्—अदन्त अङ्ग से अर्थात् अकारान्त शब्द से परे भिस् को ऐस् आदेश होता है।

अनेकाल् शित् सर्वस्य—के नियम से अनेक अल् (वर्ण) वाला शित् आदेश सब के स्थान में होता है, अतः समस्त भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है।

रामैः—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से तृतीया बहुवचन में भिस् विभक्ति आती है, राम+भिस् इस स्थिति में 'अतो भिस् ऐस्' इस सूत्र से अदन्त राम शब्द से 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' के नियम से समस्त भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है, स को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'रामैः' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

ङेर्यः—अदन्त अङ्ग से परे ङे के स्थान में यादेश होता है, अर्थात् अकारान्त शब्दों से परे ङे विभक्ति को य आदेश होता है।

स्थानिवदादेशो०—आदेश स्थानी के होते हैं, वे ही धर्म व गुण आदेश में भी माने जायें, परन्तु यदि स्थानी अल् हो तो उस एक वर्ण के आश्रय से स्थानिवद् भाव न हो। जैसे—रामाय में यादेश में ङे विभक्ति का धर्म स्वीकार करके 'सुपि च' से दीर्घ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामाय—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति …ती है। 'ङेर्यः' सूत्र से ङे के स्थान में 'य' आदेश हो जाता है। 'स्थानिवदा-देशोऽनल्विधौ' सूत्र से ङे के स्थान में यादेश में भी स्थानिवद्भाव होने से …धर्म मान लिया जाता है, अतः 'सुपि च' इस सूत्र से (ङे के स्थान में यादेश में सुप्त्व धर्म स्वीकार कर लेने से) अदन्त राम शब्द को दीर्घ हो …ता है, जिससे 'रामाय' यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

रामाभ्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से चतुर्थी द्विवचन में भी …या द्विवचन के समान 'सुपि च' सूत्र से दीर्घ होने पर 'रामाभ्याम्' बनता …

बहुवचने झल्येत्—झल् प्रत्याहार के वर्ण आदि में है, जिसके ऐसे बहुवचन सुप् परे रहते हैं, अदन्त अङ्ग को 'ए' आदेश होता है।

रामेभ्यः—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से चतुर्थी बहुवचन में 'भ्यस्' …क्ति आती है। 'बहुवचने झल्येत्' सूत्र से बहुबचन झलादि भ्यस् विभक्ति होने से अदन्त राम शब्द के मकार की अकार को एकार आदेश हो जाता और भ्यस् की स् को रुत्व विसर्ग होकर 'रामेभ्यः' बनता है।

सुपिकिम् पंचध्वम्—'बहुवचने झल्येत्' इस सूत्र में झल प्रत्याहार के वर्ण …दि में हों, ऐसे बहुवचन सुप् परे रहते हैं, अदन्त शब्द को 'एकार' आदेश …ता है। यहां सुप् का प्रतिबन्ध क्यों लगाया गया है ? अर्थात् 'सुपि' यह …षण बहुवचन का क्यों कहा है ? इसके उत्तर में कहा है कि यदि सुप् का …बन्ध न लगाते तो सुप् भिन्न झलादि वर्णयुक्त बहुवचन तिङन्त आदि में …अदन्त अङ्ग को एकार हो जाता है जो इष्ट नहीं है। उदाहरणार्थ 'पंचध्वम्' …झलादि बहुवचन विभक्ति परे होने पर भी सुप्त्व के अभाव में एकार नहीं …ता है अन्यथा यदि सुप् न पढ़ते तो पंचध्वम् में भी एकार हो जाता। इस …निष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही सुप् शब्द का पाठ किया गया है अर्थात् …वचन का विशेषण सुप् माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४६. वावसाने ८।४।५६॥

अवसाने झलां चरो वा स्युः । रामात्, रामाद् । रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ।

४७. ओसि च ७।३।१०४॥

अतोऽङ्गस्यैकारः रामयोः ।

वावसाने—अवसान में (शब्द के अन्त में अन्तिम) झल् प्रत्याहार के वर्णों को (अर्थात् झ, भ, ध, ढ, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह को) चर्त्व अर्थात् चर् प्रत्याहार के वर्ण च, ट, त, क, प, श, ष, स विकल्प से होवें । जैसे—

रामाद्—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से पञ्चमी एकवचन में 'ङसि' विभक्ति आती है । 'टाङसिङसामिनात्स्याः' सूत्र से 'ङसि' को आत् हो जाता है । फिर 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से सवर्ण दीर्घ हो जाता है ।

रामात् इस स्थिति में 'झलां जशोऽन्ते' से त् को द् होता है । 'वावसाने' सूत्र से विकल्प से झल् प्रत्याहार के वर्ण त् द् को चर्त्व अर्थात् चर् प्रत्याहार का त् वर्ण हो जाता है जिससे चर्त्व पक्ष में 'रामात्' और चर्त्व के अभाव पक्ष में 'रामाद्' ये दो रूप निष्पन्न होते हैं ।

रामाभ्याम्—पञ्चमी द्विवचन में भ्याम् विभक्ति आने पर पूर्ववत् 'रामाभ्याम्' बन जाता है ।

रामेभ्यः—पञ्चमी बहुवचन में भी रामेभ्यः चतुर्थी बहुवचन के समान निष्पन्न होता है ।

रामस्य—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से षष्ठी एकवचन में ङस् विभक्ति आती है । 'टाङसिङसामिनात्स्याः' सूत्र से ङस् को 'स्य' आदेश हो जाता है जिससे 'रामस्य' यह रूप निष्पन्न होता है ।

ओसि च—अदन्त अङ्ग के स्थान में ओस् विभक्ति परे होने पर एकार आदेश होता है । जैसे—

रामयोः—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से षष्ठी द्विवचन में ओस् विभक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४।।

ह्रस्वान्ताद् नद्यन्ताद् आवन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः।

९. नामि ६।४।३।।

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः। रामाणाम्। रामे। रामयोः। एत्वे कृते—

है। "ओसि च" सूत्र से अदन्त राम् शब्द के अ को एकार आदेश हो है और "एचोऽयवायावः" सूत्र से ए को अय् आदेश हो जाता है जिससे य्+ओस् इस स्थिति में स् को रूत्व विसर्ग होकर "रामयोः" यह रूप न होता है।

ह्रस्वनद्यापो नुट्—ह्रस्वान्त शब्दों के (राम, हरि, गुरु आदि के) नद्यन्त के अर्थात् नदी संज्ञक शब्दों के (नदी, स्त्री, श्री, गौरी, वधू आदि के) अर्थात् रमा, बाला, वत्सा, कमला, इन्दिरा आदि शब्दों के अंग के परे " विभक्ति के होने पर नुट का आगम होता है। जैसे—

रामाणाम्, हरीणाम्, नदीनाम्, रमाणाम् इत्यादि।

नामि—अजन्त अङ्ग को दीर्घ होवे। जैसे—

रामाणाम्, गुरूणाम् मुनीनाम् इत्यादि।

रामाणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से षष्ठी बहुवचन में "आम्" आती है। ह्रस्वान्त राम शब्द से "ह्रस्वनद्यापो नुट्" सूत्र से नुट् का होता है। उट् की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। "राम नाम्" इस में "नामि" इस सूत्र से अजन्त राम शब्द को दीर्घ हो जाता है और कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि" सूत्र से न को णत्व (ण) हो जाता है जिससे णाम्" यह रूप निष्पन्न होता है।

रामे—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से सप्तमी एकवचन में "ङि" विभक्ति है। ङ् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। "इ" शेष रहता है। इ इस दशा में आद्गुणः" सूत्र से मकारोत्तरवर्ती "अ" और "इ" को र ए गुण एकादेश हो जाता है जिससे "रामे" यह रूप निष्पन्न होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(षत्वविधायक सूत्रम्)

१५०. आदेश प्रत्यययोः ८।३।५९॥

इण् कुभ्यां परस्यापदान्तस्य, आदेशः प्रत्ययावयश्च यः सः मूर्धन्यादेशः। ईषद् विवृतस्य सस्य तादृश एव षः रामेषु। एवं दयोऽप्यदन्ताः।

रामयोः—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक राम शब्द मे सप्तमी द्विवचन में विभक्ति आने पर षष्ठी द्विवचन के समान "रामयोः" रूप बनता है।

आदेश प्रत्यययोः—इण् प्रत्याहार के वर्णों से अर्थात् इ, उ, ऋ, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल से कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) मे परे अपदान्त आदेश रूप सकार अथवा प्रत्यय के अवयव की सकार के स्थान में षकार आदेश होवे। यहां इण् प्रत्याहार का ग्रहण पर णकार के (लण्) लिया जाता है।

ईषविति – ईषद् विवृत प्रयत्न वाले सकार के स्थान में वैसा ही ईषद् विवृत प्रयत्न वाला षकार आदेश होता है। जैसे—

रामेषु—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से सप्तमी बहुवचन में सुप् आती है। प् की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। अदन्त राम बहुवचन झल् प्रत्याहार के आदि वर्ण से युक्त सुप् की सु परे "बहुवचने झल्येत्" सूत्र से म की अ को ए हो जाता है। "रामेसु" इस में इण् प्रत्याहार की "ए" से प्रत्यय की स परे होने से "आदेश प्रत्यययोः" से ईषद् विवृत स के स्थान में ईषद् विवृत ष का आदेश होता है। "रामेषु" यह रूप निष्पन्न होता है।

अकारान्त राम शब्द के रूप निम्न प्रकार हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम	रामैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वनाम-संज्ञा-सूत्रम्)

१५१. सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७॥

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम।

(गण-सूत्रम्)

पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्, रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	(हे) राम!	(हे) रामौ!	(हे) रामाः!

राम शब्द के समान ही अन्य अकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप बनते हैं। कुछ सर्वनाम आदि अकारान्त शब्दों के रूपों में राम शब्द से भिन्नता प्राप्त होती है। उनका यथास्थान वर्णन किया जायेगा।

जिन अकारान्त शब्दों के रूप राम के समान होते हैं, वे शब्द कुछ भिन्न हैं। कृष्ण, गोविन्द, बालक, वानर, सूर्य, चन्द्र, दिवाकर, प्रभाकर, निशाकर, जलाशय, कूप, घट, अश्व, गज, पवन, ईश्वर, शिव, रुद्र, महेश, महेन्द्र, गणेश, दिनेश, सुरेश, चक्रधर, गंगाधर, गदाधर, महीधर, पर्वत, हिमाचल, हिमालय, विद्यालय, चिकित्सालय, वाचनालय, महाशय, महोदय, देव, सुर, अनुज, अग्रज, मनुष्य, मानव, पुरुष, वृषभ, वेद, भाव, अनुभव इत्यादि।

सर्वादीनि सर्वनामानि—सर्वादि गण में पढ़े हुए शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होवे।

सर्वादिगण में पढ़े हुए शब्द निम्नलिखित हैं—

सर्व (सब) विश्व (समस्त, सम्पूर्ण, सब) उभ (दो) उभय (दो का समूह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य (दूसरा) अन्यतर (दो में से एक) इतर (अन्य) त्व (अन्य) नेम (आधा) सम (सब) सिम (सब) डतर, डतम प्रत्यय हैं।

यद्यपि सर्वादिगण में पठित प्राय: सभी शब्द अकारान्त हैं तथापि उनके रूप राम शब्द से भिन्न होते हैं। विशेष रूप से जस्, ङे, ङसि, आम्, ङि इन विभक्तियों के रूपों में विशेष अन्तर होता है। शेष विभक्तियों के रूपों में प्राय: समानता ही प्राप्त होती है।

सर्वनाम—सर्वनाम शब्द का तात्पर्य यह है कि जिन शब्दों के नाम सबके लिये हो अर्थात् किसी एक के साथ न लगने वाला हो। अत: जो शब्द पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग तथा अन्य प्राणी समूह और जड़ चेतन समस्त वस्तुओं के लिये भी प्रयुक्त होता है और किया जाता है, उसे सर्वनाम कहते हैं। जो शब्द सबके लिये न प्रयुक्त हो सके उसे सर्वनाम नहीं कहते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी का नाम "सर्व" है तो उसको सर्वनाम नहीं कह सकते हैं और न ही सर्वादिगण में पढ़े हुए विशेष नियम ही उस पर लागू होंगे। जैसा कि कहा भी है "संज्ञोपसार्जनीभूतास्तु न सर्वादय:" अर्थात् जब सर्व, शिव आदि शब्द किसी व्यक्ति विशेष के वाचक अथवा नाम हो जाते हैं तो ये सर्व आदि शब्द स्वयं में प्रधान न होकर गौण हो जाते हैं। तब इन सर्व आदि शब्दों से सर्वादिगण में पढ़े हुए कार्य नहीं होते हैं। ऐसा समझना चाहिये।

पूर्वपरावर०—पूर्व (प्रथम) पर (द्वितीय) अवर (नीच, अधम अथवा पश्चिम) दक्षिण (दक्षिण दिशा) उत्तर (उत्तर दिशा) अपर (पश्चिम) अधर (निम्न) इन पूर्व, पर आदि शब्दों की व्यवस्था और संज्ञा भिन्न अर्थ में सर्वनाम संज्ञा होती है। अत: इन शब्दों से वे सभी विशेष नियम व कार्य होते हैं जो सर्वादि शब्दों के लिये कहे गये हैं।

व्यवस्था—इस शब्द का तात्पर्य यह है कि जहां यह किससे पहले आता है और यह किससे बाद में आता है, अथवा आना चाहिये। इस प्रकार की जहां व्यवस्था सम्बन्धी सर्वनाम संज्ञा होती है, अन्यत्र नहीं। उदाहरणार्थ "दक्षिणा गाथका:" यहां दक्षिण शब्द दिशा का वाचक नहीं है, अपितु कुशल का वाचक है। इसी प्रकार अन्यत्र "अवरे राग:, उत्तरे प्रत्युत्तरे भवत." यहां अधर शब्द निम्न, नीच, अधम, का वाचक नहीं है, अपितु अधरोष्ठ का वाचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गण-सूत्र) स्वमज्ञाति धनाख्याम् ।

(गण-सूत्र) अन्तरं वहिर्योगोपसंव्यानयोः ।

त्यद्, तद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ।

१५२. जसः शी ८।१।१७॥

अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । सर्वे ।

है, और उत्तरे उत्तर दिशा का वाचक नहीं है । अपितु प्रत्युत्तर का वाचक है, अतः इनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है, और जब ये पूर्व, आदि शब्द किसी के नाम हो जाते हैं, तब भी इनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है । जब केवल व्यवस्था और असंज्ञा अर्थ में ही इनका प्रयोग किया जायेगा तभी इनकी सर्वनाम संज्ञा होगी और सर्वनाम के विशेष नियम भी इन शब्दों पर लागू होंगे, ऐसा समझना चाहिये ।

स्वमज्ञाति०—ज्ञातिभिन्न अर्थात् वान्धवेतर अर्थ में प्रयुक्त और धन से अतिरिक्त अर्थ में प्रयुक्त स्व शब्द सर्वनाम संज्ञक हो अर्थात् ज्ञाति (वान्धव) अर्थ में प्रयुक्त तथा धन अर्थ में प्रयुक्त 'स्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञक न हो अर्थात् आत्मीय, आत्मा आदि अर्थों में सर्वनाम संज्ञा हो । 'स्व' शब्द चार अर्थों को धारण करता है । (१) आत्मा, (२) आत्मीय (३) ज्ञाति (वान्धव) और (४) धन । प्रथम दो अर्थों में 'स्व' की सर्वनाम संज्ञा होती है, शेष ज्ञाति और धन अर्थ में सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है ।

अन्तरं वहिर्योगोपसं०—वहिर्योग बाहर का उपसंव्यान अर्थात् अधोवस्त्र, इन दो अर्थों में प्रयोग किये जाने पर अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है । अन्य अर्थों में अन्तर शब्द का प्रयोग होने पर सर्वनाम संज्ञा न हो ।

त्यद् (व) तद् (वह) यद् (जो) एतद् (यह) इदम् (यह) अदस् (वह) एक, द्वि, युष्मद् (तू) अस्मद् (मैं), भवतु (आप), किम् (कौन) ये त्यदादि सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५३. सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४॥

अतः सर्वनाम्नो ङे स्मै । सर्वस्मै ।

१५४. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७।१।१५॥

अतः सर्वनाम्नः एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ।

१५५. आमि सर्वनाम्नः ७।१।५२॥

अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः । एत्वषत्वे-सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेष रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः । उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । उभौ २ । उभभ्याम् ३ । उभयोः २ । तस्येह पाठस्त्वकजर्थः ।

शब्द सर्वनाम संज्ञक होते हैं अर्थात् इनके भी वे सभी कार्य होते हैं, जो सर्व, विश्व आदि के लिये कह गये हैं।

जसः शी—अदन्त सर्वनाम से परे जस् के स्थान में 'शी' आदेश होता है। जैसे सर्वे—

सर्वनामवाचक सर्व शब्द के रूप [illegible] के एकवचन और द्विवचन में राम की तरह ही सर्वः, [illegible]ते हैं।

सर्वे—प्रातिपदिक संज्ञक सर्व शब्द से प्रथमा वहुवचन में जस् विभक्ति आती है। सर्व+जस् इस स्थिति में 'जसः शी' इस सूत्र से 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' सूत्र से शित् आदेश होने के कारण सम्पूर्ण जस् के स्थान में शी आदेश होता है जिससे सर्व+शी की स्थिति में 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र से स्थानी जस् के धर्म का स्थानिवद् भाव होने से शी में जस्त्व हो जाता है, 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से श् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है। सव+ई इस दशा में 'आद्गुणः' सूत्र से 'ए' गुण एकादेश हो जाता है, जिससे 'सर्वे रूप निष्पन्न होता है।

सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्, सर्वेण, सर्वाभ्यां सर्वैः की सिद्धि रामम्, रामौ, रामान् रामेण, रामाभ्या रामैः के समान होती है। अतः पुनः इनकी सिद्धि नहीं दी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्वनाम्नः स्मै—अदन्त सर्वनाम शब्द से ङे विभक्ति के परे होने पर स्थान में 'स्मै' आदेश होता है, जिससे सर्वस्मै निष्पन्न होता है।

र्वस्मै—प्रातिपदिक संज्ञक सर्व शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति है, 'सर्वादीन सर्वनामानि' सूत्र से सर्व की सर्वनाम संज्ञा हो जाती है, र्वनाम्नः स्मै' सूत्र से ङे के स्थान में 'स्मै' आदेश होता है, जिससे यह रूप निष्पन्न होता है।

सिङ्योः स्मात्स्मिनौ—सर्वनाम संज्ञक सर्वादि शब्दों से ङसि और ङि यां आने पर ङसि के स्थान में 'स्मात्' और 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' होता है। जैसे—

र्वस्मात्—प्रातिपदिक संज्ञक सर्व शब्द से पञ्चमी एकवचन में ङसि न आती है, 'सर्वादीन सर्वनामानि' सूत्र से 'सर्व' की सर्वनाम सज्ञा हो है, फिर 'ङसिङयो स्मास्मिनौ' सूत्र से ङसि के स्थान में स्मात् आदेश है, जिससे 'सर्वस्मात्' यह रूप निष्पन्न होता है।

ामि सर्वनाम्नः—अदन्त सर्वनाम संज्ञक शब्दों से आम् विभक्ति परे होने ट् का आगम होता है। जैसे—

र्वेषाम्—प्रातिपदिक संज्ञक सर्व शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति है, 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा हो जाती र्व+आम्' इस स्थिति में 'आमि सर्वनाम्नः' सूत्र से 'आद्यन्तौ टकितौ' टित् सुट् का आगम आम् के आदि में होता है। उट् की इत्संज्ञा होकर हो जाता है, सर्व स् आम् इस स्थिति 'बहुवचने झल्येत्' सूत्र से बहुवचन विभक्ति परे होने पर और झल् प्रत्याहार की स परे होने से अदन्त ो 'अ' के स्थान में 'एकार' आदेश होता है। 'आदेश प्रत्ययोः' सूत्र से ए' से परे स् को 'षत्व' 'ष' हो जाता है, जिससे सर्वेषाम् यह रूप निष्पन्न है।

शेष प्रथमा तथा द्वितीया के और एकवचन, द्विवचन में राम शब्द के समान की सिद्धि होती है। द्वितीया के बहुवचन, तृतीया के तीनों वचन, चतुर्थी के वचन और बहुवचन, पञ्चमी के द्विवचन और बहुवचन, षष्ठी के द्विवचन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप राम के समान बनते हैं, और सप्तमी के द्विवचन और बहुवचन के रूप राम के समान होते हैं, और उनकी सिद्धि भी राम के समान होती है।

सर्व शब्द के सभी विभक्तियों के रूप निम्नलिखित हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	"	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	"	"
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व !	हे सर्वौ !	हे सर्वे !

विश्व आदि शब्द अदन्त शब्दों के रूप सर्व शब्द के रूप समान ही बनते हैं। 'उभ' शब्द नित्य द्विवचनान्त है अर्थात् उभ शब्द के एक और बहुवचन रूप नहीं होते हैं। केवल द्विवचन में ही रूप होते हैं। जैसे—

उभ शब्द (द्विवचनान्त) के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	×	उभौ	×
द्वितीया	×	"	×
तृतीया	×	सर्वाभ्याम्	×
चतुर्थी	×	"	×
पंचमी	×	"	×
षष्ठी	×	सर्वयोः	×
सप्तमी	×	"	×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभय शब्दस्य द्विवचनं नास्ति। डतर डतमौ प्रत्ययौ प्रत्ययग्रहणे तदन्त ग्रहणम् इति तदन्ता ग्राह्याः। नेम इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः, तुल्य पर्यायस्तु न 'यथा संख्यमनुदेशः समानामिति निर्देशात्।

१५६. पूर्वपराऽवर दक्षिणोत्तराऽपराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनाम संज्ञा गणसूत्रात् सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे, पूर्वाः। असज्ञायां किम् उत्तराः कुरवः। स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था। व्यवस्थायां किम्--दक्षिणा गाथकाः, कुशला इत्यर्थः।

इन रूपों की सिद्धि राम शब्द के समान ही होती है। यहां उभ शब्द का पाठ अकच् प्रत्यय के लिये है अर्थात् द्विवचन में सर्वादि गण का कोई विशेष नियम प्रवृत्त नहीं होता है। अतः उभ शब्द का द्विवचन में पाठ क्यों किया गया है? इसके समाधानार्थ यह कहा गया है कि यदि उभ शब्द का पाठ सर्वादि गण में न करते तो उभ शब्द से 'अकच्' प्रत्यय नहीं हो सकता है और अकच् के अभाव में 'उभकौ' यह रूप नहीं बन सकता। अतः अकच् प्रत्यय की सिद्धि के लिये ही उभ शब्द का पाठ सर्वादि गण में किया गया है।

उभयशब्दस्य०—उभय शब्द का द्विववचन नहीं होता है। डतर और डतम ये दो प्रत्यय हैं। प्रत्यय के ग्रहण में उसके अन्त का भी ग्रहण किया जाता है। इसलिये तदन्त का ग्रहण करना चाहिये।

नेम इति अर्धे—यहां नेम शब्द अर्थ आधा है अर्थात् आधे के अर्थ में 'नेम' शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है। अन्य अर्थों में नेम की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है। जैसा कि महाभारत में भीष्म पितामह ने कहा है कि अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः' अर्थात् ये सभी बाण अर्जुन के हैं, इनमें आधे बाण शिखण्डी के हैं। सम शब्द सर्व शब्द का पर्यायवाची है न कि तुल्य शब्द का पर्यायवाची शब्द है। पाणिनि के 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पठित सम शब्द तुल्य का ही बोधक है। अतः सम की सर्वनाम नहीं होती है। सर्वनाम संज्ञा के अभाव में आम् विभक्ति में सुट् का आगम नहीं होता है। इसीलिये 'समानाम्' का निर्देश किया है। यदि सम शब्द सर्व का पर्यायवाची शब्द होगा तभी सर्वनाम संज्ञा होगी और षष्ठी बहुवचन में 'समेषाम्' रूप निष्पन्न होगा।

पूर्वपराऽवर०—पूर्व पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर, इन शब्दों की व्यवस्था अर्थ में और संज्ञा विभिन्न अर्थ में गण सूत्र से सर्वत्र प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस् विभक्ति के परे होने पर विकल्प से होती है। जैसे—

पूर्वे पूर्वाः—प्रातिपदिक संज्ञक पूर्व शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आती है। 'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्' इस गण सूत्र से पूर्व शब्द की नित्य सर्वत्र सर्वनाम संज्ञा व्यवस्था अर्थ में और संज्ञा भिन्न अर्थ में प्राप्त होती है परन्तु यहां जस विभक्ति के परे होने पर 'पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्' सूत्र से विकल्प से पूर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है। अतः सर्वनाम संज्ञा के पक्ष में 'जसः शी' सूत्र से जस् को शी आदेश हो जाता है। 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र से शी का स्थानिवद् भाव मानकर 'लशक्व-तद्धिते' सूत्र से शकार की इत्संज्ञा होकर लोप होता है।

पूर्व + ई इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से गुण हो जाता है जिससे 'पूर्वे' प्रयोग निष्पन्न होता है और पक्ष में 'पूर्वाः' (राम के समान) बनता है।

असंज्ञायाम् किम्—'पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराधराणि व्यवस्थायाम संज्ञायाम्' इस सूत्र में असंज्ञायाम् अर्थात् संज्ञा भिन्न अर्थ में इन शब्दों की सर्वनाम होती है, ऐसा क्यों कहा गया है ? इस उत्तर में कहा है कि यदि उक्त सूत्र में ऐसा न कहते तो संज्ञावाचक 'उत्तराः कुरवः' में उत्तर की विकल्प से सर्वनाम सज्ञा हो जाती है जो इष्ट नहीं है। अतः असंज्ञा अर्थ में ही उत्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है, यहां उत्तर शब्द असंज्ञावाचक होने से सर्वनाम संज्ञक नहीं होता है। अतः जस् को शी नहीं होता है और 'उत्तराः' ही रूप बनता है। अतः 'असंज्ञायाम्' यह पाठ उचित ही है अन्यथा संज्ञा अर्थ में भी सर्वनाम संज्ञा हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।२।३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। स्वे, स्वाः। मीय आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः=ज्ञातयः अर्थाः।

१८. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १।१।३६॥

बाह्य परिधानीये चार्थेऽन्तर शब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। तरे, अन्तरा वा गृहाः--बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः रिधानीया इत्यर्थः।

व्यवस्थायाम् किम्—अर्थात् किसी वस्तु या व्यक्ति के विषय में व्यवस्था यम बना देना कि तुम पहले भोजन करो, उसके बाद तुम, इस प्रकार के यम बनाने को व्यवस्था कहते हैं। जैसा कि कहा भी है कि 'स्वाधिनियमो-वस्था' प्रस्तुत सूत्र में व्यवस्थायाम् अर्थात् व्यवस्था अर्थ में ही पूर्व, पर, वर, उत्तर, दक्षिण आदि की सर्वनाम संज्ञा जस् विभक्ति परे रहते विकल्प होती है, ऐसा क्यों कहा है? इसके उत्तर में कहा है कि 'व्यवस्थायाम्' सूत्र में पाठ न करते तो 'दक्षिणा गाथकाः' यहां भी व्यवस्थायाम् सूत्र में पाठ न करते तो 'दक्षिणा गाथकाः' यहां भी व्यवस्था भिन्न अर्थ विकल्प से जस् विभक्ति के परे सर्वनाम हो जाती जो इष्ट नहीं है। अतः अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही व्यवस्था शब्द का सूत्र में पाठ किया गया है जो सर्वथा उचित है। 'दक्षिणाः गाथकाः' का अर्थ है कि गाने वाले चतुर हैं। यहां व्यवस्था न होने से सर्वनाम संज्ञा नहीं होती।

स्वमज्ञातिधना०— ज्ञाति (बान्धव) और धन से भिन्न अर्थों में स्व शब्द का प्रयोग होने पर जस् विभक्ति में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है अर्थात् जो सर्वनाम संज्ञा नित्य प्राप्त थी वह जस् विभक्ति में विकल्प से होती है जिससे स्वे, स्वाः ये दो रूप बनते हैं।

स्वे, स्वाः—प्रातिपदिक संज्ञक स्व शब्द से जस् विभक्ति आती है। यहां ज्ञाति, आत्मीय तथा आत्मा का वाचक है। ज्ञाति अर्थात् बान्धव एव धन शब्द का वाचक नहीं है। अतः 'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्' सूत्र से नित्य प्राप्त सर्वनाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५९. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६॥

तेभ्यो ङसिङ्यो स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात् पूर्वात्। पूर्वस्मिन् पूर्वे। एवं परादीनामपि। शेषं सर्ववत्।

१६०. प्रथम चरम तयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च १।१।३३॥

एते जसि उक्तसंज्ञाः स्युः। प्रथमे, प्रथमाः। तयः प्रत्ययाः—द्वितये, द्वितयाः शेषं रामवत् नेमे, नेमाः। शेषं सर्ववत्।

संज्ञा जस् परे रहते विकल्प होती है। जिस 'जसः शी' सूत्र से जस् को 'शी' आदेश हो जाता है और 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शी के शकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। स्व+ई को 'आद्गुणः' सूत्र से 'ए' गुण एकादेश हो जाता है जिससे 'स्वे' बनता है। सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में 'स्वाः' यह रूप निष्पन्न होता है। ज्ञाति और धन वाचक 'स्व' शब्द का प्रथमा बहुवचन जस् में 'स्वाः' ही बनता है।

अन्तरं बहिर्योगोप०—बहिर् अर्थात् बाहर और अन्तर अर्थात् अधोवस्त्र के धारण करने के अर्थ में अन्तर शब्द की जो नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त थी, वह जस् विभक्ति के परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जिससे अन्तरे, अन्तराः ये दो रूप बनते हैं।

अन्तरे अन्तराः—अन्तर शब्द से बाह्य अर्थात् बाहर अर्थ में अधोवस्त्र के धारण करने के अर्थ में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जिससे स्वे, स्वाः के समान जस् को शीं→ई शेष, ई को गुण होकर अन्तरे पक्ष में राम की तरह दीर्घ एवं रुत्व विसर्ग होकर अन्तराः निष्पन्न होता है। अन्तरे, अन्तराः वा गृहाः=बाहर गृह (घर, मकान) इसी प्रकार अन्तरे, अन्तराः शाटकाः अर्थात् पहनने योग्य साड़ियां। इन दो अर्थों में जस् विभक्ति में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है, अन्य अर्थों में अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा—पूर्व, पर, अवर आदि ९ शब्दों से ङसि और ङि विभक्ति आने पर स्मात् और स्मिन् आदेश होता है। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०. प्रथम चरम तयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च १।१।३३।।

एते जसि उक्त संज्ञाः स्युः । प्रथमे, प्रथमाः । तयः प्रत्ययाः—द्वितये, तयाः शेषं रामवत् । नेमे, नेमाः । शेषं सर्ववत् ।

(वा०) तीयस्य ङित्सु वा ।

द्वितीयस्मै द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः ।

पूर्वस्मात्—प्रातिपदिक संज्ञक पूर्व शब्द से पञ्चमी एकवचन में ङसि भक्ति आती है, पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा "इस सूत्र से विकल्प से "ङसि" के स्थान पर "स्मात्" आदेश होता है, जिससे पूर्वस्मात् रूप निष्पन्न होता है, पक्ष में "टाङसिङसामिनात्स्याः" सूत्र से "ङसि" को आत् आदेश हो जाता है, सवर्णं दीर्घ होकर "पूर्वात्" यह रूप निष्पन्न होता है ।

पूर्वस्मिन्—प्रातिपदिक संज्ञक पूर्व शब्द से सप्तमी एकवचन में "ङि" विभक्ति आने पर "पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा" सूत्र से विकल्प से "ङि" के स्थान में स्मिन् आदेश हो जाता है, जिससे पूर्वस्मिन् निष्पन्न होता है, पक्ष में, पूर्व+ङि इस दशा में ङकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, फिर पूर्व+इ इस स्थिति में "आद्गुणः" सूत्र से वकारोत्तरवर्ती "अ" और इ को मिलाकर "ए" गुण एकादेश हो जाता है, जिससे "पूर्वे" निष्पन्न होता है ।

शेष पूर्व शब्द के रूपों की सिद्धि राम के समान होती है, और शेष रूप भी राम शब्द के समान होते हैं । इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर आदि के भी रूप होते हैं ।

प्रथमचरमतयाल्पार्ध०—प्रथम, चरम, तय एवं तयप् प्रत्यययान्त द्वितय आदि शब्द अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम इन शब्दों की जस् विभक्ति परे रहते विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है अर्थात् इन शब्दों से जस् विभक्ति आने पर विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होवे । जैसे:—

प्रथमे, प्रथमाः—प्रातिपदिक संज्ञक प्रथम शब्द से जस् विभक्ति आती है, "प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च" सूत्र से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है, जिससे "जसः शी" सूत्र से जस् के स्थान में "शी" आदेश हो जाता है, शकार का इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है, प्रथम+ई इस स्थिति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आद्गुणः' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती 'अ' और ई को मिलाकर 'ए' गुण एकादेश हो जाता है, जिससे प्रथम निष्पन्न होता है, पक्ष में 'चुटू' सूत्र से ज का इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है, प्रथम + अस् इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ और स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'प्रथमा' यह रूप निष्पन्न होता है।

द्वितये, द्वितयाः—द्वि शब्द से तय अथवा तयप् प्रत्यय होने पर द्वितय शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर जस् विभक्ति प्रथमा बहुवचन में आती है। 'प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च' सूत्र से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है, जिससे 'जसः शी' सूत्र से जस् को 'शी' आदेश होता है, शकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'द्वितय + ई' इस दशा में 'आद्गुणः' सूत्र से य की 'अ' और ई को 'ए' गुण एकादेश होता है, इस प्रकार द्वितये और पक्ष में सर्वनाम संज्ञा के अभाव में ज का इत्संज्ञा होकर लोप तथा सवर्ण दीर्घ और स् को रुत्व विसर्ग होकर 'द्वितयाः' बनता है।

प्रथम, द्वितय शब्दों के शेष रूप राम शब्द के समान ही होते हैं।

नेमे, नेमाः— इसी प्रकार नेम शब्द से जस् विभक्ति आने पर 'प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च' सूत्र से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होने से जस् को शी आदेश होता है। शकार का इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। नेम + ई सकार की अ और ई को मिलाकर 'ए' गुण होता है जिससे नेमे और पक्ष में नेमाः ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

शेष नेम (आधा) शब्द के रूप सर्व के समान होते हैं।

तीयस्यङित्सु वा—तीय प्रत्ययान्त शब्दों की ङित् विभक्ति के परे होने पर विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है।

ङित् विभक्तियों से तात्पर्य उन विभक्तियों से है जिन विभक्तियों के ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। जैसे—'ङे, ङसि, ङस्, ङि' ये विभक्तियां ङित् हैं क्योंकि इनके ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

द्वितीयस्मै, द्वितीयाय—तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिक संज्ञक द्विमीय शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आती है। 'तीयस्यङित्सु वा' इस वार्तिक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६१. जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०२॥

अजादौ विभक्तौ

(प.) पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च ।

(प०) निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ।

(प.) एकदेश विकृतमनन्यवत् ।

इति जर शब्दस्य जरस्—निर्जरसौ निर्जरसः । पक्षे हलादौ च रामवत् ।

ङित ङे विभक्ति परे होने से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जिससे 'सर्वनाम्नः स्मै, सूत्र से ङे के स्थान में 'स्मै' आदेश हो जाता है । इस प्रकार द्वितीयस्मै पक्ष में 'ङेर्य' सूत्र से 'ङे' के य आदेश होता है । 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र से य को स्थानिवद्भाव मानकर (सुपत्वधर्म मानकर) 'सुपि च' सूत्र से दीर्घ हो जाता है जिससे द्वितीयाय' यह रूप भी निष्पन्न होता है ।

एवं तृतीयः—त्रि शब्द से तीय प्रत्यय होकर तथा सम्प्रसारण होकर तृतीय शब्द बनता है । इस तृतीय शब्द से भी ङित् विभक्ति परे होने पर 'तीयस्य-ङित्सु वा' वार्तिक से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जिससे द्वितीयस्मै और द्वितीयाय के समान 'तृतीयस्मै, तृतीयाय' रूप निष्पन्न होते हैं ।

द्वितीय शब्द के रूप निम्नलिखित हैं—

द्वितीय शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीयः	द्वितीयौ	द्वितीयाः
द्वितीया	द्वितीयम्	,,	द्वितीयान्
तृतीया	द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयैः
चतुर्थी	द्वितीयस्मै, द्वितीयाय	,,	द्वितीयेभ्यः
पञ्चमी	द्वितीयस्मात् द्वितीयात्	,,	,,
षष्ठी	द्वितीयस्य	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी	द्वितीयस्मिन्, द्वितीये	,,	द्वितीयेषु
सम्बोधन	हे द्वितीय !	हे द्वितीयौ !	हे द्वितीयाः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जराया जरसन्यतरस्याम्—जरा शब्द के स्थान में अजादि विभक्ति परे रहते विकल्प से जरस् आदेश होता है अर्थात् जरा शब्द से प्रथमा द्वि० व० 'औ' बहुव० जस्→अस्, द्वितीया की अम्, औट्→औ, शस्→अस्, तृतीया एकव० टा→आ, चतुर्थी एकव० ङे→ए, पञ्चमी एकव० ङसि→अस्, षष्ठी ङस्→अस्, ओस्, आम्, सप्तमी एकव०, द्विवचन, ङि→इ, ओस् इन विभक्तियों के परे जरा के स्थान में जरस् आदेश विकल्प से होता है।

पदाङ्गाधिकारे—पदाधिकार और अङ्गाधिकार में आदेश जिस शब्द के स्थान में कहा गया है, उसके स्थान में आदेश हो और वह शब्द जिसके अन्त में हो, उस समूह के स्थान में भी हो। अङ्गाधिकार का क्षेत्र अष्टाध्यायी के छठे अध्याय के चतुर्थ पाद से सप्तम अध्याय की समाप्ति तक माना जाता है। यह 'जराया जरसन्यतरस्यां' सूत्र इसी अङ्गाधिकार के अन्तर्गत पढ़ा गया है।

निर्दिश्यमानस्य०—निर्दिश्यमान अर्थात् कहे हुए के ही स्थान में आदेश होता है। निर्दिश्यमान का तात्पर्य है कि जो आदेश विधि सूत्र में स्थानी का बोधक षष्ठ्यन्त पद तथा उसकी प्रथम उपस्थिति होती है। इसलिये जरा के स्थान में कहा गया है कि जरस् आदेश जरा के ही स्थान में समस्त निर्जर के स्थान पर नहीं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जरा के स्थान पर कहा गया जरस् आदेश निर्जर के स्थान पर नहीं हो सकता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यहां जरा शब्द नहीं है अपितु जर है। अतः जर को जरस् कैसे होगा ? इसके उत्तर में कहा है कि—

एकदेशविकृत०—अर्थात् किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के अंश अथवा अंग के विकृत हो जाने पर वह वही रहता है, अन्य नहीं हो जाता है। उसी प्रकार जर शब्द में केवल एक अकार की मात्रा की कमी है, अन्य कोई कमी नहीं है। यदि कुत्ते की पूंछ काट दी जाये तो क्या वह कुत्ता कोई अन्य पशु हो जाता है अर्थात् नहीं, वह कुत्ता ही रहता है। उसी प्रकार जर शब्द जरा ही माना जायेगा, कुछ और नहीं। इस प्रकार जर के स्थान पर जरस् आदेश होने में कोई आपत्ति नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसौ—प्रातिपदिक संज्ञक निर्जर शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति । निर्जर+औ इस स्थिति में अजादि विभक्ति परे होने पर 'एकदेश-न्यवत्' इस नियम से जर को विकल्प से जरस् आदेश हो जाता है। निर्जरसौ' पक्ष में निर्जर+औ 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि होकर ''निर्जरौ' निष्पन्न होता है।

रसः—प्रातिपदिक संज्ञक निर्जर शब्द मे प्रथमा बहुवचन में जस् आती है। 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इन भाषाओं के अनुसार 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से विकल्प से अजादि जस् की अस् होने से जर को जरस् आदेश हो जाता है। स् को रुत्व हो जाता है जिससे 'निर्जरसः' रूप निष्पन्न होता है और पक्ष में सवर्ण स् को रुत्व विमर्ग होकर 'निर्जराः' रूप निष्पन्न होता है।

रसः, निर्जरान्—प्रातिपदिक संज्ञक निर्जर शब्द से द्वितीया बहुवचन विभक्ति आती है। निर्दिश्यमानस्यादेशाभवन्ति' 'एकदेशविकृतमनन्य-दो परिभाषाओं के अनुसार 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से विकल्प के जर को जरसादेश होता है। शस् की शकार की इत्संज्ञा तथा जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'निर्जरसः' पक्ष में सो नः पुंसि' सूत्र से शस् की स् को न् हो जाता है, उसको सवर्ण जाता है जिससे 'निर्जरान्' बनता है।

रसा, निर्जरेण—प्रातिपदिक संज्ञक निर्जर शब्द से तृतीया एकवचन में क्ति आती है। 'चुटू' सूत्र से टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता स मे 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से जरसादेश होता है जिससे पक्ष में 'टाङसिङ्सामिनात्स्याः' सूत्र से टा को इन, गुण, णत्व होकर रूप बना है।

रसे, निर्जराय—चतुर्थी एकवचन में जरसादेश होने पर निर्जर से पक्ष के समान निर्जराय बनता है।

रसः निर्जरात्—निर्जर शब्द से पञ्चमी एकवचन ङसि विभक्ति में होने पर निर्जरसः पक्ष में राम के समान 'निर्जरात्' रूप निष्पन्न ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्जरसाम्, निर्जराणाम्—निर्जर शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभ आती है। 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से विकल्प से जर को जरस् आ होता है जिससे 'निर्जरसाम्' रूप निष्पन्न होता है। पक्ष में रामाणाम् के स 'निर्जराणाम्' रूप बनता है।

निर्जरि, निर्जरे—निर्जर शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आ है। विकल्प से जरसादेश होता है जिससे जरसि और पक्ष में रामे के स 'निर्जर' रूप निष्पन्न होना है।

निर्जर शब्द (जरसादेश पक्ष में)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ	निर्जरसः
द्वितीया	निर्जरसम्	"	"
तृतीया	निर्जरसा	निर्जराभ्यां	निर्जरैः
चतुर्थी	निर्जरसे	"	निर्जरेभ्य
पञ्चमी	निर्जरसे	"	"
षष्ठी	"	निर्जरसौ	निर्जरसाम्
सप्तमी	निर्जरसि	"	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर !	हे निर्जरसौ	हे निर्जरसः !

जरसादेश के अभाव पक्ष में

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरौ	निर्जराः
द्वितीया	निर्जरम्	निर्जरौ	निर्जराः
तृतीया	निर्जरेण	निर्जराभ्यां	निर्जरैः
चतुर्थी	निर्जराय	"	निर्जरेभ्यः
पञ्चमी	निर्जरात्	"	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरस्य	निर्जरयोः	निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरे	"	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर !	हे निर्जरौ !	हे निर्जराः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घाज्जसि च—दीर्घ वर्ण से जस् विभक्ति और इच् प्रत्याहार अर्थात् इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ वर्णों में से किसी एक वर्ण के परे पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है।

विश्वपौ—प्रातिपदिक संज्ञक विश्वपा शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती है। विश्वपा + औ इस स्थिति में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त होता है परन्तु 'दीर्घाज्जसि च'' इस सूत्र से पूर्व सवर्ण का निषेध हो जाता है और 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि हो जाती है जिससे 'विश्वपौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

विश्वपाः—विश्वपा शब्द से जस् विभक्ति आती है। 'चुटू'' सूत्र से ज् की इत्संज्ञा होती है और 'तस्य: लोप:' सूत्र से ज् का लोप हो जाता है। विश्वपा + अस् इस स्थिति में पूर्वस वर्ण दीर्घ एकादेश हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'विश्वपा:' यह रूप निष्पन्न होता है।

हे विश्वपाः—सम्बोधन में विश्वपा शब्द से सु विभक्ति आती है। सु के उकार का इत्संज्ञा होने पर लोप हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाते हैं जिससे हे विश्वपा:' यह रूप बनता है।

विश्वपाम्—प्रातिपदिक संज्ञक विश्वपा शब्द से द्वितीया एकवचन अम् विभक्ति आने पर 'अभिपूर्व:' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश होता है जिससे विश्वाम् यह रूप निष्पन्न होता है।

सुडनपुंसकस्य—नपुंसक लिंग से भिन्न अर्थात् नपुंसक लिंग को छोड़कर सु, औ, जस, अम्, औट् तक पांच विभक्तियों की सर्वनाम संज्ञा होवे।

स्वादिष्वति—सु से लेकर कप् प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की पद संज्ञा होवे, सर्वनाम स्थान प्रत्ययों को छोड़कर अर्थात् सर्वनाम स्थान सम्बन्धी प्रत्ययों से भिन्न सु से लेकर कप् प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है।

यचिभम्—यकरादि तथा अजादि प्रत्ययों के परे होने पर सु से लेकर कप् प्रत्यय तक सर्वनाम स्थान भिन्न प्रत्ययों को छोड़कर अर्थात् सु, औ, जस्, अम् औट् को छोड़कर पूर्व की भसंज्ञा होती है।

आकडारादेका संज्ञा—यहां से लेकर अर्थात् प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६२. दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५।

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः—विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ।

१६३. सुडनपुंसकस्य १।१।५३।

स्वादि पञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीवस्य।

(पदसंज्ञाविधायक-सूत्रम्)

१६४ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१६।

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनाम स्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्।

(भसंज्ञा-सूत्रम्)

१६५. यचि भम् १।४।१८।

यादिषु अजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्।

(परिभाषा-सूत्रम्)

१६६ आकडारादेका संज्ञा १।४।१।

इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारय' इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च।

के प्रथम सूत्र से लेकर 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र से पहले तक एक शब्द की एक ही संज्ञा होती है। अर्थात् जहां दो संज्ञाएं एक ही साथ प्राप्त हों वहां एक ही संज्ञा होती दो नहीं।

यद्यपि यह निश्चित हो गया कि दो संज्ञाओं के प्राप्त होने पर एक ही संज्ञा हो परन्तु एक संज्ञा कौन हो, और कौन न हो इसके समाधानार्थ कहा है—कि 'या पराऽनवकाशा च' अर्थात् जो संज्ञा अथवा कार्य पर हो और जिसको कहीं भी अवकाश न प्राप्त हुआ हो वही एक संज्ञा हो। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६७. आतो धातोः ६।४।४०॥

आकारान्तो यो धातुः, तदन्तस्य भसंज्ञकाङ्गस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः।

धातोः किम्—हाहान्। हाहा। हाहौ। हाहाः। हाहौः हाहाम्। हाहे। इत्यादन्ताः।

'विश्वपः' में पद संज्ञा और भसंज्ञा दोनों प्राप्त होती है परन्तु 'भ' संज्ञा पर और अनवकाश है। अतः पद संज्ञा नहीं होती और भसंज्ञा हो जाती है।

आतोधातो—आकारान्त जो धातु (पा, स्था, घ्रा, दा, आदि) और उसका जो भ संज्ञक अंग, उसका लोप होता है।

अलोऽन्त्यस्य—अन्तिम अल् वर्ण, अथवा स्वर का लोप होता है। जैसे—

विश्वपः—विश्वपा शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर द्वितीया बहुवचन में 'शस्' विभक्ति आती है 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शकार का लोप हो जाता है। विश्वपा + अस् इस दशा में 'स्वादिष्वर्वनामस्थाने' सूत्र से विश्वपा शब्द की पद संज्ञा प्राप्त होती है 'आकडारादेशा संज्ञा' इस सूत्र के नियम से एक शब्द की एक साथ एक ही संज्ञा होती है। अतः दो संज्ञाओं में कौन एक संज्ञा हो ? इसके उत्तर में कहा है कि 'या पराऽनवकाशा च' अर्थात् जो संज्ञा पर और निरवकाश हो, वह संज्ञा हो, यहां भसंज्ञा, पद संज्ञा की अपेक्षा पर है और निरवकाश भी है। अतः 'यचिभम्' सूत्र से भसंज्ञा हो जाती है 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र की सहायता से 'आतो धातोः' सूत्र से पा की आ का लोप हो जाता है। विश्वप् + अस् विश्वपस् सकार का रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'विश्वपः' यह रूप निष्पन्न होता है।

विश्वपा—इसी प्रकार विश्वपा शब्द से तृतीया एकवचन 'टा' विभक्ति आने पर भसंज्ञा होने पर आकार का लोप होकर 'विश्वपा' निष्पन्न होता है।

विश्वपाभ्याम्— विश्वपा + भ्याम् = विश्वपाभ्याम् तृ० द्वि० व०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वपा + भिस् = विश्वपाभिःतृतीया बहुवचन। चतुर्थी एकवचन में विश्वपे आदि रूप भसंज्ञा आदि होकर 'विश्वपः' द्वितीया बहुवचन के समान निष्पन्न होंगे।

इसी प्रकार विश्वपा के समान 'शंखध्मा' शब्द के रूप बनेंगे और चलेंगे।

(विश्वपा शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्यां	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्यां	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्यां	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे विश्वपाः !	हे विश्वपौ !	हे विश्वपाः !

इसी प्रकार आकारान्त पुल्लिग शब्दों के (शंखध्मा आदि के) रूप होते हैं।

धातोः किम्—प्रस्तुत सूत्र 'आतो धातोः' में 'धातोः' का पाठ क्यों किया गया है ? इसका आशय यह है कि यदि आकारान्त शब्द का धातु शब्द विशेषण न बनाते तो 'हाहा' आदि आकारान्त शब्दों की भी भसंज्ञा होकर आकार का लोप हो जाता जो इष्ट नहीं है। और आकार का लोप होने से अनिष्ट रूपों की आपत्ति हो जाती है। अतः इस अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिए ही 'धातोः शब्द का पाठ किया है जो सर्वथा उचित ही है, अन्यथा हाहा आदि आकारान्त शब्दों की अनिष्ट सिद्धि होने लगती।

(आकारान्त "हाहा" शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हाहाः	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गुण-विधायक-सूत्रम्)

रिः, हरी ।

जसि च ७।३।१०९।।

त्याङ्गस्य गुणः हरयः ।

ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८।।

ु। हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

भक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
तुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
ञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम	हाहाभ्यः
ष्ठी	हाहाः	हाहौ	हाहाम्
तमी	हाहे	हाहौ	हाहासु
म्बोधन	हे हाहाः !	हे हाहौ !	हे हाहाः

(ह्रस्व इकारान्त पुल्लिग "हरि" शब्द)

रिः—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति है 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र से 'सु' के उकार की इत्संज्ञा हो है 'तस्य लोपः' सूत्र से उकार का लोप हो जाता है । स् को रुत्व विसर्ग 'हरिः' निष्पन्न होता है ।

हरी"—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति है 'प्रथमयोः पूर्व सवर्ण दीर्घः' सूत्र से दीर्घ हो जाता है जिससे 'हरी' न बनता है ।

जसि च—ह्रस्वान्त अङ्ग के स्थान में गुण होता है । जैसे—

हरयः—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से प्रथमा बहुवचन में 'जस्' क आती है । 'चुटू' सूत्र से जकार की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' सूत्र से र का लोप हो जाता है जिससे हरि+अस् इस स्थिति में 'जसि च' सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घि संज्ञा-सूत्रम्)

१७०. शेषो घ्यसखि १।४।७०॥

शेष इति स्पष्टार्थम्। अनदी संज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तौ सखिवर्जं घि संज्ञम्।

१७१. आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङिति टासंज्ञा प्राचाम्। हरिणा। हरिभ्याम्, हरिभिः।

१७२. घेर्ङिति ७।३।१११॥

घि संज्ञकस्य ङिति गुणः। हरये।

से हरि की इकार को ए गुण हो जाता है। हरे+अस् इस स्थिति 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'ए' को अय् आदेश हो जाता है। स् को रुत्व हो जाता है जिससे 'हरयः' यह रूप निष्पन्न होता है।

हे हरे—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से सम्बोधन में प्रथमा एकवचन 'सु' विभक्ति आती है। 'सु' के उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से 'सु' की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। 'ह्रस्व गुणः' सूत्र से हरि की इकार को 'ए' गुण हो जाता है। हरे+स् इस स्थिति में 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञक सु की स् का लोप हो जा जिससे 'हे हरे!' यह रूप निष्पन्न होता है।

हरिम्—हरि+अम् (द्वितीया एकवचन) 'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्वरूप हो 'हरिम् निष्पन्न होता है।

हरीन्—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से द्वितीया बहुवचन में शस् वि आती है। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शस् की श की इत्संज्ञा हो जाती है 'तस्यलोपः' सूत्र से श् का लोप हो जाता है। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सू दीर्घ हो जाता है। हरीस् इस दशा में 'तस्माच्छसो नः पुंसि' सूत्र से स् को न् हो जाता है जिससे 'हरीन्' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७३. ङसिङसोश्च ६।१।११०॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः। हरेः २। हर्योः हरीणाम्।

१७४. अच्च घेः ७।३।११९॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत्, घेरत्। हरौ, हर्योः, हरिषु एवं काव्यादयः।

शेषोघ्यसखि – नदी संज्ञक इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों को छोड़कर जो ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों की घिसंज्ञा होती है 'सखि' शब्द को छोड़कर। अर्थात् नदी संज्ञक और 'सखि' शब्द को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों की घिसंज्ञा होती है।

आङोनास्त्रियाम्—घिसंज्ञक शब्दों से परे आङ अर्थात् टा विभक्ति को ना आदेश होता है स्त्रीलिंग शब्दों को छोड़कर। प्राचीन वैयाकरणों के मत में टा विभक्ति का नाम आङ् है परन्तु पाणिनि ने इसका सकेत नहीं किया है। जैसे—

हरिणा—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से तृतीया एकवचन में 'टा' विभक्ति आती है। शेषोघ्यसखि' सूत्र से हरि शब्द की घिसंज्ञा हो जाती है जिससे 'आङ्गोनास्त्रियाम्' सूत्र से टा को 'ना' आदेश हो जाता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न को ण हो जाता है जिससे 'हरिणा' यह रूप निष्पन्न होता है।

हरिभ्याम्—हरि + भ्याम् = हरिभ्याम्, हरिभिः = हरि + भिस् स् को रुत्व विसर्ग होकर हरिभिः बनता है।

घेङिति—घिसंज्ञक शब्द से ङित् विभक्ति परे होने पर ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों को गुण होता है अर्थात् घिसंज्ञक ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों से ङे, ङसि, ङस्, ङि विभक्ति आवे तो इकार, उकार को गुण होता है। जैसे—

हरये—हरि शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से ह्रस्व इकारान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरि' शब्द की घि संज्ञा हो जाती है। 'घेङिति' सूत्र से हरि की इकार को 'ए' गुण हो जाता है। हरे+ए इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अय् आदेश हो जाता है जिससे 'हरये' यह रूप बनता है।

एङोङसिङसोश्च—एङन्त अर्थात् एकारान्त, आकारान्त शब्दों से (ए, ओ से) ङसि और ङस् विभक्ति परे होने पर पूर्वरूप एकादेश होता है। जैसे—

हरेः—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से पञ्चमी एकवचन तथा शष्ठी एकवचन की ङसि, ङस् विभक्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से हरि शब्द की घिसंज्ञा हो जाती है। 'घोङिति' सूत्र से हरि की इकार को 'ए' गुण हो जाता है। हरे+अस् इस स्थिति में 'एङोङसिङसोश्च' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होता है। स् को रुत्व विसर्ग होकर 'हरेः' यह रूप निष्पन्न होता है।

हर्यो—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी के द्विवचन में ओस् विभक्ति आती है। हरि+ओस् इस स्थिति में 'इकोयणचि' सूत्र से इ को यण् 'य्' हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग होकर 'हर्योः' यह रूप निष्पन्न होता है।

हरीणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। 'नामि' सूत्र से इकार को दीर्घ ईकार हो जाता है। 'अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से न को ण हो जाता है जिससे 'हरीणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

अच्च घेः—घि संज्ञक ह्रस्व इकार तथा उकार से परे ङि विभक्ति की इ को औत् आदेश होता है और घिसंज्ञक इकार, उकार को अकार आदेश हो जाता है। जैसे—

हरौ—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है। 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से हरि की घिसंज्ञा हो जाती है। 'अच्च घेः' सूत्र से घिसंज्ञक हरि शब्द की इकार से परे विभक्ति की इकार को औत् आदेश हो जाता है। त् की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाता है और हरि शब्द की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७५. अनङ् सौ ७।१।९३॥

सख्यु रंगस्यानङ् ङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

१७६. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १।१।६५॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्णः उपधा संज्ञः स्यात्।

१७७. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८॥

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

१७८. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१॥

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

इकार को अकार हो जाता है। हर+औ इस दशा में 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि हो जाती है जिससे 'हरौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

हरिषु—प्रातिपदिक संज्ञक हरि शब्द से सप्तमी बहुवचन में 'सुप्' विभक्ति आती है। प् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'आदेश प्रत्ययोः' सूत्र से सु की स् को षत्व हो जाता है जिससे 'हरिषु' यह रूप निष्पन्न होता है।

(इकारान्त हरि शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	,,	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	,,	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	,,	,,
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	,,	हरिष
सम्बोधन	हे हरे !	हे हरी !	हे हरयः !

रवि, कवि, विधि, मुनि, ऋषि, अलि, अरि, अग्नि, असि, अतिथि, यति, नृपति, भूपति आदि पुल्लिंग इकारान्त शब्दों के रूप हरि के समान होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७९. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ६।१।६८॥

हलन्तात् परं, दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं, सु ति सि इत्येतत् अपृक्तं हल् लुप्यते।

१८०. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७॥

प्रातिपदिक संज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः। सखा।

अनङ् सौ—सम्बोधन का सु विभक्ति को छोड़कर सखि शब्द के अंग को अनङ् आदेश हो अर्थात् सम्बुद्धि भिन्न सु के परे होने पर सखि शब्द के अंग के स्थान में अनङ् आदेश होता है। जैसे—सखा।

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा—अन्तिम अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ—सम्बोधन से भिन्न सु विभक्ति के परे होने पर नकारान्त के अंग की उपधा को दीर्घ होवे।

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः—एक अल् रूप जो प्रत्यय उस प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है अर्थात् एक अल् वाले प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है। जैसे—

सखि सु→स्, सखन्+स् यहां स् एक अल् (वर्ण) वाला प्रत्यय है। अतः 'स्' की अपृक्त संज्ञा होती है।

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्—हलन्त तथा दीर्घान्त जो ङीप् और आप् प्रत्ययान्त जो शब्द उनसे परे सु, ति, सि का जो अपृक्त हल् उसका लोप होता है। हलन्त शब्दों से, ङी अर्थात् ङीप्, ङीष् और ङीन् इन तीनों का बोध होता है अर्थात् स्त्री प्रत्ययान्त ङीप्, ङीष् और ङीन् प्रत्ययों वाले शब्द आप्, चाप् तथा टाप् प्रत्ययान्त शब्दों से अपृक्त हल् सु की स् का लोप होता है। जैसे—सखा में सु की स् का लोप होता है।

न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य—प्रातिपदिक संज्ञक जो शब्द उस शब्द के अन्त की नकार का लोप होता है। जैसे—

सखा—प्रातिपदिक संज्ञक सखि शब्द से प्रथमा एकवचन में विभक्ति आती है, सु की उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'अनङ् सौ'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८१. सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२॥

सख्युरङ्गात् परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्।

८२. अचो ञ्णिति ।२।११५॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः ञिति णिति परे। सखायौ। सखायः हे सखे। खायम। सखायौ। सखीन। सख्या। सख्ये।

से 'सखि' शब्द की उकार को 'अनङ्' आदेश हो जाता है, सखन्+स् स्थिति में 'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा' सूत्र से न् से पूर्व वर्ण खकार की ार की उपधा संज्ञा हो जाती है। 'सर्वनाम स्थानेचासम्बुद्धौ' सूत्र के खकार अकार को दीर्घ 'आ' हो जाती है, सखान्+ल् इस स्थिति में 'अपृक्त-ाल् प्रत्ययः' सूत्र से स् की अपृक्त संज्ञा हो जाती है, 'हल्ङ्यावम्यो॰ ीत् सुतिम्यपृक्तं हल्' सूत्र से अपृक्त हल् का लोप प्राप्त होता है, लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र की सहायता से सु की स् का लोप हो जाता जिससे 'सखा' यह रूप निष्पन्न होता है।

सख्युरसम्बुद्धौ--सखि शब्द के अंग से परे सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान क विभक्तियाँ णित् वत् होती हैं, अर्थात् सखि शब्द से परे सम्बोधन की को छोड़कर अन्य पांच विभक्तियाँ णित् वत् होती हैं अर्थात् जिसमें ण इत्संज्ञा होती है, वे णित् कहलाती हैं, णित् होने पर वृद्धि हो जाती है, वृद्धि सर्वनाम स्थान संज्ञक विभक्तियों के परे भी होवें, सम्बोधन की सु छोड़कर। जैसे—सखायौ, सखायः।

अचोञ्णित—अजन्त अङ्ग के स्थान में ञित् णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि ोती है। जैसे—

सखायौ—प्रातिपदिक संज्ञक सखि शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन औ विभक्ति आती है। 'सख्युरसम्बुद्धौ' सूत्र से 'औ' को णिद् वत् मान या जाता है, जिससे 'औ' को णित मानकर 'अचोञ्णिति' सूत्र से सखि इकार को 'ऐ' वृद्धि हो जाती है, सखै+औ इस स्थिति में 'एचोऽय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८३. ख्यत्यात् परस्य ६।१।१।११३॥

खि ति शब्दाभ्यां खी ती शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसो रत उः। सख्युः।

१८४. औत् ७।३।१६८॥

इदुतोः परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

वायाव:' सूत्र से 'ऐ' को आय् आदेश होता है, जिससे 'सखायौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

सखायः—इसी प्रकार सखि शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति में णिद्वद्भाव आदि हो जाते हैं, जिससे 'सखायः' बनता है।

सख्या—प्रातिपदिक संज्ञक सखि शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है, 'चुटू' सूत्र से टा की टकार की इत्संज्ञा होती है, और 'तस्य लोपः' सूत्र से टकार का लोप हो जाता है। 'इकोयणचि' सूत्र से इ को यण् हो जाता है, जिससे 'सख्या' बनता है। यहां ह्रस्व इकारान्त सखि शब्द में खि संज्ञा की शका करके टा को ना क्यों नहीं होता है ? यह शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि घिसंज्ञा सखि शब को छोड़कर होती है। अत· ऐसी शंका यहां नहीं की जा सकती है।

सख्ये—इसी प्रकार चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आने पर ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, और 'इकोयणचि' सूत्र से इकार को यण् य् हो जाता है, जिससे 'सख्ये' निष्पन्न होता है।

ख्यत्यात्परस्य—किया गया है, यण् जिनसे ऐसे ह्रस्वान्त खि और ति शब्द से तथा दीर्घान्त खी और ती शब्दों से परे ङसि और ङस् विभक्तियों की अकार को उकार आदेश होता है। जैसे—

सख्युः—प्रातिपदिक संज्ञक सखि शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि एवं ङस् विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। 'इकोयणचि' सूत्र से इ को यण् य् होता है, सख् य् + अस् इस स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८५. पतिः समास एव १।४।८॥

घि संज्ञा । पत्या । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ । शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतये । कति शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ।

में 'ख्यत्यात्परस्य' सूत्र से ङसि ङस् की अ को उकार आदेश हो जाता है, और स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'सख्युः' यह रूप बनता है ।

औत्—इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों से परे ङि विभक्ति को औत् आदेश होता है । जैसे—

सख्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक सखि शब्द से सप्तमी एकवचन में 'ङि' विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, सखि+इ इस स्थिति में 'औत्' इस सूत्र से ङि की इ को औत् आदेश होता है, और 'इकोयणचि' सूत्र से सखि शब्द की इकार को यण् 'य्' हो जाता है, जिससे 'सख्यौ' यह रूप बनता है ।

शेष सखि शब्द के रूपों की सिद्धि हरि शब्द के समान होती है ।

(सखि शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायाम्	,,	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	,,	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	,,	,,
षष्ठी	,,	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	,,	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे ।	हे सखायौ ।	हे सखायः ।

पतिः समास एव—पति शब्द की समास में ही घि संज्ञा होती है, अर्थात् पति शब्द की किसी अन्य शब्द के साथ समास होने पर घिसंज्ञा होती है, अन्यथा नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्या—पति शब्द से तृतीया एकवचन टा विभक्ति आती है, 'चुटू' सूत्र से टकार की इत्संज्ञा होती है, 'तस्य लोपः' सूत्र से टकार का लोप हो जाता है, पति+आ इस स्थिति में यण् य् हो जाता है, जिससे 'पत्या' यह रूप निष्पन्न होता है। यहां ह्रस्व इकारान्त पति शब्द की 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से घिसंज्ञा प्राप्त होती है, उसका 'पतिः समास एव' सूत्र से निषेध हो जाता है।

पत्युः—प्रातिपदिक संज्ञक पति शब्द से पञ्चमी एवं षष्ठी एकवचन में ङसि, ङस् विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, अस् शेष रहता है, 'इकोणचि' सूत्र से यण् य् होता है। पत् य्+अस् इस स्थिति में 'ख्यत्यात्परस्य' सूत्र से 'अ' को उ हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'पत्युः' रूप निष्पन्न होता है। यहां घि संज्ञा नहीं होती है क्योंकि पति शब्द की घिसंज्ञा केवल समास में ही होती है, अर्थात् जब पति शब्द का किसी अन्य शब्द के साथ हो तभी पति शब्द की घिसंज्ञा होती है, जैसे भुवः पतिः=भूपतिः, तस्मै 'भूपतये' यहां घिसंज्ञा हो जाती है, क्योंकि पनि शब्द का भू शब्द के साथ समास हो चुका है।

पत्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक पति शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है, पति+इ इस स्थिति में 'औत्' सूत्र से 'इ' को 'औ' हो जाता है, 'इकोयणचि' सूत्र से पति की इकार को यण् य् हो जाता है, जिससे 'पत्यौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

पति शब्द के शेष अन्य रूप हरि के समान होते हैं। समास में भूपति शब्द की घिसंज्ञा होने से 'भूपतये' बनता है।

भूपतये—भुवः पतिः=भूपतिः तस्मै भूपतये–प्रातिपदिक संज्ञक भूपति शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'पतिः समास एव' सूत्र के अनुसार भूपति शब्द की 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से 'घ' संज्ञा हो जाती है, जिससे 'घेर्ङिति' सूत्र से ति की इकार को ए गुण हो जाता है, भूपते+ए इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अय् आदेश हो जाता है। इस प्रकार भूपतये रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८६. बहुगणवतुडति संख्या १।१।२३॥

बहुगणशब्दा वतुडत्वन्ताश्च संख्या संज्ञकाः स्युः।

८७. डति च १।१।२५॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात्।

(इकारान्त 'पति' शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	,,	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	,,	,,
षष्ठी	,,	पत्यो	पतिनाम्
सप्तमी	पत्यौ	,,	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	हे पती	हे पतयः

(भूपति शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
द्वितीया	भूपतिम्	,,	भूपतीन्
तृतीया	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
चतुर्थी	भूपतये	,,	भूपतिभ्यः
पञ्चमी	भूपतेः	,	,,
षष्ठी	,,	भूपत्योः	भूपतीनाम्
सप्तमी	भूपतौ	,,	भूपतिषु
सम्बोधन	हे भूपते !	हे भूपती !	हे भूपतयः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८८. षड्भ्यो लुक् ७।१।२२॥

जश्शसोः ।

१८९. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६ ।

लुक् श्लु लुप् शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात् तत्तत् संज्ञं स्यात् ।

१९०. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२॥

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात् । इति 'जसि च' इति गुणे प्राप्ते—

१९१. न लुमताङ्गस्य १।१।६३॥

लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति २, कतिभिः, कतिभ्यः २, कतीनाम्, कतिषु ।

युष्मदस्मद् षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपा ।

कतिशब्दो नित्यम्—कति शब्द नित्य बहुवचन है, अर्थात् कति शब्द के केवल बहुवचन में ही रूप चलते हैं।

बहुगणवतुडति संख्या—बहु तथा कण शब्द, वतु प्रत्ययान्त यावत् तावत् आदि शब्द तथा डति प्रत्ययान्त 'कति' शब्द की संज्ञा होती है।

डति च—डति प्रत्यय हैं, अन्त में जिस शब्द के उस संख्यावाची शब्द की षट् संज्ञा होती है।

षड्भ्यो लुक्—षट् संज्ञक शब्दों से परे जस् और शस् विभक्ति का लोप हो जाता है।

प्रत्ययस्यलुक्श्लुलुपः—लुक्, श्लु, लुप् इन शब्दों के नाम से किया गया प्रत्यय का अर्थात् (जस् शस् विभक्ति का) अदर्शन (लोप) की क्रम से लुक्, श्लु, लुप् संज्ञा होती है।

प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम्—प्रत्यय (विभक्ति) के लोप होने पर भी उसको मानकर होने वाले कार्य होते हैं, इसलिये कति शब्द से जस् शस् के लुक् होने पर भी 'जसि च' सूत्र से गुण प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न लुमताङ्गस्य —लुमता अर्थात्, लुक्, श्लु और लुप् शब्दों से यदि प्रत्यय ा विभक्त का लोप हुआ हो तो उसको निमित्त मानकर होने वाला अंग न हो। जैसे— .

कति—डति प्रत्ययान्त नित्य बहुवचनान्त प्रातिपदिक संज्ञक कति से प्रथमा द्वितीया बहुवचन में जस् और शस् विभक्ति आती है। 'बहुगणवतुडति-' सूत्र से कति शब्द की संख्या संज्ञा होती है। 'डति च' सूत्र से षट् होती है। फिर 'षड्भ्यो लुक्' सूत्र से जस् और शस् का लोप हो ा है और 'प्रत्ययस्य लुक् श्लु लुपः' सूत्र से लोप की लुक् संज्ञा होती है। य लोपे प्रत्यय लक्षणम्' सूत्र से प्रत्यय अर्थात् जस् जश् विभक्ति के हो जाने पर भी जस्, शस् को मानकर होने वाला कार्य हो जाय। िये 'जसि च' सूत्र से इकार को गुण प्राप्त होता है परन्तु 'न लुमता-' सूत्र से लुक्, श्लु, लुप् को मानकर होने वाला कार्य उसको निमित्त कर अलग कार्य नहीं होता है। इसलिये गुण नहीं होता है। इस प्रकार ि' यह रूप निष्पन्न होता है।

कतिभिः—प्रातिपदिक संज्ञक डति प्रत्ययान्त नित्य बहुवचनान्त कति शब्द ीया एकवचन में 'भिस्' विभक्ति आती है। भिस् की सकार को रुत्व र्ग हो जाता है जिससे 'कतिभिः' यह रूप निष्पन्न होता है।

कतिभ्यः—प्रातिपदिक संज्ञक कति शब्द से चतुर्थी, पञ्चमी, बहुवचन में ् विभक्ति आती है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'कतिभ्यः' रूप बनता है।

कतीनाम्—प्रातिपदिक संज्ञक डति प्रत्ययान्त नित्य बहुवचनान्त 'कति' से षष्ठी बहुवचन में 'आम्' विभक्ति आती है। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र ट् का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। मि' सूत्र से कति की इकार को दीर्घ ई हो जाता है जिससे 'कतीनाम्' रूप निष्पन्न होता है।

कतिषु—नित्य बहुवचनान्त प्रातिपदिक सं क 'कति' शब्द से सप्तमी चन में सुप् विभक्ति आती है। प् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २

१९२. त्रेस्त्रयः ७।१।५३॥

त्रि शब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिपु । गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम् ।

'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से 'सु' की स को षत्व (ष) हो जाता है जिससे 'कतिषु' यह रूप बनता है ।

युष्मदस्मद्०—युष्मद्, अस्मद् और षट् संज्ञक इन तीनों शब्दों के रूप तीनों लिंगों में एक समान होते हैं । जैसे—कति पुरुषाः, कति स्त्रियः, कति पुस्तकानि इत्यादि में 'कति' ही सभी लिंगों में बनता है ।

त्रिशब्दो नित्यम्०—त्रि शब्द (तीन का वाचक) नित्य बहुवचनान्त होता है । जैसे—

त्रयः—प्रातिपदिक संज्ञक संख्यावाचक त्रि शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आती है । 'चुट्' सूत्र से ज् की इत्संज्ञा होती है । 'तस्यलोपः' सूत्र से ज् का लोप हो जाता है । त्रि + अस् इस स्थिति में 'जसि च' सूत्र से त्रि शब्द की इकार को 'ए' गुण होता है जिससे 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'ए' को अयादेश हो जाता है और स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है । इस प्रकार 'त्रयः' यह रूप निष्पन्न होता है ।

त्रीन्—प्रातिपदिक संज्ञक संख्यावाचक नित्य बहुवचनान्त त्रि शब्द से द्वितीया बहुवचन में 'शस्' विभक्ति आती है । 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शस् की श की इत्संज्ञा हो जाती है और 'तस्यलोपः' सूत्र से श् का लोप हो जाता है । 'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः' सूत्र से पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश हो जाता है । 'त्रीस्' इस स्थिति में 'तस्माच्छसो नः पुंसि' सूत्र से स् को न् हो जाता है जिससे 'त्रीन्' यह रूप निष्पन्न होता है ।

त्रिभिः—त्रि + भिस् → स् को रुत्व विसर्ग तृतीया बहुवचन में 'त्रिभिः' रूप बनता है ।

त्रिभ्यः—त्रि शब्द से चतुर्थी, पञ्चमी बहुवचन में भ्यस् विभक्ति आती है । स् को रुत्व विसर्ग होकर 'त्रिभ्यः' रूप निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेस्त्रय:—त्रि शब्द के स्थान में त्रय आदेश होवे, आम् विभक्ति परे होने जैसे—

त्रयाणाम्—नित्य बहुवचनान्त संख्यावाचक प्रातिपदिक संज्ञक त्रि शब्द से बहुवचन में आम् विभक्ति आती है। 'त्रेस्त्रय:' सूत्र से त्रि शब्द के स्थान आदेश हो जाता है। त्रय+आम् इस स्थिति में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। सूत्र से दीर्घ हो जाता है। 'अट् कुप्वाङ्‌नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न त्व (ण) हो जाता है जिससे 'त्रयाणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

त्रिषु—प्रातिपदिक संज्ञक संख्यावाचक नित्य बहुवचनान्त त्रि शब्द से बहुवचन में सुप् विभक्ति आती है, प् की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाता आदेश प्रत्ययो:' सूत्र से सु की स् को षत्व (ष्) हो जाता है जिससे 'त्रिषु' रूप निष्पन्न होता है।

प्रियत्रयाणाम्—प्रिया: तिस्र: यस्य स: 'प्रियत्रि:' यहां समास में त्रि शब्द (अप्रधान) हो गया है तथापि षष्ठी बहुवचन आम् विभक्ति आने पर य:' सूत्र से त्रि को त्रय आदेश हो जाता है जिससे 'प्रियत्रय+आम्' स्थिति में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम उट् की इत्संज्ञा लोप हो जाता है। न को 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से णत्व हो जाता है 'नामि' से दीर्घ हो जाता है जिससे 'प्रियत्रयाणाम्' निष्पन्न है।

नित्य बहुवचनान्त कति शब्द के रूप		नित्य बहुवचनान्त त्रि शब्द के रूप	
विभक्ति	बहुवचन	विभक्ति	बहुवचन
प्रथमा	कति	प्रथमा	त्रय:
द्वितीया	कति	द्वितीया	त्रीन्
तृतीया	कतिभि:	तृतीया	त्रिभि:
चतुर्थी	कतिभ्य:	चतुर्थी	त्रिभ्य:
पञ्चमी	कतिभ्य:	पञ्चमी	त्रिभ्य:
षष्ठी	कतीनाम्	षष्ठी	त्रयाणाम्
सप्तमी	कतिषु	सप्तमी	त्रिषु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३. त्यदादीनामः ७।२।१२०॥

एषामकारो विभक्तौ। द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः। द्वौ २। द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। पाति लोकमिति पपीः सूर्यः। दीर्घाज्जसि च - पप्यौ २ पप्यः। हे पपीः। पपीम्। पपीन्। पप्या। पपीभ्याम् ३। पपीभिः पप्ये। पपीभ्यः २। पप्यः २। पप्योः। दीर्घत्वान्न नुट् - पप्याम्। ङौ तु सवर्णे दीर्घः—पपी। पप्योः। पपीषु। एवं वातप्रम्यादयः।

प्रियत्रि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रियत्रिः	प्रियत्री	प्रियत्रयः
द्वितीया	प्रियत्रितम्	प्रियत्री	प्रियत्रीन्
तृतीया	प्रियत्रये	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभिः
चतुर्थी	प्रियत्रिणा	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभ्यः
पञ्चमी	प्रियत्रेः	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभ्यः
षष्ठी	प्रियत्रेः	प्रियत्र्योः	प्रियत्रयाणाम्
सप्तमी	प्रियत्रौ	प्रियत्र्योः	प्रियत्रिषु
सम्बोधन	हे प्रियत्रे !	हे प्रियत्री !	हे प्रियत्रयः !

त्यदादीनामः—त्यदादि गण में पठित शब्दों के अंग को अकार आदेश होता है, विभक्ति परे होने पर विभक्ति कार्यों से पहले अकार का आदेश होता है और यह अकारादेश रूप कार्य द्वि शब्द पर्यन्त ही होता है अर्थात् त्यद्, तद्, य , एतद्, इदम् अदम्, एक तथा द्वि बस केवल इन आठ शब्दों के अंग को ही अकारादेश होता है। अन्य युष्मद्, अस्मद् भवतु तथा किम् शब्दों को अकार आदेश नहीं होता है।

द्वौ – प्रातिपदिक संज्ञक संख्यावाचक द्वि शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती है 'त्यदादीनामः' सूत्र के द्वि की इकार को अकारादेश हो जाता है। द्व + औ इस दशा में 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि होकर 'द्वौ' निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वाभ्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक संख्यावाचक द्वि शब्द से भ्याम् विभक्ति आतो 'त्यदादीनामः' सूत्र से द्वि की इकार को अकार आदेश हो जाता है, 'सुपि' सूत्र से दीर्घ होने पर द्वाभ्यां यह रूप निष्पन्न होता है।

द्वयोः—प्रातिपदिक संज्ञक द्वि शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी द्विवचन में ओस् विभक्ति आती है। 'त्यदादीनामः' सूत्र से इकार को अकार का आदेश होता है, 'ओसि च' सूत्र से द्व के अकार को एकार आदेश होता है, 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अयादेश होने पर द्व् अय् ओस् इस दशा में स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'द्वयोः' यह रूप निष्पन्न होता है।

द्वि शब्द के रूप

विभक्ति	द्विवचन
प्रथमा	द्वौ
द्वितीया	द्वौ
तृतीया	द्वाभ्याम्
चतुर्थी	द्वाभ्याम्
पञ्चमी	द्वाभ्याम्
षष्ठी	द्वयोः
सप्तमी	द्वयोः

पपीः—पाति लोकम् इति पपीः (सूर्यः) प्रातिपदिक संज्ञक पपी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'पपीः' यह रूप निष्पन्न होता है।

पप्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक पपी शब्द से शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सूत्र से दीर्घ एकादेश प्राप्त होता है परन्तु 'दीर्घाज्जसि च' सूत्र से दीर्घ का निषेध हो जाता है, फिर 'इकोयणचि' सूत्र से ईकार को यण य् हो जाता है जिससे 'पप्यौ' यह रूप बनता है।

इसी प्रकार पप्यः, पप्या, पप्ये, पप्यः २, पप्योः पप्याम् आदि में क्रमशः जस्, टा, ङे, ङसि ङस्, ओस् आम् विभक्तियों के आने पर यण् हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पप्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक पपी शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है। यहां दीर्घ होने के कारण 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम नहीं होता है। अतः 'इकोयणचि' सूत्र से यण् होकर 'पप्याम्' बनता है।

पपी—प्रातिपदिक संज्ञक पपी शब्द से सप्तमी एकवचन ङि विभक्ति आने पर ङकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'पपी' रूप निष्पन्न होता है।

ईकारान्त पपी शब्द के रूप (पपी=सूर्य)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पपीः	पप्यौ	पप्यः
द्वितीया	पपीम्	पप्यौ	पपीन्
तृतीया	पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः
चतुर्थी	पप्ये	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
पञ्चमी	पप्यः	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
षष्ठी	पप्यः	पप्योः	पप्याम्
सप्तमी	पपी	पप्योः	पपीषु
सम्बोधन	हे पपीः !	हे पप्यौ !	हे पप्यः !

वातप्रमी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वातप्रमीः	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
द्वितीया	वातप्रमीम्	वातप्रम्यौ	वातप्रमीन्
तृतीया	वातप्रम्या	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभिः
चतुर्थी	वातप्रम्ये	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
पञ्चमी	वातप्रम्यः	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
षष्ठी	वातप्रम्यः	वातप्रम्योः	वातप्रम्याम्
सप्तमी	वातप्रमी	वातप्रम्योः	वातप्रमीषु
सम्बोधन	हे वातप्रमीः !	हे वातप्रम्यौ !	हे वातप्रम्यः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बह्वयः श्रेयस्यो यस्य सः = बहुश्रेयसी ।

नदी संज्ञाविधि-सूत्रम्

१९४. यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदी संज्ञौ स्तः ।

(वा०) प्रथम लिंग ग्रहणं च ।

पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ।

१९५. अम्बार्थ नद्यो र्ह्रस्वः ७।३।१०७॥

सम्बुद्धा । हे बहुश्रेयसि ।

बहुश्रेयसि—बह्वयः श्रेयस्यः यस्य सः इस विग्रह के अनुसार बहुश्रेयसी शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। सु के उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल' सूत्र से स् का लोप हो जाता है जिससे 'बहुश्रेयसी' यह रूप निष्पन्न होता है ।

यूस्त्राख्यौ नदी—ईकारान्त तथा ऊकारान्त जो नित्य स्त्रीलिंग शब्द है उनकी नदी संज्ञा होती है ।

प्रथम लिंगग्रहणं च—इसका आशय यह है कि यदि कोई शब्द पहले किसी अन्य लिंग का था परन्तु समास आदि के कारण वह शब्द किसी अन्य लिंग का वाचक हो जाता है तो पूर्व का लिंग गौण हो जाता है तो ऐसी स्थिति में प्रथम अर्थात् पूर्व लिंग के अनुसार नदी संज्ञा आदि कार्य होते हैं। जैसे—पहले 'श्रेयसी' शब्द नित्य स्त्रीलिंग का वाचक था परन्तु बहुब्रीहि समास में स्त्रीत्व गौण होकर पुल्लिग का वाचक हो गया तो ऐसी स्थिति में पूर्व लिंग अर्थात् स्त्रीलिंग मानकर नदी संज्ञा होती है ।

'अम्बार्थ नद्योर्ह्रस्वः' अम्बावाचक शब्दों का तथा नदी संज्ञक शब्दों के अंग को ह्रस्व होता है, सम्बुद्धि संज्ञक सु विभक्ति परे होने पर। जैसे—

हे बहुश्रेयसि—बह्वयः श्रेयस्यः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ हे बहुश्रेयसि—प्रातिपदिक संज्ञक बहुश्रेयसी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से, सु की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। 'प्रथमलिंग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६. आण् नद्याः ७।३।११२॥

नद्यन्तात् परेषां ङितामाडागमः।

१९७. आटश्च ६।१।९०॥

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः। नद्यन्तत्वान्नुट्—बहुश्रेयसीनाम्।

१९८. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६॥

नद्यन्ताद् आबन्ताद् नीशब्दात् परस्य ङेराम्। बहुश्रेयस्याम्। शेषं पपीवत्।

ग्रहणं च' इस वार्तिक के अनुसार 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा हो जाती है जिससे 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से सकारोत्तरवर्ती ईकार को ह्रस्व इकार हो जाती है 'बहुश्रेयसि+स्' इस स्थिति में 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से सु का लोप हो जाता है जिससे 'बहुश्रेयसि' रूप निष्पन्न होता है।

आण्नद्याः—नदी सञ्ज्ञक शब्दों के अन्त से आगे ङित विभक्तियों के परे अर्थात् टा, ङे, ङसि ङस, ङि विभक्तियों के परे 'आट्' का आगम होता है।

आटश्च—आट् से अच् (स्वर) अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ के परे होने पर वृद्धि एकादेश होता है।

बहुश्रेयस्यै—प्रातिपदिक संज्ञक बहुश्रेयसी शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे तिभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप होता है 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा होती है, 'आण्नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है। 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि हो जाती है, इकोयणचि' सूत्र से ईकार को यण् य् हो जाता है, जिससे 'बहुश्रेयस्यै' यह रूप निष्पन्न होता है।

बहुश्रेयस्याः—इसी प्रकार बहुश्रेयसी शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि ङस् विभक्ति आती है, 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा होती है। 'आण्नद्याः' सूत्र से आट् का आगम होता है, और 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि एकादेश हो जाता है। ङस् की स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'बहुश्रेयस्याः' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुश्रेयसीनाम्—प्रातिपदिक संज्ञक बहुश्रेयसी शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है, "यूस्त्राख्यौ नदी" सूत्र से नदी संज्ञा हो जाती है. "ह्रस्व नद्यापो नुट्" सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है, उट् का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, जिससे 'बहुश्रेयसीनाम्' निष्पन्न होता है।

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः—नद्यन्त, आवन्त, नी शब्द से परे ङि विभक्ति के स्थान पर 'आम्' आदेश होता है। जैसे—

बहुश्रेयस्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक बहुश्रेयसी शब्द से सप्तमी एकवचन में 'ङि' विभक्ति आती है। 'यूस्त्राख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा होती है, 'ङे राम्नद्यानीभ्यः' सूत्र से ङि के स्थान पर आम् आदेश होता है। 'बहुश्रेयसी + आम्' इस स्थिति में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम प्राप्त होता है, और 'आण्नद्याः' सूत्र से आट् का आगम प्राप्त होता है, 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' तुल्यवल विरोध में पर कार्य होता है, अतः पर सूत्र 'आण् नद्याः' से आट् का आगम हो जाता है, 'आटश्च' से वृद्धि हो जाती है, बहुश्रेयसी + आम् इस स्थिति में पुनः नुट् का आगम प्राप्त होता है, परन्तु 'सकृद्गती विप्रतिषेधे यद् वाधितं तद्वाधितमेव' अर्थात् जिसका एक बार वाध हो जाता है, वह कार्य फिर नहीं होता है। इसलिये नुट् नहीं होता है। इस प्रकार 'बहुश्रेयस्याम्' रूप निष्पन्न होता है।

बहुश्रेयसी शब्द के शेष रूप पपी शब्द के समान होते हैं।

(बहुश्रेयसी के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचयु
प्रथमा	बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयस्यः
द्वितीया	बहुश्रेयसीम्	"	बहुश्रेयसीन्
तृतीया	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभिः
चतुर्थी	बहुश्रेयस्यै	"	बहुश्रेयसीभ्यः
पञ्चमी	बहुश्रेयस्याः	"	"
षष्ठी	"	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीनाम्
सप्तमी	बहुश्रेयस्याम्	"	बहुश्रेयसीषु
सम्बोधन	हे बहुश्रेयसि !	हे बहुश्रेयस्यौ !	हे बहुश्रेयस्यः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्यन्तत्वाद् न सुलोपः—अतिलक्ष्मीः शेषं बहुश्रेयसीवत् ।

प्रधीः ।

१९९. अचिश्नु धातु भ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७॥

श्नु प्रत्ययान्तस्य, इवर्णोवर्णान्तस्य च धातोः, भ्रू इत्यस्य च, अगस्य इयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते

अङ्यन्तत्वाद्—अङ्यन्त अर्थात् ङीप् प्रत्यय से भिन्न ईकारान्त शब्द होने से 'अतिलक्ष्मीः' में सु विभक्ति का लोप नहीं होता है । जैसे—

अति लक्ष्मीः— लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः इति अतिलक्ष्मीः प्रातिपदिक संज्ञक अतिलक्ष्मी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आता है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, सकार को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे 'अतिलक्ष्मीः' निष्पन्न होता है । यहां लक्ष्मी शब्द ङीप् प्रत्ययान्त न होने से 'हल्ङ्यब्भयो हल्' सूत्र से सु की स् का लोप नहीं होता है ।

लक्ष् धातु से उणादि ई प्रत्यय और मुट् का आगम हो जाता है, जिससे लक्ष्मी शब्द बनता है, यहां लक्ष्मी शब्द ङीप् प्रत्ययान्त नहीं है, अतः सु लोप नहीं होता है ।

(अतिलक्ष्मी शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिलक्ष्मीः	अतिलक्ष्म्यौ	अतिलक्ष्म्यः
द्वितीया	अतिलक्ष्मीम्	,,	अतिलक्ष्मीन्
तृतीया	अतिलक्ष्म्या	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभिः
चतुर्थी	अतिलक्ष्म्यै	,,	अतिलक्ष्मीभ्यः
पञ्चमी	अतिलक्ष्म्याः	,,	,,
षष्ठी	,,	अतिलक्ष्म्योः	अतिलक्ष्मीनाम्
सप्तमी	अतिलक्ष्म्याम्	,,	अतिलक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे अतिलक्ष्मि !	हे अतिलक्ष्म्यौ !	हे अतिलक्ष्म्यः !

इसी प्रकार अवी (भेड़) तन्त्री (वीणा) तरी (नौका) धी (बुद्धि) ह्री (लज्जा) श्री (लक्ष्मी) आदि शब्दों की ईकार ङीप् प्रत्यय की नहीं है, अतः इन शब्दों में प्रथमा एकवचन सु विभक्ति आने पर लोप नहीं होता है, रुत्व विसर्ग हो जाता है । इन सबके रूप अतिलक्ष्मी के समान होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२००.एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य ६।४।८२॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णः, तदन्तो यो धातुः, तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये।

प्रध्यौ। प्रध्यम्। प्रध्यः। प्रध्यि शेषं पपीवत्।

प्रधीः—प्रकृष्ठा धीः यस्य सः इति प्रधीः प्रातिपदिक संज्ञक प्रधी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, और स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है, जिससे प्रधीः रूप निष्पन्न होता है। यहां प्रधी शब्द की ईकार ङीप् प्रत्यय की नहीं है, अतः हल् ङ्याप् इत्यादि सूत्र से सु की स् लोप नहीं होता है।

अचिश्नु धातु भ्रु वां०—अजादि प्रत्ययों (विभक्तियों) के परे सु प्रत्ययान्त, ईकारान्त, अकारान्त शब्दों के तथा भ्रू धातु के अङ्ग के स्थान में इयङ्, उवङ् आदेश होता है। इस सूत्र से इयङ् आदेश प्राप्त होता है।

एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य—जो इवर्ण धातु का अवयव पूर्व में नहीं है, ऐसा वर्ण जिस धातु के अन्त में है, ऐसी धातु जिसके अन्त में है ऐसा अनेक अङ्ग उसको यण् हो अजादि प्रत्यय (विभक्ति) परे रहते। जैसे—

प्रध्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक प्रधी शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में औ विभक्ति आती है, प्रधी + औ इस स्थिति में 'अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ' सूत्र से ईकार को इयङ् आदेश प्राप्त होता है। उसको बाधकर 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से ईकार को यण् 'य्' हो जाता है, जिससे 'प्रध्यौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य अजादि विभक्तियों के परे यण् होता है, जिससे प्रधी + अम् = प्रध्यम्, प्रधी + जस् → अस् = प्रध्यः, प्रधी + टा → आ = प्रध्या, प्रधी + ङे → ए = प्रध्ये, प्रधी + ङसि → अस् = प्रध्यः, प्रधी + ङस् → अस् = प्रध्यः, प्रधी + ओस् = प्रध्योः, प्रधी + आम् = प्रध्याम्, प्रधी + ङि → इ = प्रध्यि रूप बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं ग्रामणीः । ङौ तु ग्रामण्याम् ।

अनेकाचः किम्—नीः नियौ नियः । अमि शसि च परत्वादियङ्—नियम् नियः । ङेराम्-नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम्-सुश्रियो, यवक्रियौ ।

(प्रधी शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वितीया	प्रध्यम्	,,	प्रधीन्
तृतीया	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
चतुर्थी	प्रध्ये	,,	प्रधीभ्यः
पञ्चमी	प्रध्यः	,,	,,
षष्ठी	,,	प्रध्योः	प्रधीनाम्
सप्तमी	प्रध्यि	,,	प्रधीषु
सम्बोधन	हे प्रधीः !	हे प्रध्यौ !	हे प्रध्यः !

एवं ग्रामणीः—इसी प्रकार (प्रधीः के समान) ग्रामणी शब्द के रूप निष्पन्न होते हैं, परन्तु सप्तमी एकवचन ङि विभक्ति में 'ग्रामण्याम' बनेगा। क्योंकि—

ग्रामण्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक ग्रामणी शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' सूत्र से आवन्त, नद्यन्त, तथा नी शब्द से ङि विभक्ति परे होने पर ङि को आम् आदेश होता है, ग्रामणी + आम् इस स्थिति में 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से ईकार को यण् य् हो जाता है, जिससे 'ग्रामण्याम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

अनेकाचः किम्—'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र में अनेकाच् शब्द का पाठ क्यों किया गया है ? इसका समाधान यह है कि यदि अनेकाच् का पाठ न करते तो एकाच् नी शब्द से और विभक्ति आने पर भी यण् हो जाता जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्ट नहीं है। यदि सूत्र में अनेकाच न पढ़ते तो 'अनिष्ट' रूपापत्ति हो जाती, उसके वारणार्थ ही अनेकाच् का पाठ किया है, जो उचित ही है। अन्यथा निया' नियः, नियः, नियाम् आदि में इयङ् न होता है, और अनिष्टापत्ति हो जाती है। अतः अनेकाच् पाठ किया है।

नी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नीः	नियौ	नियः
द्वितीया	नियम्	"	"
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभिः
चतुर्थी	निये	"	नीभ्यः
पञ्चमी	नियः	"	"
षष्ठी	"	नियोः	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	"	नीषु
सम्बोधन	हे नि !	हे नियौ !	हे नियः !

असंयोगपूर्वस्यकिम्—'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' सूत्र में असंयोग पूर्व धातु से इवर्ण के स्थान में यण् कहा है। अतः जहां संयोगपूर्व इवर्ण होगा वहां यण् नहीं होगा इसीलिये असंयोग का पाठ किया है। यदि असंयोग का पाठ न करते तो सुश्रियौ, यवक्रियौ आदि में संयोगपूर्व इवर्ण के स्थान में भी यण् हो जाता जो इष्ट नहीं है। अतः सुश्रियौ आदि रूपों में यण् निषेध के लिये 'असंयोग पूर्व' का पाठ किया गया है जो उचित ही है।

सुश्रियौ—शोभना श्रीः यस्य सः सुश्रीः तौ सुश्रियौ—प्रातिपदिक संज्ञक सुश्री शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र में असंयोग इवर्ण के स्थान में यण का विधान किया गया है परन्तु यहां असंयोग इवर्ण नहीं है अपितु 'संयोग' से इवर्ण है। अतः इससे यण् नहीं होता है 'अचिश्नुधातुभ्रुवांय्योरियङुवङौ' सूत्रसे इयङादेश हो जाता है, इयङ् के ङकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है 'सुश्र् इय+औ' वृद्धिरेचि से वृद्धि होकर 'सुश्रियौ' रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार यवक्री शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन औ विभक्ति में इयङ् होकर यवक्रियौ वनता है।

ग्रामणी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्रामणीः	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
द्वितीया	ग्रामणीम्	"	"
तृतीया	ग्रामण्या	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभिः
चतुर्थी	ग्रामण्ये	"	ग्रामणीभ्यः
पञ्चमी	ग्रामण्यः	"	"
षष्ठी	"	ग्रामण्योः	ग्रामण्याम्
सप्तमी	ग्रामण्याम्	"	ग्रामणीषु
सम्बोधन	हे ग्रामणीः !	हे ग्रामण्यौ !	हे ग्रामण्यः

सुश्री शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुश्रीः	सुश्रियौ	सुश्रियः
द्वितीया	सुश्रियम्	"	"
तृतीया	सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्राभिः
चतुर्थी	सुश्रिये	"	सुश्रीभ्यः
पञ्चमी	सुश्रियः	"	"
षष्ठी	"	सुश्रियो	सुश्रियाम्
सप्तमी	सुश्रियि	"	सुश्रीषु
सम्बोधन	हे सुश्रीः !	हे सुश्रियौ !	हे सुश्रियः !

सुश्री शब्द के सामने ही यवक्री शब्द के रूप करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०१. गतिश्च १।४।६०।।

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः।

गतिकारकेतर पूर्वपदस्य यण् नेष्यते--शुद्धधियौ।

०२. न भूसुधियोः ६।४।८५।।

एतयोरचि सुपि यण् न सुधियौ। सुधियः इत्यादि।

सुखमिच्छतीति सुखी, सुतमिच्छतीति सुतीः। सुख्यौ, सुत्यौ। ख्युः, सुत्युः शेषं प्रधीवत्।

गतिश्च—क्रिया के योग में प्रादिकों की अर्थात् प्र, परा, अप, सम, अनु, आदि की गति संज्ञा होती है।

गतिकारकेतर—गति संज्ञक और कारक से भिन्न यदि पूर्वपद हो तो यण् नहीं होता है अर्थात् ऐसे स्थलों पर यण् इष्ट नहीं है। जैसे—

शुद्धधियौ—शुद्धधी शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'औ' विभक्ति आती 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से यण् प्राप्त होता है, परन्तु यह 'शुद्धधी' तो गति संज्ञक है और न कारक है। अतः ऐसे स्थलों में यण् इष्ट नहीं। इस प्रकार यण् का निषेध हो जाता है और 'अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ' सूत्र से इयङादेश हो जाता है। ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'शुद्धधियौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

शुद्धधी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शुद्धधीः	शुद्धधियौ	शुद्धधियः
द्वितीया	शुद्धधियम्	,,	,,
तृतीया	शुद्धधिया	शुद्धधीभ्याम्	शुद्धधीभिः
चतुर्थी	शुद्धधिये	,,	शुद्धधीभ्यः
पञ्चमी	शुद्धधियः	,,	,,
षष्ठी	,,	शुद्धधियोः	शुद्धधियाम्
सप्तमी	शुद्धधियि	,,	शुद्धधीषु
सम्बोधन	हे शुद्धधीः !	हे शुद्धधियौ !	हे शुद्धधियः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न भू सुधियो:—भू और सुधी शब्द को अच् (स्वर) परे रहते यण नहीं होता है, जैसे—

सुधियौ—प्रातिपदिक संज्ञब सुधो शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से यण् प्राप्त होता है, परन्तु 'नभूसूधियो:' सूत्र से यण का निषेध हो जाता है, फिर 'अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ' सूत्र से इयङादेश हो जाता है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'सुधियौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

(सुधी शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधी:	सुधियौ	सुधिय:
द्वितीया	सुधियम्	,,	,,
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधिभि:
चतुर्थी	सुधिये	,,	सुधीभ्य:
पञ्चमी	सुधिय:	,,	,,
षष्ठी	,,	सुधियो:	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	,,	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधी: !	हे सुधियौ !	हे सुधिय: !

सुखी:—सुखमिच्छतीति सुखी: प्रातिपदिक संज्ञक सुखी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग होने पर 'सुखी:' रूप बनता है।

सुख्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक सुख शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है, 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से यण य् हो जाता है, जिससे 'सुख्यौ' यह रूप बनता है।

(सुखी शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुखी:	सुख्यौ	सुख्य:
द्वितीया	सुख्यम्	,,	,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शम्भुर्हरिवत्, एवं भान्वादयः।

३. तृज्वत् क्रोष्टुः ७।१।९५॥

असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टु शब्दस्य स्थाने क्रोष्टृ शब्दः क्तव्य इत्यर्थः।

४. ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः ७।३।११०॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च इति प्राप्ते—

५. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च २।१।९४॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्याद सम्बुद्धौ सौ।

तृतीया	सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः
चतुर्थी	सुख्ये	,,	सुखीभ्यः
पञ्चमी	सुख्युः	,,	,,
षष्ठी	,,	सुख्योः	सुख्याम्
सप्तमी	सुख्यि	,,	सुखीषु
सम्बोधन	हे सुखीः !	हे सुख्यौ !	हे सुख्यः !

इस प्रकार सुती शब्द के रूप होते हैं। सुतम् इच्छतीति सुतीः।

शम्भुर्हरिवत्०—शम्भु शब्द के रूप हरि शब्द के समान होते हैं, और नु आदि के रूप शम्भु के समान होते हैं।

उकारान्त शम्भु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
द्वितीया	शम्भुम्	,,	शम्भून्
तृतीया	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
चतुर्थी	शम्भवे	,,	शम्भुभ्यः
पञ्चमी	शम्भोः	,,	,,
षष्ठी	,,	शम्भवोः	शम्भूनाम्
सप्तमी	शम्भौ	,,	शम्भुषु
सम्बोधन	हे शम्भो !	हे शम्भू !	हे शम्भवः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०६. अप् तृन् तृच् स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तॄणाम् ६।४।११॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। क्रोष्टा, क्रोष्टारौ क्रोष्टरः, क्रोष्टारम्।

२०७. विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९१॥

आजादि तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा, क्रोष्ट्रे।

इसी प्रकार भानु, विधु, गुरु, शिशु, इन्दु, पशु, वायु, शत्रु, रिपु, प्रभु, विभु विष्णु तरु आदि शब्दों के रूप होते हैं।

तृज्वत् क्रोष्टुः—सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान के परे क्रोष्टु शब्द के स्थान में क्रोष्टृ शब्द का प्रयोग करना चाहिये अर्थात् सम्बुद्धि रहित सर्वनाम स्थान के परे क्रोष्टु शब्द के स्थान पर क्रोष्टृ आदेश होता है।

ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः—सर्वनाम स्थान और सप्तमी एकवचन ङि विभक्ति परे होने पर ऋकारान्त के अंग को गुण होता है, इससे गुण प्राप्त होने पर।

ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसांच—सम्बुद्धि भिन्न "सु" विभक्ति परे होने पर ऋदन्त और उशनस् आदि शब्दों को अनङ् आदेश होता है अर्थात् सम्बुद्धि रहित सु विभक्ति के परे ऋकारान्त, उशनस्, पुरुदंश् और अनेहस् शब्दों को अनङ् आदेश हो। यह अनङ् आदेश ङित् है अर्थात् ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। इसलिये "ङिच्च" सूत्र के अनुसार अनङ् आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान में होता है।

अप् तृन् तृच्०—अप्, तृन्, तृच् प्रत्ययों से बनने वाले शब्द स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्ट्र, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ इन शब्दों की उपधा को दीर्घ होता, सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम परे होने पर। जैसे—

क्रोष्टा—प्रातिपदिक संज्ञक क्रोष्टु शब्द से प्रथमा एकवचन में "सु" विभक्ति आती है। सु की उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। तृज्वत्क्रोष्टुः सूत्र तृज्वद् भाव हो जाता है। क्रोष्टृ + स् इस स्थिति में "ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः" सूत्र से क्रोष्टृ की ऋकार को गुण प्राप्त होता है। उसको बाधकर "ऋदुशनस्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…ऽनेहसां च' सूत्र से अनङ् आदेश हो जाता है। ङकार की इत्सञ्ज्ञा होकर …हो जाता है, अन् शेष रहता है। 'क्रोष्टन् स्' इस स्थिति में 'अप् तृन्तृच्, …, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, पोतृ, प्रशास्तृणाम्' सूत्र से अन् उपधा को दीर्घ …जाता है। क्रोष्टान् स् इस दशा में 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र …की स् का लोप हो जाता है। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का …हो जाता है जिससे "क्रोष्टा" यह रूप निष्पन्न होता है।

क्रोष्टारौ—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक क्रोष्टु शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन 'औ' विभक्ति आयी है। तृज्वत् क्रोष्टुः' सूत्र से क्रोष्टु को क्रोष्टृ हो जाता 'ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः' सूत्र से ऋकार को अर् गुण हो जाता है। …तृच्' इत्यादि सूत्र से उपधा को दीर्घ हो जाता है जिससे "क्रोष्टारौ" रूप …न्न होता है।

क्रोष्टारः, क्रोष्टारम् में भी क्रोष्टु को क्रोष्टृ आदेश तथा गुण एवम् उपधा …आदि होते हैं।

क्रोष्टून्—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक क्रोष्टु शब्द से द्वितीया बहुवचन में शस् …क्ति आती है 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शस् की शकार इत्संज्ञा हो जाती है। …टु + अस् इस स्थिति में "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" सूत्र से दीर्घ हो जाता है। …स्माच्छसो नः पुंसि" सूत्र से स् को न हो जाता है जिससे "क्रोष्टून्" यह …निष्पन्न होता है।

विभाषा तृतीयादिष्वचि—अजादि तृतीया आदि विभक्ति परे होने पर …ल्प से क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होता है अर्थात अजादि तृतीया विभक्ति …→ आ, ङे → ए, ङसि → अस्, ङस् → अस् ओस, आम, ङि → इ, ओस् इन …क्तियों के परे होने पर क्रोष्टु को विकल्प से क्रोष्टृ होता है। जैसे—

क्रोष्ट्रा—प्रातिपदिक संज्ञक क्रोष्टु शब्द से तृतीया एकवचन में 'टा' विभक्ति …ती है। "चुटू" सूत्र से टकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। "तस्य लोपः" सूत्र से …हो जाता है। क्रोष्टु + आ इस स्थिति में "विभाषा तृतीय दिष्वचि" सूत्र विकल्प से क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव अर्थात् क्रोष्टृ हो जाता है। क्रोष्टृ + आ …स्थिति में यण होकर क्रोष्ट्रा निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०८. ऋत उत् ६। ।१११॥

ऋतो ङसिङसोरति 'उत् एकादेशः । रपरः ।

२०९. रात्सस्य ८।२।२४॥

रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपः नान्यस्य । रस्य विसर्गः । क्रोष्टुः । क्रोष्ट्रोः ।

(वा०) नुमचिरतृज्वद् भावेभ्यो नुट् पूर्व विप्रतिषेधेन ।

क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । पक्षे हलादौ च शम्भु वत् ।

क्रोष्ट्रे—प्रातिपदिक संज्ञक क्रोष्टु शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। क्रोष्टु+ए इस स्थिति में 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' सूत्र से क्रोष्टु को तृज्वद्भाव क्रोष्टृ हो जाता है। फिर 'इकोयणचि' मूत्र से यण् र् हो जाता है जिससे 'क्रोष्ट्रे' यह रूप निष्पन्न होता है।

ऋतउत्—ऋदन्त शब्दों से ङसि, ङस् विभक्ति की अकार परे होने पर ऋ के स्थान में उत् एकादेश होता है और वह रपर होता है।

रात्सस्य—रेफ अर्थात् रकार से संयोगान्त सकार का लोप होता है, अन्य सकार का नहीं। र् को विसर्ग होता है।

क्रोष्टुः—प्रातिपदिक संज्ञक क्रोष्टु शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि, और विभक्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' सूत्र से विकल्प से कोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव क्रोष्टृ हो जाता है। क्रोष्टृ+अस् इस स्थिति में 'ऋत उत्' सूत्र से क्रोष्टृ की ऋकार और अस् की अकार के स्थान में उकार एकादेश होता है और वह रपर होता है। क्रोष्टुर् स् इस स्थिति में 'रात्सस्य' सूत्र से स् का लोप हो जाता है और र् को विसर्ग होता है, जिससे क्रोष्टुः रूप निष्पन्न होता है। पक्ष में 'शेषोध्यसखि' सूत्र से घिसंज्ञा होने से 'ङिति' सूत्र से उकार को गुण 'ओ' हो जाता म। 'ङासिङसोश्च' सूत्र से पूर्वरूप हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे क्रोष्ट्रोः यह रूप निष्पन्न होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुमचिरतृज्वद्भाव—नुम्, अच् परे रकार आदेश तथा तृज्वद्भाव इन के एक साथ प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के नियम से आम् परे रहते नुट् आगम होता है। जैसे—

क्रोष्टूनाम्—प्रातिपदिक संज्ञक क्रोष्टु शब्द से षष्ठी बहुवचन में 'आम्' क्ति आती है। 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' सूत्र से विकल्प से तृज्वद्भाव प्राप्त ा है—और 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम प्राप्त होता है। इस न बल वाले कार्य के विरोध में पर कार्य अर्थात् तृज्वद्भाव होना चाहिए परन्तु 'नुमचिरतृज्वद् भावेभ्योनुट पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के विशेष म से नुट् का आगम हो जाता है। उट् की इत्सज्ञा होकर लोप हो जाता है। मि' सूत्र से दीर्घ हो जाता है जिससे क्रोष्टूनाम् यह रूप बनता है।

क्रोष्टरि—प्रातिपदिक संज्ञक 'क्रोष्टु शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि क्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। भाषातृतीयादिष्वचि' सूत्र से विकल्प से क्रोष्टु को तृज्वद्भाव क्रोष्टृ हो जाता क्रोष्टृ + इ इस स्थिति मे 'ऋतोङि सर्वनाम स्थानयो:' सूत्र से क्रोष्टृ की कार को रपर होकर 'अर्' गुण हो जाता है, जिससे 'क्रोष्टरि' यह रूप न्न होता है। पक्ष में 'शेषोघ्यसखि' सूत्र से घि संज्ञा होती है, और 'अच्चघे:' से ङि की इ को औत् आदेश होता है और क्रोष्टु की उकार को अकार हो ता है, क्रोष्ट + औ 'इस स्थिति में वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि एकादेश हो जाता जिससे 'क्रोष्टौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

इस प्रकार तृज्वद्भाव के अभाव में और हल् आदि विभक्तियों के परे भु शब्द के समान रूप होते हैं।

क्रोष्टु शब्द के रूप (तृज्वद्भाव पक्ष में)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टार:
द्वितीया	क्रोष्टारम्	"	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्यां	क्रोष्टुभि:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूहू:, हूह्वौ:, हुह्व:, हूहून ।

अतिचमू शब्दे तु नदी कार्य विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्वै अति चम्वाः । अतिचमूनाम् । अतिचम्वाम् ।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	,,	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	,, ,,	क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ,	,,	क्रोष्टुषु,
सम्बोधन	हे क्रोष्टो !	हे क्रोष्टरौ !	हे क्रोष्टारः !

दीर्घ अकारान्त शब्द

हूहूः—प्रातिपदिक संज्ञक हूहू (गन्धर्ववाचक) शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग होकर 'हूहूः' यह रूप निष्पन्न होता है।

हूह्वौ—प्रातिपदिक संज्ञक हूहू शब्द प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है, 'इकोयणचि' सूत्र से ऊकार को यण् व् हो जाता है, जिससे 'हूह्वौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

हूहून्—प्रातिपदिक संज्ञक हूहू शब्द से द्वितीया बहुवचन में शस विभक्ति आती है, शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, 'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः' सूत्र से दीर्घ हो जाता है, 'तस्माच्छसोनः पुंसि' सूत्र से स् को न् हो जाता है, जिससे 'हूहून्' यह रूप निष्पन्न होता है।

(ऊकारान्त हूहू शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हूहूः	हूह्वौ	हूह्वः
द्वितीया	हूहूम्	,,	हूहून्
तृतीया	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
चतुर्थी	हूह्वे	,,	हूहूभ्यः
पञ्चमी	हूह्वः	,,	,,
षष्ठी	,,	हूह्वोः	हूह्वाम्
सप्तमी	हूह्वि	,,	हूहूषु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिचमू शब्दे तु०—अतिचमू शब्द में नदी कार्य विशेष है।

हे अतिचमु—चमूम् अतिक्रामति इति अतिचमू। प्रातिपदिक संज्ञक अतिचमू शब्द से प्रथमा एकवचन सम्बोधन में 'सु' विभक्ति आती है, 'यूस्त्राख्यौ नदी' सूत्र से अति चमू शब्द की नदी संज्ञा होती है। 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से अतिचमू शब्द की ऊकार को ह्रस्व उकार हो जाता है। अति चमु+सु 'एकवचन सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञा होती है, 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बोधन की सु का लोप हो जाता है, जिससे हे अतिचमु ! यह रूप निष्पन्न होता है।

अतिचम्वै—प्रातिपदिक संज्ञक अतिचमू शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'यूस्त्राख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा हो जाती है, 'आण्नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'आटश्च' सूत्र से 'आ' और 'ए' के स्थान पर वृद्धि एकादेश हो जाता है, अतिचमू+ऐ इस स्थिति में 'इकोयणचि' सूत्र से यण् व् होता है, जिससे "अतिचम्वै" यह रूप निष्पन्न होता है।

अतिचम्वाः—इसी प्रकार अतिचमू शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी विभक्ति के एकवचन में नदी संज्ञा, आट् का आगम और वृद्धि, यण् आदि होकर अतिचम्वाः बनता है।

अतिचम्वाम्—प्रातिपदिक संज्ञक अतिचमू शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है, "यूस्त्राख्यौ नदी" सूत्र से नदी संज्ञा हो जाती है, "ङेराम्नद्याम्नीभ्यः" सूत्र से "ङि" को आम् आदेश हो जाता है, "आण्नद्याः" सूत्र से 'आट्' का आगम हो जाता है, 'आटश्च' सूत्र से आ+आ को वृद्धि आ होता है, अतिचमू+आम् इस स्थिति में "इकोयणचि" सूत्र से ऊकार को यण् व् हो जाता है, जिससे "अतिचम्वाम्" यह रूप बनता है।

अतिचमूनाम्—प्रातिपदिक संज्ञक अतिचमू शब्द से षष्ठी वहुवचन में 'आम्' विभक्ति आती है। 'यूस्त्राख्यौ नदी' सूत्र से नदी संज्ञा हो जाती है, 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है, उट् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, इस प्रकार "अतिचमूनाम्" यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१०. ओः सुपि ६।४।८३॥

धात्ववयवसंयोगपर्वो न भवति, य उवर्णः तदन्तो यो धातुः, तदन्तस्थानेऽकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ, खलप्वः। एवं सुल्वादयः

स्वभूः स्वभुवौ, स्वभुवः। वर्षाभूः।

ऊकारान्त अतिचमू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिचमू	अतिचम्वौ	अतिचम्वः
द्वितीया	अतिचमूम्	,,	अतिचमून्
तृतीया	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभिः
चतुर्थी	अतिचम्वै	,,	अतिचमूभ्यः
पञ्चमी	अतिचम्वा	,,	,,
षष्ठी	,,	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्
सप्तमी	अतिचम्वाम्	,,	अतिचमूषु
सम्बोधन	हे अतिचमु	हे अतिचम्वौ !	हे अतिचम्वः !

ओः सुपिः—अजादि सुप् अर्थात औ, जस्→अस्, शस्→अस्, टा→आ, ङे→ए, ङसि→अस्, ङस्→अस्, ओस्, आम्, ङि→इ ओस् इन विभक्तियों के परे जो उकार धातु के अवयव संयोग पूर्व से भिन्न है, वह, उकार है अन्त में में जिसके ऐसी जो धातु उसके अन्त के अनेक अच् वाले अंग को यण् होवे।

खलप्वौ—खलं पुनातीति खलपूः तौ=खलप्वौ, प्रातिपादिक संज्ञक खलपू शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया में "औ" विभक्ति आती है "अचिश्नु धातु भ्रुवाम्‍यित्यादि" सूत्र से उवङादेश प्राप्त होता है परन्तु "ओः सुपि" सूत्र से उवङादेश का बाध होकर यण् व् हो जाता है जिससे "खलप्वौ" रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार खलप्वः, खलप्वा, खलप्वे आदि में भी यण् हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खलपू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
द्वितीया	खलपूम्	"	खलपून्
तृतीया	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
चतुर्थी	खलप्वे	"	खलपूभ्यः
पञ्चमी	खलप्वः		"
षष्ठी	"	खलप्वोः	खलप्वाम्
सप्तमी	खलप्वि	"	खलपूषु
सम्बोधन	हे खलपू !	हे खलप्वौ !	हे खलप्वः !

इसी प्रकार सुलू शब्द के रूप निष्पन्न होते हैं 'सुलू' सुष्ठु लुनातीति 'सुलूः' अच्छी तरह काटने वाला ।

स्वभू—स्वेनैव भवतीति स्वभूः (ब्रह्मा) प्रातिपदिक सञ्ज्ञक स्वभू शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है । उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है । स् को रुत्व विसर्ग होकर 'स्वभूः' रूप निष्पन्न होता है ।

स्वभुवौ—स्वभू शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'स्वभू+औ' इस स्थिति में 'इकोयणचि' सूत्र से ऊकार को यण् व् प्राप्त होता है जिसे बाधकर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सूत्र से दीर्घ प्राप्त होता है । उसका भी दीर्घाज्जसि च' सूत्र से निषेध हो जाता है । पुनः यण् प्राप्त होता है, उसे बाधकर 'अचिश्नु धातु भ्रुवाम्' इत्यादि सूत्र से उवङादेश प्राप्त होता है 'एरनेकाचोऽसंयोग पूर्वस्य' सूत्र से उवङादेश को बाधकर यण् प्राप्त होता है 'नभूसुधियोः सूत्र से यण् का निषेध हो जाता है अन्तः में' अचिश्नुधातु भ्रुवामित्यादि सूत्र से उवङादेश हो जाता है । ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है जिससे 'स्वभुवौ' रूप बनता है ।

इसी प्रकार अजादि विभक्तियों में सर्वत्र उवङादेश हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२११. वर्षाभ्वश्च ।६।४।८४।।

अस्य यण् स्यादचि सुपि । वर्षाभ्वौ, इत्यादि ।

वा० दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः ।

दृन्भ्वौ । एवं करभू ।

धाता । हे धातः । धातारौ । धातारः ।

वा० ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् । धातृणाम् ।

नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्-तेनेह न-पिता, पितरौ, पितरः ।

स्वभू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः
द्वितीया	स्वभुवम्	,,	,,
तृतीया	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
चतुर्थी	स्वभुवे	,,	स्वभूभ्यः
पञ्चमी	स्वभुवः	,,	,,
षष्ठी	,,	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
सप्तमी	स्वभुवि	,,	स्वभूषु
सम्बोधन	हे स्वभूः !	हे स्वभुवौ !	हे स्वभुवः !

वर्षाभूः—वर्षायां भवतीति वर्षाभूः प्रातिपदिक संज्ञक वर्षाभू शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है । उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग होकर वर्षाभूः' (मेंडक) निष्पन्न होता है ।

वर्षाभ्वश्च—अजादि सुप् के अर्थात् (औ, जस्→अस्, शस्→अस्, टा=आ ङे=ए→ ङसि→ अस्, ङस्→अस् ओस्, आम् इन विभक्तियों के) परे वर्षाभू शब्द को यण् होता है । जैसे—

वर्षाभ्वौ—प्रातिपदिक संज्ञक वर्षाभू शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'वर्षाभू+औ' इस स्थिति में प्रथम 'इकोयणचि' से यण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है । उसे बाधकर उवङादेश प्राप्त होता है । उसे बाधकर 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' से यण् प्राप्त होता है' उसका भी 'न भू सुधियोः' से यण् नहीं होता है, पुनश्च 'न भूसुधियोः' का निषेध करके 'वर्षाभ्वश्च' सूत्र से ऊकार को यण् व् हो जाता है जिससे 'वर्षाभ्वौ' यह रूप निष्पन्न होता है ।

वर्षाभू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
द्वितीया	वर्षाभ्वम्	,,	वर्षाभ्वः
तृतीया	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
चतुर्थी	वर्षाभ्वे	,,	वर्षाभूभ्यः
पञ्चमी	वर्षाभ्वः	,,	,,
षष्ठी	,,	वर्षाभ्वोः	वर्षाभ्वाम्
सप्तमी	वर्षाभ्वि	,,	वर्षाभूष
सम्बोधन	हे वर्षाभूः !	हे वर्षाभ्वौ !	हे वर्षाभ्वः !

हन्करपुनः पूर्वस्य—दृन्, कर, और पुधः शब्द यदि–भू पूर्वक हो तो भू को यण् हो अजादि विभक्तियों के परे रहते जैसे हन्भू, करभू, पुनर्भू शब्द की भू की ऊकार को यण् हो अजादि विभक्ति परे रहते । जैसे—

दृन्भ्वौ—प्रातिपदिक संज्ञक दृन्भू शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'दृन्भू + औ' इस स्थिति में 'इकोयणचि' सूत्र से यण् प्राप्त होता है, उसे बाधकर उवङादेश प्राप्त होता है पुनः उसे बाधकर 'दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः' इस वार्तिक से यण् ऊकार को व् हो जाता है जिससे 'दृन्भ्वौ' रूप निष्पन्न होता है ।

इसी प्रकार करभूः, करभ्वौ, करभ्वः आदि के रूप होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा॰ ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। धातॄणाम्।
नप्त्रादिग्रहण व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् तेनेह न–पिता, पितरौ, पितरः।

दृन्भू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दृन्भूः	दृन्भ्वौ	दृन्भ्व
द्वितीया	दृन्भ्वम्	"	"
तृतीया	दृन्भ्वा	दृन्भूभ्याम्	दृन्भूभिः
चतुर्थी	दृन्भ्वे	दृन्भूभ्याम्	दृन्भूभ्यः
पञ्चमी	दृन्भ्वः	"	"
षष्ठी	"	दृन्भ्वोः	दृन्भ्वाम्
सप्तमी	दृन्भ्वि	"	दृन्भूषु
सम्बोधन	हे दृन्भूः !	हे दृन्भ्वौ ?	हे दृन्भ्वः !

पुनर्भू तथा करभू शब्द के रूप दृन्भू शब्द के समान होते हैं।

धाता—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है 'ऋदुशनस् पुरुदशोऽनेहसां च' सूत्र से अनङ् हो जाता है 'अप् तृच् तृन इत्यादि सूत्र से उपधा का दीर्घ हो जाता है, 'धातान् स्' इस स्थिति में 'हलङ्व्याभ्यो सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का लोप हो जाता है जिससे 'धाता' यह रूप निष्पन्न होता है।

धातारौ—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है 'ऋतोङि सर्वनाम स्थानयो' सूत्र से धातृ की ऋकार के स्थान में रपर होकर अर् गुण हो जाता है 'अप् तृन्तृच्' इत्यादि सूत्र से उपधा को दीर्घ हो जाता है जिससे 'धारारौ' निष्पन्न होता है।

धातारः—इसी प्रकार धातृ शब्द से जस् विभक्ति में धातारः बनता है।

वा॰ ऋवर्ण से परे नकार को णत्व कहना चाहिये अर्थात् ऋकार से परे न को णत्व (ण्) होता है। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातृणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है, "ह्रस्वनद्यापो नुट्" सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है "नामि सूत्र से ऋकार को दीर्घ ॠ हो जाता है "ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्" इस वार्तिक से न को ण हो जाता है जिससे "धातॄणाम्" यह रूप निष्पन्न होता है।

(धातृ शब्द के रूप)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	"	धातॄन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे	"	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः	"	"
षष्ठी	"	धात्रोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातरि	"	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः !	हे धातारौ !	हे धातारः

नप्त्रादि०—अप् तृन् तृच् इत्यादि सूत्र में नप्त्रादि का ग्रहण व्युत्पत्ति पक्ष में नियमार्थक है। अतः पितरौ, पितरः आदि में दीर्घ नहीं होता है अर्थात् अप्तृन् इत्यादि सूत्र में उणादि प्रत्ययों से बने हुये शब्दों का ग्रहण किया गया है। उणादि से बने हुये शब्दों के विषय में दो मत हैं—कि ये शब्द रूढ़ि अर्थात् अव्युत्पन्न माने जाते हैं और कुछ लोग उणादि से बनने वाले शब्दों को व्युत्पन्न अर्थात् प्रकृति प्रत्यय युक्त हैं। अतः—व्युत्पत्ति पक्ष में स्वसृ आदि उणादि से निष्पन्न शब्दों का प्रकृति प्रत्यय विभाग होता है और अव्युत्पत्ति पक्ष में प्रकृति-प्रत्यय का कोई विभाग नहीं बनता है। प्रस्तुत सूत्र में तृन् और तृच् प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों का ग्रहण किया गया है, इसी के अन्तर्गत स्वसृ शब्द का भी ग्रहण करके दीर्घ हो जायेगा फिर पृथक् स्वसृ शब्द का सूत्र में पाठ क्यों किया गया है ? इस प्रकार स्वसृ शब्द का ग्रहण व्यर्थ हो जाता है जिससे फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम का विधान करता है जैसा कि कहा गया है कि "सत्यामारभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते" अतः जब प्रारम्भ (बनाया गया) की जाने वाली विधि (नियम) व्यर्थ हो जाता है तो वह फिर नियम का निर्माण करता है। इस प्रकार इस सूत्र में स्वसृ शब्द का पाठ व्यर्थ होने पर नियम का निर्माण करता है कि तृन् तथा तृच् प्रत्यान्त उणादि से निष्पन्न स्वसृ आदि शब्दों को ही दीर्घ होता है, अन्य को नहीं। पितृ शब्द स्वसृ आदि शब्दों के अन्तर्गत नहीं आता है, अतः पितृ को अप्तृन् से दीर्घ नहीं होता है। यदि अव्युत्पन्न वाला पक्ष ग्रहण करें तो स्वसृ आदि शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का विभाग नहीं हो सकता है तो तृन्, तृच् प्रत्ययान्त न होने के कारण दीर्घ नहीं होगा। अतः स्वसृ आदि शब्दों का सूत्र में पाठ किया गया है। तथापि पितृ शब्द को दीर्घ नहीं होगा क्योंकि पितृ शब्द का सूत्र में ग्रहण नहीं किया गया है। अतः परिणामस्वरूप व्युत्पत्ति पक्ष और अव्युत्पत्ति पक्ष दोनों स्थिति में पितृ शब्द को "अप् तृन् तृच्" सूत्र से दीर्घ नहीं होगा।

पिता—प्रातिपदिक संज्ञक पितृ शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, "ऋदुशनस् पुरुदंशोऽनेहसांच" सूत्र से ऋकार को अनङादेश हो जाता है, अन् शेष रहता है "पित् अन् स" इस दशा में "सर्वनामस्थानेचासम्बुद्धौ" सूत्र से दीर्घ हो जाता है" हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् "सूत्र से सु की स का लोप हो जाता है" न लोपः प्रातिपदिककान्तस्य" सूत्र से न् का लोप होता है। इस प्रकार "पिता" यह रूप बनता है।

पितरौ—प्रातिपदिक संज्ञक पितृ शब्द से प्रथमा द्विवचन में "औ" विभक्ति आती है" ऋतो ङि सर्वनाम स्थानयोः" सूत्र से तृ की ऋकार को रपर होकर अर् गुण हो जाता है, नप्त्रादि शब्दों का पाठ नियमार्थक है, अतः यहां 'अप्तृन्' इत्यादि सूत्र से दीर्घ नहीं होता है। इस प्रकार पितरौ" यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार पितरः भी प्रथमा वहुवचन में निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ना, नरौ ।

२. नृ च ६।४।६॥

अस्य नामि वा दीर्घः । नृ णाम्, नृणाम् ।

३. गोतो णित् ७।१।९०॥

ओकाराद् विहितं सर्वनाम-स्थानं णिद्वत् । गौः गावौ, गावः ।

पितृ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	,,	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	,,	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	,,	,,
षष्ठी	,	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	,,	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः !	हे पितरौ !	हे पितरः

ना—प्रातिपदिक सज्ञक नृ शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती सु की उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है । 'ऋदुशनस पुरुदंशोऽनेहसां' सूत्र से नृ के ऋकार को अनङ् आदेश होता है, अन शेष रहता है र्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' सूत्र से नकारान्त उपधा को दीर्घ हो जाता है । न् स् 'इस स्थिति में हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु स् का लोप हो जाता है 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न का लोप ता है जिससे 'ना' यह रूप निष्पन्न होता है ।

नरौ—प्रातिपदिक संज्ञक नृ शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' सूत्र से ऋकार को रपर होकर अर् गुण हो ता है जिससे 'नरौ' यह रूप निष्पन्न होता है ।

नृच —नृ शब्द से नाम परे रहते न् शब्द को विकल्प से दीर्घ होता है, जैसे णाम्—प्रातिपदिक संज्ञक 'नृ' शब्द से षष्ठी एकवचन में आम् विभक्ति ती है 'ह्रस्वनद्यापो नुट्, सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है । उत् की इत्संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर लोप हो जाता है 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इस वार्तिक से न को ण हो जाता है। 'नृच' सूत्र से नृ शब्द से नाम परे रहते विकल्प से दीर्घ हो जाता है जिससे नॄणाम्, पक्ष में नृणाम् यह रूप निष्पन्न होता है।

नृ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
द्वितीया	नरम्	,,	नॄन्
तृतीया	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्रे	,,	नृभ्यः
पञ्चमी	नुः	,,	,,
षष्ठी	,,	न्रोः	नृणाम्, नॄणाम्
सप्तमी	नरि	,,	नृषु
सम्बोधन	हे नः !	हे नरौ !	हे नरः !

गोतोणित्—ओकारान्त शब्द से कहा गया सर्वनाम-स्थान णितवत् होता है अर्थात् णित् (णकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाने पर) के परे जो कार्य होते हैं वे वृद्धि आदि कार्य हों। जैसे—

गौः—प्रातिपदिक संज्ञक गो शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है 'गोतो णित्' सूत्र से गो की ओ को णिद्वद् भाव हो जाता है जिससे 'अचोऽञ्णिति' सूत्र से वृद्धि 'औ' हो जाती है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाते हैं जिससे 'गौः' यह रूप निष्पन्न होता है।

गावौ—प्रातिपदिक संज्ञक गो शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती है 'गोतो णित्' सूत्र से गो की ओ को णिद्वद्भाव हो जाता है जिससे 'अचोऽञ्णिति' सूत्र से वृद्धि हो जाती है फिर 'एचोऽयवायावः' सूत्र से आव् आदेश हो जाता है जिससे 'गावौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार प्रथमा बहुवचन में 'गावः' रूप बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१४. औतोऽम्शसोः ६।१।६३॥

औतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः । गाम् , गावौ, गाः । गवा , २, इत्यादि ।

ओकारान्त शब्द से अम् तथा शस् विभक्ति का अच् (स्वर) परे होने पर को आकार आदेश होता है ।

गाम्—प्रातिपदिक संज्ञक गो शब्द से द्वितीया एकवचन में अय् विभक्ति ती है गोतो णित' सूत्र से गो की ओ को णिद्वद् भाव प्राप्त होता है' तु उसको बाँधकर 'औतोऽम् शसो:' सूत्र से ओसे अम् तथा शम् से अच् र) परे होने पर ओ को अ का 'आ' हो जाता है । ग् आ म् इस स्थिति में रूप निष्पन्न होता है ।

गाः—प्रातिपदिक संज्ञक गो शब्द से द्वितीया बहुवचन में शस् विभक्ति ती है, 'औतोऽम् शसो:' सूत्र से 'ओ' अस् की अ को 'आ' आदेश होता स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'गा:' यह रूप निष्पन्न होता है ।

गवा—प्रातिपदिक संज्ञक गो शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति ती है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, गो+आ इस स्थिति में ोऽयवायाव' सूत्र से ओ को अव् आदेश हो जाता है जिससे 'गवा' यह रूप पन्न होता है ।

गोः—प्रातिपादिक संज्ञक गो शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में , तथा ङस् विभक्ति आने पर ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है । +अस्, इस स्थिति में 'ङसिङसोश्च' सूत्र से पूर्वरूप हो जाता है, स् को तथा विसर्ग हो जाता है जिससे 'गो:' यह रूप निष्पन्न होता है ।

गो शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुबचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	,,	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम	गोभिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१५. रायो हलि ७।२।८५॥

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः, रायौः राय । राभ्याम् । ग्लौ ग्लावौ, ग्लावः । ग्लौभ्यामित्यादि ।

इति अजन्त पुलिंग प्रकरणं समाप्तम्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	,,	,,
षष्ठी	,,	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	,,	गोषु
सम्बोधन	हे गौः !	हे गावौ !	हे गावः

रायोहलि—रै शब्द को आकारान्त आदेश हो हल् विभक्तियों के परे हो पर जैसे—

राः—प्रातिपदिक संज्ञक 'रै' शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है । सु के उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है । 'रायो हलि' सूत्र से रै की ऐ को—आकार आदेश हो जाता है, रा+स् इस स्थिति में रै को रुत्व विसर्ग होकर 'रा' यह रूप निष्पन्न होता है ।

रायौ—प्रातिपदिक संज्ञक रै शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती है 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ऐ को आय् आदेश हो जाता है जिससे 'रायौ' यह रूप निष्पन्न होता है ।

रायः—इसी प्रकार प्रथमा बहुवचन में 'रायः' निष्पन्न होता है ।

राभ्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक रै शब्द से 'भ्याम्' विभक्ति आती है 'रायो हलि' सूत्र से 'ऐ' को आकार अन्तादेश हो जाता है जिससे 'राभ्याम्' यह रूप निष्पन्न होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रै शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	,,	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभि
चतुर्थी	राये	,,	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	,,	,,
षष्ठी	,,	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	,,	रासु
सम्बोधन	हे रा !	हे रायौ !	हे रायः

ग्लौः :—प्रातिपदिक संज्ञक ग्लौ शब्द से प्रथमा एकवचन में सुविभक्ति है उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाता जिससे 'ग्लौः' यह रूप निष्पन्न होता है।

ग्लावौ :—प्रातिपदिक संज्ञक ग्लौ शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'ग्रौ' विभक्ति है एचोऽयवायावः' सूत्र से ग्रौ को ग्राव् ग्रादेश होता है जिससे 'ग्लावौ' रूप निष्पन्न होता है।

ग्लौभ्याम्—ग्लौ शब्द से तृतीया द्विवचन में भ्याम् विभक्ति ग्राती है भ्याम्' रूप निष्पन्न होता है। इस प्रकार हलादि विभक्तियों में कोई नहीं होता है ग्रौर ग्रजादि विभक्तियों में ग्राव् ग्रादेश होता है।

ग्लौ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	,,	,,
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी	ग्लावे	,,	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	,,	,,
षष्ठी	,,	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	,,	ग्लौषु
सम्बोधन	हे ग्लौः !	हे ग्लावौ !	हे ग्लावः !

॥ इति ग्रजन्त पुल्लिङ्ग प्रकरणम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाजन्त-स्त्रीलिङ्ग-प्रकरणम्

रमा

२१६. औङ आपः ७।१।१८॥

आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात्। औङिति औकार विभक्तेः संज्ञा। रमे रमाः।

रमा—रमते इति रमा (लक्ष्मी का एक नाम) स्त्रीत्व विवक्षामें 'रम' शब्द से अजाद्यतष्टाप् सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है 'आ' शेष रहता है जिससे 'रमा' शब्द निष्पन्न होता है। 'ङ्याप् प्रातिपदिकात्' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति आती है, सु के उकार की इत्सज्ञा तथा लोप होता है, 'हलङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र मे आबन्त शब्द से सु के स् का लोप हो जाता है जिससे 'रमा' यह रूप निष्पन्न होता है।

औङ् आपः—आबन्त अर्थात् आकारान्त स्त्रीलिंग के अंग से परे औङ के स्थान में शी आदेश होता है। औङ् प्रथमा द्विवचन 'औ' और द्वितीया द्विवचन 'औट्' की औङ् संज्ञा होती है।

रमे—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ 'विभक्ति आती है 'औङ् आपः' सूत्र से 'औ' के स्थान में शी आदेश हो जाता है। 'लशक्व तद्धिते' सूत्र से शी की शकार की इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है। रमा + ई इस स्थिति में 'आद्गुणः' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती आ और ई के स्थान में 'ए' गुण एकादेश होता है जिससे 'रमे' यह रूप निष्पन्न होता है।

रमाः—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आती है 'चुटू' सूत्र से जकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। रमा + अस् 'अकः सवर्णे दीर्घ' सूत्र से सवर्ण दीर्घ हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'रमाः' यह रूप निष्पन्न होता है'।

सम्बुद्धौ च—सम्बुद्धि के परे होने पर आबन्त शब्द के अंग को अर्थात् आकार को एकार आदेश होता है। एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि 'सु' का लोप हो जाता है। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१८. आङि चापः ७।३।१०५॥

आङि ओसि चाप एकारः। रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः

२१९. याडापः ७।३।११३॥

आपो ङितो याट्। वृद्धिः रमायै, रमाभ्याम्, रमाभ्यः। रमायाः २ रमयोः २। रमाणाम्, रमायाम् रमासु। एवं दुर्गाम्बिकादयः।

हे रमे—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक रमा शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। "एकवचनं सम्बुद्धि" सूत्र से सु की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। "सम्बुद्धौ च" सूत्र मे आबन्त रमा शब्दके आकार को "ए" आदेश होता है" रमे+सु इस स्थिति में 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे", सूत्र से सम्बुद्धि सञ्ज्ञक "सु" का लोप हो जाता है जिससे "हे रमे" यह रूप बनता है।

आङिचाप—आबन्त अंग को एकार आदेश हो, आङ् (रमा=आ) तथा ओस् विभक्ति परे रहते। जैसे—

रमया—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है 'चटू' सूत्र से ट की इत्संज्ञा हो जाती है और 'तस्य लोपः सूत्र से ट् का लोप हो जाता है। रमा+आ इस स्थिति में 'आङि चाप' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती आ को एकार आदेश हो जाता है रमे+आ इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अय्-आदेश हो जाता है जिससे 'रमया' यह रूप निष्पन्न होता है।

याडाप—आबन्त शब्दों से ङित् विभक्तियों के परे याट् का आगम होता है। याट् की टकार इत्संज्ञक होने पर याट् टित् माना जाता है जिससे ङित् विभक्तियों के आदि में याट् का आगम होता है, जैसे—

रमायै—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से चतुर्थी एकवचन में ए विभक्ति आती है ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। रमा+ए इस स्थिति में 'याडापः'सूत्र से याट् का आगम हो जाता है, ट् की इत्सञ्ज्ञा हो जाती है जिससे ट् का लोप हो जाता है 'रमा या ए' इस स्थिति मे या की आ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए के स्थान में 'ऐ' वृद्धि होती है जिससे 'रमायै' यह रूप निष्पन्न होता है।

रमायाः—इसी प्रकार रमा शब्द से ङसि, तथा ङस् विभक्ति आने पर याट् का आगम आदि होकर 'रमयाः' बनता है।

रमयो—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी द्विवचन में ओस् विभक्ति आती है 'आङि चापः सूत्र से रमा की आ को एकार आदेश हो जाता है 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अय् आदेश हो जाता है, रमयो स् को सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'रमयोः' यह रूप निष्पन्न होता है।

रमाणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्दसे षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है, 'रमा+आम्' इस स्थिति में ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम हो जाता है, उट की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'अट् कुप्वाङ नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न कोणत्व (ण) हो जाता है जिससे 'रमाणाम्' यह रूप बनता है।

रमायाम्—प्रातिपदिक संज्ञक रमा शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' सूत्र से ङि के स्थान में आम् आदेश हो जाता है रमा+आम् इस स्थिति में आम् का स्थानिवद् भाव मानकर आम् में ङित्व धर्म स्वीकार करके 'याडापः' सूत्र से याट् का आगम हो जाता है, टकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, रमा या आम् इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से सवर्ण दीर्घ एकादेश हो जाता है जिससे रमायाम्, यह रूप निष्पन्न होता है।

आबन्त रमा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	,,	,,
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	,,	,,
पञ्चमी	रमायाः	,,	,,
षष्ठी	,,	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	,,	रमासु
सम्बोधन	हे रमे !	हे रमे !	हे रमाः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२०. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।११८॥

आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यात्, आपश्च ह्रस्वः। सर्वस्यै। सर्वस्याः। सर्वासाम्। सर्वस्याम् शेषं रमावत् एवं, विश्वादय आबन्ताः।

इसी प्रकार, दुर्गा, अम्बा, अम्बिका, लता, गंगा, कन्या, वेला, भार्या, जाया, गाया, जिज्ञासा, अभिलाषा, आशा, आभा, वाञ्छा, इच्छा, छाया, धरा, सुधा, वसुन्धरा, सुता, कान्ता, सीता, लज्जा, व्रीडा, जुगुप्सा, घृणा, क्रीडा, आज्ञा, निशा, प्रभा, दशा अवस्था, उमा, मन्दा, अजा, एडका, चटका, विलाता पद्मा, कमला, इन्दिरा, क्षीरोदतनया, इत्यादि शब्दों के रूप रमा के समान होते हैं।

केवल अम्बा शब्द का सम्बोधन एकवचत में हे 'अम्ब' बनता है, अन्य सभी रूप रमा के समान ही होते हैं।

सर्वनाम्नाः स्याड्ढस्वश्च—आबन्त सर्वनाम से परे ङित् विभक्तियों के परे होने पर स्याट् का आगम होता है और आबन्त अंग के आकार को ह्रस्व 'अ' होता है। स्याट् यह आगम टित् होने के कारण ङित् विभक्तियों के आदि में होता है। जैसे—

सर्वस्यै—प्रातिपदिक संज्ञक सर्वा शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आती है 'ए' शेष रहता है। 'सर्वादीनिसर्वनामानि' सूत्र से सर्वा शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है। याडापः' सूत्र से याट् का आगम प्राप्त होता है, उसे बाधकर 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' सूत्र से स्याट् का आगम हो जाता है और सर्वा को ह्रस्व सर्व हो जाता है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। सर्वस्या + ए इस स्थिति में 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि हो जाती है जिससे 'सर्वस्यै' यह रूप निष्पन्न होता है'।

सर्वस्याः—प्रातिपदिक संज्ञक सर्वा शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि, ङस् विभक्ति आने पर ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है 'याडापः' से प्राप्त याट् से आगम को वाधकर 'सर्वनाम्नःस्याड्ढ्रस्वश्च' सूत्र से स्याट् का आगम हो जाता है. टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है और सर्वा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२१. विभाषादिक् समासे बहुव्रीहौ १।१।२८॥

सर्वनामता वा स्यात्। ऊत्तर पूर्वायै।

तीयस्येति वा सर्वनाम संज्ञा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। एवं तृतीया।

आकार को ह्रस्व सर्व हो जाता है सवर्ण दीर्घ होकर स् को रुत्व विसर्ग सर्वस्याः यह रूप निष्पन्न होता है।

सर्वासाम्—प्रातिपदिक संज्ञक सर्वा शब्द से षष्ठी बहुवचन आम् विभक्ति आती है 'सर्वदीनि सर्वनामान' सूत्र से सर्वनाम संज्ञा हो जाती है 'आभि सर्वनानाम्नः सुट्' सूत्र से सुट् का आगम हो जाता है, उट् की इत्संज्ञा तथा लोप हा जाता है, इस प्रकार 'सर्वासाम्' यह रूप बनता है।

सर्वस्याम्–प्रातिपदिक सज्ञक सर्वा शब्द मे सप्तमी एकवचन में ङि 'विभक्ति आती है 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' सूत्र से ङि के स्थान में आम् आदेश •हो जाता है 'हर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र से सर्वनाम संज्ञा हो जाती है 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्स्वाश्च' सूत्र से स्याट् का आगम तथा सर्वा को ह्रस्व सर्व हो जाता है टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, सर्वस्य + आम् इस स्थिति में सवर्ण दीर्घ होकर 'सर्स्वयाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

सर्वा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	कहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम	"	"
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सवस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	"	"
षष्ठी	"	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	"	सर्वासु
सम्बोधन	हे सर्वे !	हे सर्वे	हे सर्वाः

इसी प्रकार विश्वा आदि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप चलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाषादिक् समांये बहुव्री०—दिशावाचक शब्दों की बहुव्रीहि समास में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसे—

खत्तर पूर्वस्यै उत्तरपूर्वायै—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक उत्तरपूर्वा शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है।' सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र से नित्य सर्वनाम संज्ञा प्राप्त होती है परन्तु 'विभाषादिक समासे बहुव्रीहौ।' सूत्र से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। अतः सर्वनाम संज्ञा के पक्ष में 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रम्वश्च' सूत्र से स्याट् का आगम हो जाता है और ह्रस्व हो जाता है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। पूर्वस्या+ए इस स्थिति मे वृद्धि होकर उत्तरपूर्वस्यै' निष्पन्न होता है। पक्ष में अर्थात सर्वनाम संज्ञा के प्रभाव में 'याडापः' सूत्र से 'याट्' का आगम हो जाता है टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, वृद्धि होकर 'उत्तरपूर्वायै' यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार उत्तरपूर्वस्याः, उत्तरपूर्वायाः आदि रूपों की भी सिद्धि हो जाती है।

उत्तरपूर्वा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उत्तरपूर्वा	उत्तरपूर्वे	उत्तरपूर्वाः
द्वितीया	उत्तरपूर्वाम्	,,	,,
तृतीया	उत्तरपूर्वया	उत्तरपूर्वाभ्यां	उत्तरपूर्वाभिः
चतुर्थी	उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै	,,	उत्तरपूर्वाभ्यः
पञ्चमी	उत्तरपूर्वस्याः उत्तरपूर्वायाः	,,	,,
षष्ठी	उत्तरपूर्वस्याः, उत्तरपूर्वायाः,	उत्तरपूर्वयोः	उत्तरपूर्वासाम्
सप्तमी	उत्तरपूर्वस्याम्, उत्तरपूवाया,	,,	उत्तरपूर्वाणाम्
सम्बोधन	हे उत्तरपूर्वे	हे ऊत्तरपूर्वे	हे उत्तरपूर्वा

तीयस्येति—तीय प्रत्ययान्त शब्दों की सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। जैसे—

द्वितीयस्यै—द्वितीयायै, प्रातिपदिक संज्ञक द्वितीय शब्द से चतुर्थी एकवचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बार्थ इति स्वः, हे अम्ब, हे अक्क, हे अल्ल ।
जरा जरसौ इत्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् ।
गोपा विश्वपावत् ।

में 'ङें' विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'तीयस्येति वा सर्वनाम संज्ञा' इस वार्तिक से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इस सूत्र से 'स्याट्' का आगम और द्वितीया को ह्रस्व द्वितीय हो जाता है, द्वितीय स्या+ए इस स्थिति में वृद्धि होकर द्वितीयस्यै निष्पन्न होता है। सर्वनाम संज्ञा के अभाव पक्ष में 'याडापः' सूत्र से 'याट्' का आगम तथा टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। वृद्धि होकर द्वितीयायै रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अन्य रूप भी निष्पन्न होते हैं। जैसे तृतीया आदि।

द्वितीया शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
द्वितीया	द्वितीयाम्	,,	,,
तृतीया	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
चतुर्थी	द्वितीयस्यै, द्वितीयायै	,,	,,
पञ्चमी	द्वितीयस्याः द्वितीयायाः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	द्वितीययोः	द्वितीयासाम् द्वितीयानाम्
सप्तमी	द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्	,,	द्वितीयासु
सम्बोधन	हे द्वितीये !	हे द्वितीये !	हे द्वितीयाः !

द्वितीया शब्द के समान तृतीय शब्द के रूप होते हैं।

हे अम्ब–प्रातिपदिक संज्ञक अम्बा शब्द से सम्बोधन में प्रथमा एकवचन की सु विभक्ति आती है। एकवचन सम्बुद्धिः' सूत्र से सु की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से अम्बा को ह्रस्व अम्ब हो जाता है। अम्ब+सु इस स्थिति में 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि की सु का लोप हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिससे हे अम्ब—यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार हे अक्क ! हे अल्ल ? आदि की भी सिद्धि होती है।

अम्बा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अम्बा	अम्बे	अम्बाः
द्वितीया	अम्बाम्	,,	,,
तृतीया	अम्बया	अम्बाभ्याम्	अम्बाभिः
चतुर्थी	अम्बायै	,,	अम्बाभ्यः
पञ्चमी	अम्बायाः	,,	,,
षष्ठी	,,	अम्बयोः	अम्बानाम्
सप्तमी	अम्बायाम्	,,	अम्बासु
सम्बोधन	हे अम्ब !	हे अम्बे	हे अम्बाः

इसी प्रकार अक्का, अल्ला आदि मातृवाचक शब्दों के रूप अम्बा के समान होते हैं।

जरा—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक जरा शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्त हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है जिससे जरा' यह रूप निष्पन्न होता है।

जरसौ—प्रातिपदिक संज्ञक जरा शब्द से प्रथमा द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है, 'जराया जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से जरा शब्द को जरस् आदेश विकल्प से होता है, जिसमे 'जरसौ' यह रूप बनता है। पक्ष में जरसादेश के अभाव पक्ष में रमा के समान 'जरे' रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार जरस, जरसा, जरसे आदि रूप निष्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा शब्द से रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जर	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
द्वितीया	जरसम्, जराम्	,, ,,	,, ,,
तृतीया	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी	जरसे, जरायै	,,	जराभ्यः
पञ्चमी	जरसः, जरायाः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	जरसोः जरयोः	जरसाम् जराणाम्
सप्तमी	जरसि, जरायाम्	,, ,,	जरासु
सम्बोधन	हे जरे !	हे जरसौ !	हे जरसः ! हे जराः !

गोपा शब्द के रूप विश्वपा के समान होते हैं।

गोपा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गोपाः	गोपौ	गोपाः
द्वितीया	गोपाम्	,,	गोपः
तृतीया	गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः
चतुर्थी	गोपे	,,	गोपाभ्यः
पञ्चमी	गोपः	,,	,,
षष्ठी	,,	गोपोः	गोपाम्
सप्तमी	गोपि	,,	गोपासु
सम्बोधन	हे गोपाः !	हे गोपौ !	हे गोपाः !

यहां गोपा शब्द का अर्थ गोप की स्त्री नहीं है अपितु स्वय गाय का पालन करने वाली स्त्री है। अतः स्त्रीलिंग में आबन्त शब्दों से होने वाले कार्य सु लोप, या का आगम आदि कोई कार्य नहीं होते हैं। जब गोप की स्त्री अर्थ ग्रहण करना अभिप्रेत होगा तब 'गोपी' रूप बनता है। अन्यथा 'गोपा' बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतीः । मत्या ।

२२२ ङिति ह्रस्वश्च १।४।६॥

इयङुवङ् स्थानौ स्त्री शब्द भिन्नौ नित्य स्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदी संज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्याः २, मतेः २।

मती—प्रातिपदिक संज्ञक मति शब्द से द्वितीया बहुवचन में शस् विभक्ति आती है। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। मति अस् इस स्थिति में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः सूत्र से सवर्ण दीर्घ हो जाता है, और स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'मतीः' यह रूप निष्पन्न होता है, यहाँ 'तस्माच्छसो नः पुंसि' सूत्र से स् को न, नहीं होता है, क्यों कि स् को न् पुंल्लिग में ही होता है, स्त्रीलिंग में नहीं, अतः यहां स् को न नही होता है।

मत्या—प्रातिपादिक संज्ञक मति शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है। चुटू' सूत्र से टकार की इत्संज्ञा हो जाती है, जिससे टकार का लोप हो जाता है। 'इकोयणचि' सूत्र से इ को यण् य् हो जाता है जिससे 'मत्या' यह रूप बनता है। यहां 'आङो नास्त्रियाम्' सूत्र से घि संज्ञक मति शब्द से टा की आ को ना आदेश नहीं होता है, क्योंकि ना आदेश स्त्रीलिंग से भिन्न घि संज्ञक शब्दों से होता है, यहां स्त्रीलिंग होने के कारण ना आदेश नहीं होता।

ङिति ह्रस्वश्च 'इयङ्, तथा उवङ् स्थानी नित्य स्त्रीलिंग ईकारान्त एवं ऊकारान्त जो शब्द स्त्री शब्द को छोड़कर तथा ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त जो नित्य स्त्रीलिंग शब्द उनकी स्त्रीलिंग में ङित् विभक्तियों के परे अर्थात् ङे, ङसि ङस्, के परे विकल्प से नदी संज्ञा होती है। जैसे—

मत्यै मतये—प्रातिपदिक संज्ञक मति शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है 'शेषोध्यसखि' सूत्र से प्रथम घि संज्ञा प्राप्त होती है। उसे बाधकर 'ङिति ह्रस्वश्च' सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा हो जाती है, जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२३. इदुद्भ्याम् ७।३।११७॥

इदुद्भ्यां नदी संज्ञाकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्, मतौ। शेषं हरिवत् एवं भुद्धयादयः ।

'आण् नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है, र टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, मति+आ+ए इस स्थिति में 'आटश्च' सूत्र से आ+ए को 'ऐ' वृद्धि होती है 'इकोयणचि' सूत्र से मति की इकार के स्थान में यण् य् हो जाता है जिससे 'मत्यै' यह रूप बनता है, पक्ष में अर्थात् नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में 'शेषोध्यसखि सूत्र से घि संज्ञा हो जाती है 'घेङिति' सूत्र से 'ति' की इकार को 'ए' गुण हो जाता है, मते+ए इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ते की ए को अय् आदेश हो जाता है जिससे 'मतये' यह रूप निष्पन्न होता है।

मत्या मतेः—प्रातिपदिक संज्ञक मति शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ङसि, ङस् विभक्ति आती है, अस् शेष रहता है। मति+अस् शेष रहता है, मति+अस् इस दशा में मति शब्द को प्राप्त घि संज्ञा को बांधकर 'ङतिह्रस्वश्च' सूत्र से विकल्प से नदो संज्ञा हो जाती है 'आणनद्याः' सूत्र से आट का आगम हो जाता है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। मति+आ+अस् इस स्थिति में 'आटश्च' सूत्र से आ+अ को 'आ' वृद्धि हो जाती है 'इकोयणचि' सूत्र इ को यण् य् हो जाता है स् को रुत्व विसर्ग होकर 'मत्याः' यह रूप निष्पन्न होता है, अर्थात् नदी संज्ञा के अभाव में 'शेषोध्यसखि' सूत्र से घि संज्ञा हो जाती है। घेङिति सूत्र से मति की इकार को ए गुण हो जाता है मते+अस् इस स्थिति में 'ङसिङसोश्च' सूत्र से अ को पूर्वरूप हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'मतेः' यह रूप निष्पन्न होता है।

इदुद्भ्याम्—इकारान्त, उकारान्त नदी संज्ञक नित्य स्त्रीलिंग शब्दों से ङि विभक्ति के पर होने पर 'ङि' को 'आम्' आदेश होता है, जैसे—

मत्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक मति शब्द से सप्तमी एकवचन में 'ङि' विभक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२४. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ ७।२।९९।।
स्त्रीलिंगयो रेतयो रेतौ स्तौ विभक्तौ

ो है 'ङितिह्रस्वश्च' सूत्र से विकल्प से नदी संज्ञा हो जाती है। इदुद्भ्याम्' सूत्र से ङि के स्थान में आम् आदेश हो जाता है। मति+आम् इस स्थिति इकोयणचि' सूत्र से इ को यण् य् हो जाता है जिससे 'मत्याम्' यह रूप न्न होता है। पक्ष में अर्थात् नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में शेषोध्यसखि' सूत्र घ संज्ञा हो जाती है। 'अच्चघेः' सूत्र से ङि की इ को 'औ' आदेश तथा की इकार को अकार आदेश हो जाता है, मत+औ इस स्थिति में 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि होकर 'मतौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

मति शब्द के शेष रूप हरि के समान होते हैं, इसी प्रकार बुद्धि आदि के होते हैं।

मति शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	,,	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	,,	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु
सम्बोधन	हे मते !	हे मती !	हे मतयः !

इसी प्रकार बुद्धि, भूमि, नीति, आपत्ति, मुक्ति, सूक्ति, शक्ति, स्तुति, भूति, ा, स्मृति, गति, शान्ति, कान्ति, भ्रान्ति, ज्ञाति, जाति, सृष्टि, कीर्ति, धृति, ादि शब्दों के रूप मति शब्द के समान निष्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२५. अचि र ऋतः ७।२।१००॥

तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। गुणदीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः ? तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः।

आमि नुट्।

२२६. न तिसृ चतसृ ६।४।४॥

एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु।

द्वे द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः।

गौरी, गौर्यौ, गौर्यः हे गौरि ! गौर्य इत्यादि। एवं नद्यादयः।

त्रिचतुरो स्त्रियाम्—स्त्रीलिंगवाचक त्रि और चतुर शब्दों के स्थान तिसृ और चतसृ आदेश हो, विभक्ति परे होने पर।

अचिर ऋत—तिसृ और चतसृ शब्द की ऋकार के स्थान में रेफ (रका आदेश हो अच् (स्वर) परे होने पर। गुण और दीर्घः उत्व आदि का अपवा हो। जैसे—

तिस्रः—प्रातिपदिक संज्ञक नित्यबहुवचन त्रि शब्द से प्रथमा तथा द्विती बहुवचन में जस् शस् विभक्ति आती है, अस् शेष रहता है। त्रि+अस् स्थिति में 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ' सूत्र से त्रि को तिसृ आदेश हो जा है तिसृ+अस् इस दशा में यहां तिसृ+अस् इस स्थिति में 'ऋतो ङि सर्वन स्थानयोः' सूत्र से गुण प्राप्त होता है परन्तु उसका बाध हो जाता है 'अचिर ऋतः' सूत्र से सृ की ऋकार को रेफ (र्) आदेश होता है, स् को विसर्ग होकर 'तिस्रः' रूप निष्पन्न होता है।

तिसृभिः—प्रातिपदिक संज्ञक त्रि शब्द से तृतीया बहुवचन में भिस् विभ आती है। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' सूत्र से त्रि को तिसृ आदेश हो जा है। स् को रुत्व विसर्ग होकर 'तिसृभिः' यह रूप निष्पन्न होता है।

तिसृभ्यः—प्रातिपदिक संज्ञक त्रि शब्द से चतुर्थी तथा पञ्चमी बहुवचन भ्यस् विभक्ति आती है। 'त्रिचतुरोः स्त्रियांतिसृ चतसृ' सूत्र से त्रि को ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श होता है, स् को रुत्व विसर्ग होकर 'तिसृभ्यः' यह रूप निष्पन्न है।

न तिसृ चतसृ—इन दोनों तिसृ और चतसृ शब्दों से नाम् के परे होने पर न हो। जैसे—

तिसृणाम्:—प्रातिपदिक संज्ञक त्रि शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति है, त्रि+आम इस स्थिति में 'त्रि चतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ' सूत्र से को 'तिसृ' आदेश हो जाता है, तिसृ+आम् इस स्थिति में 'अचिर ऋतः' से सृ की ऋकार के स्थान में रेफादेश प्राप्त होता है और 'ह्रस्व नो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम प्राप्त होता है, ऐसी स्थिति में पर देश को बाधकर 'नुमचिरतृज्वद्भाव गुणेभ्यो नुट् विप्रतिषेधेन' इस वार्तिक नुसार नुट् का आगम हो जाता है नुट् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है नाम् इस स्थिति में 'नामि' इस सूत्र से दीर्घ प्राप्त होता है परन्तु 'न तिसृ चतसृ' सूत्र से बाध हो जाता है। 'ऋवर्णान्तस्यणत्वं वाच्यम्' वार्तिक से नुट् की न् को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे तिसृणाम्' रूप निष्पन्न होता है।

तिसृषु प्रातिपदिक संज्ञक नित्य बहुवचनान्त त्रि शब्द से स्त्रीलिंग में सप्तमी हुवचन में सुप् विभक्ति आती है। पकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता चतुरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ' सूत्र से त्रि को 'तिसृ' आदेश हो जाता सु को षत्व होकर 'तिसृषु' यह रूप निष्पन्न होता है।

नित्य बहुवचन त्रि शब्द के (स्त्रीलिंग में रूप)

विभक्ति	बहुवचन
प्रथमा	तिस्रः
द्वितीया	,,
तृतीया	तिसृभिः
चतुर्थी	तिसृभ्यः
पञ्चमी	,,
षष्ठी	तिसृणाम्
सप्तमी	तिसृषु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वे—प्रातिपदिक संज्ञक द्विवचनान्त स्त्रीलिंग में द्वि शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है। 'त्यदादीनामः' सूत्र से द्वि के इकार के स्थान में अ' आदेश हो जाता है। द्व+औ इस स्थिति में स्त्रीलिंग की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् होता है 'आ' शेष रहता है 'द्व+आ+औ' इस स्थिति में द्व की अकार और आ को मिलाकर सवर्ण दीर्घ हो जाता है। द्वा+औ इस स्थिति में 'औङ् आपः' सूत्र से औ के शी' आदेश हो जाता है। शकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। द्वा+ई इस दशा में 'आद्गुणः' सूत्र से आ+ई के स्थान में 'ए' गुण हो जाता है जिससे 'द्वे' यह रूप निष्पन्न होता है।

द्वाभ्याम्:—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्रीत्व विवक्षा में द्वि शब्द से तृतीया चतुर्थी तथा पञ्चमी द्विवचन में भ्याम् विभक्ति आती है। 'त्यदादीनामः' से द्वि की इकार को अकार आदेश हो जाता है। द्व शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में' अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् का आगम हो जाता है आ शेष रहता है द्व आ+भ्याम् इस दशा में सवर्ण दीर्घ होकर 'द्वाभ्याम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

द्वयोः—प्रातिपदिक संज्ञक द्वि शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी के द्विवचन में ओस् विभक्ति आती है। 'त्यदादीनामः' सूत्र से द्वि के इकार को अकार अन्तादेश हो जाता है, स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् हो जाता है 'आ' शेष रहता है, सवर्ण दीर्घ होकर द्वा+ओस् इस दशा में 'आङि चापः' सूत्र से द्वा शब्द के आ को एकार आदेश हो जाता है, द्वे+ओस् इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अय् आदेश हो जाता है, स् को रुत्व विसर्ग होकर 'द्वयोः' यह रूप निष्पन्न होता है।

गौरीः—प्रातिपदिक संज्ञक गौरी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है जिससे गौरी यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौर्यौ—प्रातिपदिक संज्ञक गौरी शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के वन में औ विभक्ति आती है। गौरी+औ इस दशा में 'प्रथमयोः पूर्व-ः' सूत्र से दीर्घ एकादेश प्राप्त होता है परन्तु 'दीर्घाज्जसि च' इस सूत्र से का निषेध हो जाता है फिर 'इकोयणचि' सूत्र से यण् (य) हो जाता है से 'गौर्यौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

गौर्यः—इसी प्रकार गौरी शब्द से प्रथमा बहुवचन की जस् विभक्ति में ः' बनता है।

हे गौरि—प्रातिपदिक संज्ञक गौरी शब्द से प्रथमा एकवचन में (सम्बोधन सु विभक्ति आती है, उकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है 'यू स्त्रा-नदी' सूत्र से स्त्रीलिंगवाचक गौरी शब्द की नदी संज्ञा हो जाती है से 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र मे ईकार को ह्रस्व इकार हो जाता है वचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से सु की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। 'एङ्ह्रस्वा-बुद्धेः' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है, इस प्रकार 'गौरी' यह रूप न्न होता है।

गौर्यै—प्रातिपदिक संज्ञक गौरी शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति ी है, ङकार का इत्संज्ञा होने मे लोप हो जाता है, 'यू स्त्राख्यौ नदी' सूत्र दी संज्ञा होती है, 'आण् नद्याः' सूत्र से 'आट्' का आगम होता है, र का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'गौरी+आ=ए' इस दशा आटश्च' सूत्रसे आ+ए को 'ऐ' वृद्धि हो जाती है, गौरी+ऐ इस में 'इकोयणचि' सूत्र से यणादेश होकर 'गौर्यै' यह रूप निष्पन्न होता

इसी प्रकार गौर्याः, गौर्याम् आदि रूप निष्पन्न होते हैं। इसी प्रकार तन्त्री द शब्दों के रूप होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मीः। शेषं गौरीवत्। एवां तरीतन्त्र्यादयः।
स्त्री। हे स्त्रि।

२२७. स्त्रियाः ६।४। ६॥

अस्ये यङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे, स्त्रियौ, स्त्रियः।

गौरी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौरी	गौर्यौ	गौर्यः
द्वितीया	गौरीम्	,,	गौरीः
तृतीया	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
चतुर्थी	गौर्यै	,,	गौरीभ्यः
पञ्चमी	गौर्याः	,,	,,
षष्ठी	,,	गौर्योः	गौरीणाम्
सप्तमी	गौर्याम्	,,	गौरीषु
सम्बोधन	हे गौरि !	हे गौर्यौ !	हे गौर्यः

इसी प्रकार रजनी पत्नी, महिषी, देवी, सुकेशी, नगरी, जननी, दासी कुमारी, सखी, राज्ञी, पुत्री, विदुषी, पत्नी, शर्वरी, भगिनी, दामिनी, मानिनी इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं।

लक्ष्मीः—उणादि ई प्रत्ययान्त प्रातिपदिक संज्ञक लक्ष्मी शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, उकार की इत्सञ्ज्ञा होने से लोप हो जाता है स् को रुत्व विसर्ग हो जाते हैं जिससे 'लक्ष्मीः' यह रूप निष्पन्न होता है यहां लक्ष्मी शब्द की ईकार ङीप् ङीन् ङीष् प्रत्ययान्त नहीं है। अतः 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु का स् का लोप नहीं होता अर्थात् लक्ष्मी शब्द की ईकार ङ्यन्त न होने के कारण सु का लोप नहीं हुआ है।

शेष लक्ष्मी शब्द के रूप गौरी के समान होते हैं, अर्थात् लक्ष्म्याः, लक्ष्म्याः, आदि रूप गौर्या, गौर्यै, गौर्याः आदि के समान होते हैं।

इसी प्रकार तरी तथा तन्त्री आदि अङ्यन्त शब्दों के रूप होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लक्ष्मी:	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्य:
द्वितीया	लक्ष्मीम्	,,	लक्ष्मी:
तृतीया	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभि:
चतुर्थी	लक्ष्म्यै	,,	लक्ष्मीभ्य:
पञ्चमी	लक्ष्म्या:	,,	,,
षष्ठी	,,	लक्ष्म्यो:	लक्ष्मीनाम्
सप्तमी	लक्ष्म्याम्	,,	लक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे लक्ष्मी !	हे लक्ष्म्यौ !	हे लक्ष्म्य: !

स्त्री--प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति ती है, उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुति-पृक्त हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है, इस प्रकार 'स्त्री' यह निष्पन्न होता है।

स्त्रि—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से सम्बोधन में प्रथमा एकवचन में विभक्ति आती है, "यूस्त्राख्यौ नदी" सूत्र नदी संज्ञा होती है, जिससे म्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से सु की ईकार को ह्रस्व इकार हो जाता है, वचनं सम्बुद्धि:' सूत्र से सु की सम्बुद्धि संज्ञा होने से 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे:' से सु का लोप हो जाता है, जिससे हे स्त्रि यह रूप निष्पन्न होता है।

स्त्रिया:—स्त्री शब्द को इयङ् आदेश हो अजादि (अर्थात् औ, जस्→ शस्→अस्, टा→आ, ङे→ए, ङसि→अस्, ङस्→अस्, ओस् आम्, →इ ओस्, आदि) विभक्तियों के परे। जैसे—

स्त्रियौ—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में ' विभक्ति आती है, 'स्त्री+औ' इस दशा में 'स्त्रियाः' सूत्र से स्त्री की ईकार स्थान में इयङ् आदेश हो जाता है, इय शेष रहता है, स्त्रियौ' यह रूप पन्न होता है।

स्त्रिय:—इसी प्रकार स्त्री शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति के परे ङादेश होकर स् को रुत्व विसर्ग होकर 'स्त्रियः' रूप बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२८. वाऽम् शसोः ६।४।८०॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्। स्त्रियम, स्त्रीम्। स्त्रिय स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः। परत्वान्नुट् स्त्रीणाम्। स्त्रीषु।

वाम् शसोः—अम् तथा शस् विभक्ति के परे रहते स्त्री शब्द के स्थान विकल्प से इयङ् आदेश होता है। जैसे—

स्त्रियम्—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से द्वितीया एकवचन में अ विभक्ति आती है। स्त्री+अम् इस दशा में 'वाऽमू शसोः' सूत्र से विकल्प स्त्री शब्द की ईकार को इयङ् आदेश होता है। इय् शेष रहता है, इस प्रका 'स्त्रियम्' यह रूप बनता है, पक्ष में 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप होकर 'स्त्री यह रूप निष्पन्न होता है।

स्त्रियः स्त्रीः—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से द्वितीया बहुवचन में श विभक्ति आती है, अस् शेष रहता है, 'वाम् शसोः' सूत्र से स्त्री की ईकार इयङ् आदेश होता है, इय् शेष रहता है, स् को रुत्व विसर्ग होकर 'स्त्रिय बनता है, पक्ष में स्त्री+अस् इस दशा में 'प्रथमयोः पूर्ण सवर्णः' सूत्र से दी हो जाता है। स्त्रीस् की स् को रुत्व विसर्ग होकर 'स्त्री' यह रूप निष्प होता है।

स्त्रिया—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभ आती है, आ शेष रहता है, 'स्त्रियाः' सूत्र से स्त्री की ईकार को ईकार इयङ् आदेश हो जाता है, इय् शेष रहता है, इस प्रकार 'स्त्रिया' यह रू निष्पन्नहोता है।

स्त्रियै—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभ आती है, ङकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, स्त्री+ए इस दशा नदी संज्ञा होकर 'आण नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है, टकार इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'आटश्च' सूत्र से आ+ए को ऐ वृद्धि जाती है। 'स्त्री+ऐ' इस दशा में 'स्त्रियाः' सूत्र से स्त्री की ईकार को इय आदेश होता है, इय् शेष रहता है, इस प्रकार 'स्त्रियै' यह रूप निष्पन्न होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीः श्रियौ । श्रियः ।

२२६. नेयङुवङ् स्थानावस्त्री १।४।४॥

इयङ्वङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदी संज्ञौ न स्तः, नतु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै, श्रिये । श्रियाः २, श्रियः २ ।

स्त्रियां—इसी प्रकार स्त्री शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि, तथा ङस् विभक्ति में आती है, अस् शेष रहता है । नदी संज्ञा होकर आट् का आगम और 'आटश्च' सूत्र से वृद्धि होकर स्त्री+आस् इस दशा में 'स्त्रियाः' सूत्र से इयङ् आदेश हो जाता है। इय् शेष रहता है । स् को रुत्व विसर्ग होकर 'स्त्रियाः' यह रूप निष्पन्न होता है ।

स्त्रीणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक स्त्री शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है । 'वाऽम् शसोः' सूत्र से विकल्प से इयङ् आदेश प्राप्त होता है । परन्तु नदी संज्ञा होने से ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से परे होने के कारण इयङ् को बांधकर नुट् का आगम हो जाता है । उट् की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है । 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न को णत्व (ण) हो जाता है जिससे 'स्त्रीणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है ।

स्त्री शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	स्त्रियः स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	,,	,,
षष्ठी	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
सम्बोधन	हे स्त्रि !	हे स्त्रियौ !	हे स्त्रियः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३०. वाऽमि १।४।५।।

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदी संज्ञौ स्तः नतु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियाम्, श्रियि।

प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। र् को रुत्व विसर्ग होकर श्रीः निष्पन्न होता है। यहां शब्द की ईकार ङीप्, या ङीष् या ङीन् प्रत्यय की ईकार नहीं है। अतः 'हल् ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से स् का लोप नहीं होता है।

श्रियौ—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में औ विभक्ति आती है। 'अचिश्नु धातु भ्रुवाम्' इत्यादि सूत्र से इयङादेश हो जाता है। इय् शेष रहता है। इस प्रकार 'श्रियौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

श्रियः—इसी प्रकार श्री शब्द से प्रथमा बहुवचन में इयङ आदेश होकर स् को रुत्व विसर्ग होकर 'श्रयः' बनता है।

नेयङुवङ्ऊ—जिन ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों से इयङ् तथा उवङ् आदेश होता है, उन ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की नदी संज्ञा होती है। स्त्री शब्द को छोड़कर अर्थात् स्त्री शब्द के अतिरिक्त इयङ् उवङ् स्थानी इकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों की संज्ञा होती है। जैसे—

हे श्री—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से सम्बोधन में प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है जिससे 'श्रीः' यह रूप निष्पन्न होता है।

श्रियै, श्रिये—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है। 'ङिति ह्रस्वश्च' सूत्र से विकल्प से श्री शब्द की नदी संज्ञा हो जाती है। 'आण् नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है। टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। श्री + आ + ए इस स्थिति में 'आटश्च' सूत्र से आ + ए को 'ऐ' वृद्धि हो जाती है। 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्र से श्री की ईकार के स्थान में इयङ आदेश हो जाता है। इय् शेष रहता है। इस प्रकार 'श्रियै' यह रूप निष्पन्न होता है। पक्ष में अर्थात् नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में केवल इयङ् आदेश होने से 'श्रिये' यह रूप निष्पन्न होता है।

श्रियाः, श्रिय—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि, ङस विभक्ति आती है। अस् शेष रहता है। 'ङिति ह्रस्वश्च' सूत्र से विकल्प से श्री शब्द की नदी संज्ञा होती है, 'आण् नद्याः' सूत्र से आट् का आगम हो जाता है। टकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। श्री+आ+अस् स्थिति में 'आटश्च' सूत्र से आ+अ को 'आ' वृद्धि हो जाती है, स् को रुत्व विसर्ग होकर 'श्रियाः' बनता है। पक्ष में नदी संज्ञा के अभाव में आट् का आगम् नहीं होता है; केवल इयङ आदेश होता है और स् को रुत्व होकर विसर्ग होकर 'श्रियः' यह रूप निष्पन्न होता है और स् को रुत्व विसर्ग होकर 'श्रियः' यह रूप निष्पन्न होता है।

वाऽऽमि—इयङ्, तथा उवङ् स्थानी जो स्त्रीवाचक ईकार और ऊकार शब्द उनमे आम् विभक्ति परे होने पर विकल्प से नदी सज्ञा होती है। जैसे—

श्रीणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है। 'वाऽऽमि' सूत्र से विकल्प से श्री शब्द की नदी संज्ञा होती है। ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम् हो जाता है। उट् का इत्सज्ञा होने से लोप हो जाता है।' अट् कुप्वाङ् नुम् व्यववायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे 'श्रीणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है। नदी सज्ञा के अभाव पक्ष में 'अचिश्नुधातुभ्र वाम् यवोरियङुवङौ' सूत्र से इयङ् आदेश हो जाता है। इय् शेष रहता है जिससे 'श्रियाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

श्रियाम् श्रियि—प्रातिपदिक संज्ञक श्री शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है। ङिति ह्रस्वश्च' सूत्र से श्री शब्द की विकल्प से नदी सज्ञा होती है। नदी सज्ञा होने पर 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' सूत्र से ङि के स्थान पर आम् आदेश हो जाता है। श्री+आम् इस स्थिति में 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम् यवोरियङुवङौ' सूत्र से श्री की ईकार के स्थान मे इयङ् आदेश हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धेनुर्मतिवत् ।

२३१. स्त्रियां च ।७।१।९६॥

स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्दस्तृज वद्रूपं लभते ।

२३२. ऋन्नेभ्यो ङीप् ।४।१।५॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् । क्रोष्ट्री गौरीवत् ।

जाता है । इय् शेष रहता है । 'श्रियाम् बनता है । पक्ष में (नदी संज्ञा के अभाव पक्ष में) केवल इयङ आदेश होकर 'श्रियि' रूप यह रूप निष्पन्न होता है ।

श्री शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	,,	,,
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रियः	,,	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियाः, श्रियः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	श्रियोः	,,
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्रीः !	हे श्रियौ !	हे श्रियः !

धेनु केब्द के रूप मति शब्द के समान होते हैं ।

स्त्रियां चः— स्त्रीवाचक कोष्टृ शब्द तृज्जवत् रूप प्राप्त करता है अर्थात् स्त्रीवाचक कोष्टु शब्द से तृज्वद्भाव होकर क्रोष्ट्री के रूप गौरी शब्द के समान होते हैं ।

ऋन्नेभ्यो ङीप्—ऋकारान्त तथा नकारान्त स्त्रीवाचक शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में अर्थ ङीप् होता है । जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोष्ट्री:— प्रातिपदिक संज्ञक स्त्रीवाचक क्रोष्टु शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। 'स्त्रियां च' सूत्र के स्त्रीलिंग के अर्थ में क्रोष्टु को तृज्वद्भाव हो जाता है अर्थात् क्रोष्टृ हो जाता है। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' सूत्र से क्रोष्टृ शब्द से ङीप् हो जाता है 'ई' शेष रहता है, क्रोष्टृ+ई+सु इस स्थिति में 'इकोयणचि' सूत्र से ऋकार के स्थान में यण् 'र्' हो जाता है, सु की उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है, जिससे 'क्रोष्ट्री' यह रूप बनता है।

क्रोष्ट्री शब्द के रूप गौरी के समान चलते हैं।

उकारान्त शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	,,	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	,,	,,
षष्ठी	,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु
सम्बोधन	हे धेनोः !	हे धेनू !	हे धेनवः !

क्रोष्ट्री शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्ट्री	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्र्यः
द्वितीया	क्रोष्ट्रीम्	,,	क्रोष्ट्रीः
तृतीया	क्रोष्ट्र्या	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभि
चतुर्थी	क्रोष्ट्र्यै	,,	क्रोष्ट्रीभ्यः
पञ्चम	क्रोष्ट्र्याः	,,	,,
षष्ठी	,,	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीणाम्
सप्तमी	क्रोष्ट्र्याम्	,,	क्रोष्ट्रीषुः
सम्बोधन	हे क्रोष्ट्रि !	हे क्रोष्ट्र्यौ !	हे क्रोष्ट्र्यः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३३. न षट् स्वस्रादिभ्यः ४।१।५०॥

ङीप्टापौ न स्तः ।

स्वसा तिसृश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा
याता मातेति सप्तैते स्वस्रदाय उदाहृता ।

स्वसा स्वसारौ । माता पितृवत् । शसि मातॄः । इति ऋदन्ताः

भ्रू शब्द के रूप श्री शब्द समान होते हैं । स्वयम्भू शब्द के रूप पुंलिग के समान ही होते हैं ।

भ्रू शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः
द्वितीया	भ्रुवम्	"	"
तृतीया	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः
चतुर्थी	भ्रुवै, भ्रुवे	"	भ्रूभ्यः
पञ्चमी	भ्रुवाः, भ्रुवः	"	"
षष्ठी	" "	भ्रुवो, भ्रूणाम्	भ्रुवाम्
सप्तमी	भ्रुवां, भ्रुवि,	"	भ्रूषु
सम्बोधन	हे भ्रूः !	हे भ्रुवौ !	हे भ्रुवः

स्वयम्भू शब्द के रूप पुंलिग में देखिये ।

न षट् स्वस्रादिभ्यः—षट् संज्ञा वाले शब्दों से तथा स्वसृ आदि शब्दों से ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होते हैं अर्थात् स्त्रीलिंग के अर्थ में होने वाले ङीप् और टाप् प्रत्यय षट् संज्ञक तथा स्वस्रादि गण में पढ़े हुए शब्दों से नहीं होते हैं । जैसे स्वसा आदि ।

षट् संज्ञक अर्थात् 'षण्णान्ता षट्' सूत्र से षकारन्त तथा नकारान्त शब्दों की षट् संज्ञा होती है, उनसे स्त्रीत्व विवक्षा में प्राप्त टाप् और ङीप् प्रत्यय नहीं हो । स्वस्रादि सात शब्दों का प्रस्तुत कारिका में परिगणन करते हुए कहा है—कि (१) स्वसृ, (२) तिसृ, (३) चतसृ, (४) ननान्दृ, दुहितृ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) यातृ और (७) मातृ शब्द से सात शब्द स्वस्रादि शब्द से अभिहित किये गये हैं। इनसे 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' सूत्र से प्राप्त ङीप का निषेध हो जाता है।

स्वसा—प्रातिपदिक संज्ञक स्वसृ शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है। 'ऋन्नेभ्यो ङीप् सूत्र से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्राप्त होता है परन्तु न 'षट् स्वस्रादिभ्यः' सूत्र से ङीप् का निषेध हो जाता है। 'ऋदुशनस्-पुरुदंशोऽनेहसां च' सूत्र से स्वसृ की ऋकार के स्थान में 'अनङ्' आदेश हो जाता है, ङकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। स्वसान्+स् इस स्थिति में 'अप्तृन्निति' इत्यादि सूत्र से उपधा को दीर्घ हो जाता है, स्वसान्+स् इस दशा में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का लोप हो जाता है, इस प्रकार 'स्वसा' यह रूप निष्पन्न होता है।

स्वसारौ—प्रातिपदिक संज्ञक स्वसृ शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है स्त्रीत्व विवक्षा में प्राप्त ङीप् का न षट् स्वस्रादिभ्यः' सूत्र से निषेध हो जाता है। ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः' सूत्र से ऋ के स्थान में रपर होकर अर्, गुण हो जाता है। 'अप् तृन्निति' इत्यादि सूत्र से उपधा को दीर्घ हो जाता है जिससे 'श्वसारौ' यह रूप निष्पन्न होता है।

स्वसृ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	,,	स्वसृ
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	,,	स्वसृभ्यः
पञ्चमी	स्वसुः	,,	,,
षष्ठी	,,	स्वस्रोः	स्वसृणाम्
सप्तमी	स्वसरि	,,	स्वसृषु
सम्बोधन	हे स्वसः !	हे स्वसारौ !	हे स्वसारः !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यौर्गोवत् । रा पुंवत् । नौ ।

इत्यजन्त स्त्रीलिंग प्रकरणम्

मातृ शब्द के रूप पितृ शब्द के समान रूप होते हैं, केवल द्वितीया वहुवचन शस् विभक्ति में 'मातृः' यह रूप होता है।

मातृ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	,,	मातृः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	,	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	,,	,,
षष्ठी	,,	मात्रोः	मातृणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः !	हे मातरौ	हे मातरः

द्यौः (स्वर्ग) शब्द के रूप गो शब्द के समान होते हैं।

द्यौ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुबचन
प्रथमा	द्यौः	द्यावौ	द्यावः
द्वितीया	द्याम्	,	द्याः
तृतीया	द्यवा	द्योभ्याम्	द्योभिः
चतुर्थी	द्यवे	,,	द्योभ्यः
पञ्चमी	द्योः	,,	,,
षष्ठी	,,	द्यवोः	द्यवाम्
सप्तमी	द्यवि	,,	द्योषु
सम्बोधन	हे द्योः !	हे द्यावौ !	हे द्यावः

रै शब्द के रूप पुल्लिग के समान राः, रायौ, रायः आदि होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौ शब्द के रूप ग्लौ शब्द के समान चलते हैं। जैसे—

नौ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
द्वितीया	नावम्	"	"
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	"	नौभ्यः
पञ्चमी	नावः	"	"
षष्ठी	"	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	"	नौषु
सम्बोधन	हे नौः !	हे नावौ !	हे नावः

इति अजन्त स्त्रीलिंग प्रकरणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ अजन्त-नपुंसकलिंग प्रकरणम्

२३४. अतोऽम् ७।१।२४॥

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम् । अमि पूर्वः–ज्ञानम् । एङ् ह्रस्वादिति इति हल्लोपः–हे ज्ञान ।

२३५. नपुंसकाच्च ७।१।१९॥

क्लीबादौङः शी स्यात् । भ संज्ञालाम् ।

२३६. यस्येति च ६।४।१४८॥

ईकारे तद्धिते च परे, भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः । इत्यल्लोपे प्राप्ते–

(वा) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः । ज्ञाने ।

अतोऽम्—अकारान्त नपुंसकलिंग शब्द के अदन्त अङ्ग से सु और अम् विभक्ति के परे होने पर सु और अम् को अम् आदेश हो । जैसे—

ज्ञानम्—प्रातिपदिक संज्ञक ज्ञान शब्द से नपुंसकलिंग में प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है । 'अतोऽम्' सूत्र से सु को अम् आदेश होता है 'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप से हो जाता है जिससे ज्ञानम् यह रूप निष्पन्न होता है ।

हे ज्ञान—प्रातिपदिक संज्ञक ज्ञान शब्द से नपुंसकलिंग में सम्बोधन प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति आती है । 'एकवचन सम्बुद्धिः' सूत्र से सु की सम्बुद्धि सज्ञा हो जाती है । 'अतोऽम्' सूत्र से सु को अम् आदेश हो जाता है 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप होकर ज्ञानम् बनता है । इस दशा में 'एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' सूत्र से हल् म् का लोप हो जाता है जिससे 'हे ज्ञान' यह रूप निष्पन्न होता है ।

नपुंसकाच्च—नपुंसकलिंग के अङ्ग से परे औङ् के स्थान पर 'शी' आदेश होता है । औ, और औट् को औङ् के नाम से अभिहित किया गया है, भसंज्ञा होने पर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३७. जश्शो शिः ७।१।२०॥

क्लीवाद नयोः शिः स्यात्

२३८. शि सर्वनामस्थानम् १।१।४।२।

शि इत्येतद् उक्त संज्ञः स्यात्।

२३९. नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२॥

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीवस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने

यस्येति च'—ईकार तथा तद्धितीय प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक अंग की तथा उकार का लोप होता है।

इस सूत्र से अकार का लोप प्राप्त होने पर

औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः—औङ् अर्थात् औ तथा औट् के स्थान में शी होने पर यस्येति च' सूत्र से प्राप्त 'अ' के लोप का प्रतिषेध हो जाता से :—

ने—प्रातिपदिक संज्ञक ज्ञान शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति में विभक्ति आती है। 'नपुंसकाच्च सूत्र से 'औ' के स्थान में शी आदेश हो है। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शी की शकार की इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' लोप हो जाता है। ज्ञान + ई इस स्थिति में 'यचिभम्' सूत्र से ज्ञान की हो जाती है फिर 'यस्येति च' सूत्र से ज्ञान के आकार का लोप प्राप्त है परन्तु 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' इस वार्तिक से औङ् (औ) के स्थान आदेश होने पर 'यस्येति च' सूत्र से प्राप्त अकार के लोप का प्रतिषेध ता है फिर 'आद्गुणः' सूत्र से नकारोत्तरवर्ती अ तथा ई को मिलाकर 'ए' एकादेश हो जाता है जिससे 'ज्ञाने' यह रूप बनता है।

जश्शसोः शि—नपुंसक लिंग के अंग से परे जस् और श[स्] विभक्ति के में 'शि' आदेश होता है।

शि सर्वनामस्थानम्—जस् तथा शस् विभक्ति की 'शि' की सर्वनाम संज्ञा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४०. मिदचोऽन्त्यात् परः १।१।४७॥

अचां मध्ये योऽन्त्यः तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात् । उ दीर्घः— ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् शेषं पुंवत् । एवं धनवनफलादयः ।

नपुंसकस्य झलचः—झलन्त तथा अजन्त नपुंसकलिंग के अंग को नुम् आगम होता है । सर्वनाम स्थान के परे रहते ।

मिदचोऽन्त्यात् परः—अचों के मध्य में जो अन्तिम अच् उससे परे, जिसके स्थान पर आगम आदि का विधान किया गया है उसका अन्तिम अ मित् होता है ।

ज्ञानानि—प्रातिपदिक संज्ञक ज्ञान शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के बहु में जस् तथा शस् विभक्ति आती है । जश्शसोःशि सूत्र से जस् तथा शस् शि आदेश हो जाता है । 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शकार की इत्संज्ञा हो 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप हो जाता है । 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से की सर्वनाम संज्ञा हो जाती है ।

ज्ञान + इ इस दशा में मित् होने के कारण 'मिदचोऽन्त्यात्परः सूत्र सहायता से 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से ज्ञान शब्द के अन्त अवयव से नुम् आगम होता है । नुम् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है ।

ज्ञान न् + इ इस दशा में 'सर्वनाम स्थाने चाऽसम्बुद्धौ' सूत्र नान्त को दीर्घ हो जाता है जिससे 'ज्ञानानि' यह रूप निष्पन्न होता है ।

प्रथमा (ज्ञानं, ज्ञाने, ज्ञानानि) के समान द्वितीया के भी रूप ज्ञानं, ज्ञानानि होते हैं । शेष रूप (तृतीया से सप्तमी तक के रूप) राम शब्द के होते हैं ।

ज्ञान शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ज्ञानं	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
तृतीया	ज्ञानाय	,,	ज्ञानेभ्यः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. अद्डडतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५॥

य क्लीवेभ्यः स्वमोरदङ् आदेशः स्यात्।

२. टेः ६।४।१४३॥

भस्य टे र्लोपः। कतरद्, कतरत्, कतरे। कतराणि। हे कतरत्।
वत्। एव कतमत्, इतरत्। अन्यत्। अन्यतमस्य तु अन्यत-
त्।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	ज्ञानात्	,,	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
षष्ठी	ज्ञाने	,,	ज्ञानेषु
सप्तमी	हे ज्ञान !	हे ज्ञाने !	हे ज्ञानानि !

प्रकार धन, वन, कमल, पुष्प, पुस्तक, फल, वित्त, काष्ठ, गृह, भवन,
त, चित्र, कलत्र, नेत्र, नयन, दैव, सत्य, वचन, कथन, स्थान, कार्य
जल, नीर, मुख, आनन, चित्त, हृदय, मानस, उपवन, उद्यान, नगर,
डल, वृत्त, रत्न इत्यादि शब्दों के रूप ज्ञान के समान होते हैं।

डडतरादिभ्यः—डतर, उतम, अन्य, अन्यतर, इतर, इन पाँच डतरादि
ग के अंग से परे सु, और अम् विभक्ति को अदड् आदेश होता है।
ादि से उतर, डतम यत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है अर्थात्
र कतम शब्दों का ग्रहण होता है। अन्यतर यह एक स्वतन्त्र अव्यु
है। अन्यतर को डतर प्रत्ययान्त नहीं समझना चाहिये।

—भसज्ञक 'टि' का लोप होता है, डित् प्रत्यय परे रहते।

द्, कतरत्—प्रातिपदिक संज्ञक कतर शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु'
आती है। 'अद्ड्डतरादिभ्यः' सूत्र से सु के स्थान में 'अदड्' आदेश
ड् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, कतर+अद् इस स्थिति में
से भसंज्ञक कतर शब्द के अंग की 'टि' का अर्थात् रकारोत्तरवर्ती 'अ'
हो जाता है, 'कतरद्' इस स्थिति में 'वाऽवसाने' सूत्र से विकल्प से द्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चर्त्व त् हो जाता है, जिससे कतरद् तथा कतरत् ये दो रूप नि होते हैं।

कतरे—प्रातिपदिक संज्ञक कतर शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवच 'अ' विभक्ति आती है 'नपुंसकाच्च' सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश है। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शकार की इत्संज्ञा होती हैं फिर श् का लो जाता है। भसंज्ञक कतर शब्द की रकारोत्तरवर्ती 'अ' का 'यस्येति च' सू लोप प्राप्त होता है, उसका 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' वार्तिक से निषे जाता है। कतर+ई इस दशा में 'आद्गुणः' सूत्र से ए गुण हो जाता है 'कतरे' यह रूप निष्पन्न होता है।

कतराणि—प्रातिपदिक संज्ञक कतर शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के वचन में जस् तथा शस् विभक्ति आती है 'जश्शसोः शि' सूत्र से जस् शस् के स्थान में 'शि' आदेश हो जाता है कतर+इ इस दशा में मि ऽन्त्यात्परः' इस सूत्र के नियमानुसार 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से नुम आगम हो जाता है। उम् का इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। कत इस दशा में 'शि' सर्वनाम स्थानम् सूत्र से 'शि' की सर्वनाम स्थान संज्ञा है जिससे 'सर्वनामस्थानेचाऽसम्बुद्धौ' सूत्र से नान्त उपधा को दीर्घ हो जा 'कतरानि' की न को 'अट्कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि सूत्र से न को (ण) हो है जिससे 'कतराणि' यह रूप निष्पन्न होता है।

हे कतरत्—प्रातिपदिक संज्ञक कतर शब्द से प्रथमा एकवचन सम्ब में सु विभक्ति आती है। 'अद्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः' सूत्र से सु के स्था 'अदड्' आदेश हो जाता है। 'टेः' सूत्र से रकारोत्तरवती 'अ' का का) लोप हो जाता है। वाऽवसाने' सूत्र से विकल्प से द् को चर्त्व त् हो है जिससे कतरत् तथा कतरद् ये रूप बनते हैं। यहां सम्बुद्धि संज्ञा ह 'एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'' सूत्र से सम्बोधन की स् के लोप की शंका करनी चाहिये क्योंकि कतर शब्द से परे सु के स्थान में 'अदड्' होने पर 'टेः' सूत्र से कतर+अद् की रकारोत्तरवर्ती 'अ' का टि ल जाता है। कतर् अद् इस दशा में कतर् शब्द ह्रस्वान्त नहीं रह जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा० एकतरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः । एकतरम् ।

२४३. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ।१।२४७।।

अजन्तस्येत्येव । श्रीपम् ज्ञानवत् ।

पि तु हलन्त हो जाता है । हलन्त से सु का लोप नहीं प्राप्त होता है ।

कतर शब्द के शेष रूप तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी के पुल्लिग के समान होते हैं ।

कतर शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कतरद्, कतरत्	कतरे	कतराणि
द्वितीया		"	"
तृतीया	कतरेण	कतराभ्याम्	कतरैः
चतुर्थी	कतरस्मै	"	कतरेभ्यः
पञ्चमी	कतरस्मात्	"	"
षष्ठी	कतरस्य	कतरयोः	कतमेषाम्
सप्तमी	कतरस्मिन्	"	कतरेषु
सम्बोधन	हे कतरद्, हे कतरत् !	हे कतरे !	हे कतराणि !

कतर शब्द के समान ही कतमत् इतरत् अन्य तररत्, शब्दों के रूप होते हैं ।

अन्यतम शब्द के रूप तो ज्ञान शब्द के समान ही होते हैं । अतः अन्यतमम् न्यतमे, अन्यतमानि इत्यादि रूप होते हैं ।

एकतरात्प्रतिषेधो व०—एकतर शब्द से सु के स्थान में अदड् आदेश का तिषेध कहना चाहिये अर्थात् एकतर शब्द के सु के स्थान में 'अदड्डतरादिभ्यः' सूत्र से प्राप्त 'अदड्' आदेश का प्रतिषेध होता है । जैसे—

एकतरम्—प्रातिपदिक संज्ञक एकतर शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है । 'अदड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः' सूत्र से 'सु' के स्थान पर अदड् आदेश प्राप्त होता है, उसका 'एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः' वार्तिक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिषेध हो जाता है। 'अतोऽम्' सूत्र से 'सु को 'अम्' आदेश हो जाता है। एकतर+अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वं' सूत्र से पूर्व रूप हो जाता है, जिससे एकतरम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

एकतर शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एकतरम्	एकतरे	एकतराणि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	एकतरेण	एकतराभ्याम्	एकतरैः
चतुर्थी	एकतरस्मै	"	एकतरेभ्यः
पञ्चमी	एकतरस्मात्	"	"
षष्ठी	एकतरस्य	एकतरयो	एकतरेषाम्
सप्तमीं	एकतरस्मिन्	"	एकतरेषु
सम्बोधन	हे एकतर !	हे एकतरे !	हे एकतराणि !

ह्रस्वो नपुंसके०—प्रातिपदिक संज्ञक अजन्त शब्द के अंग को नपुंसक लिंग में ह्रस्व होता है। जैसे—

श्रीपम्—पातिपदिक संज्ञक श्रीपा शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, श्रीपा शब्द नपुंसकवाचक होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से अकारान्त श्रीपा शब्द को अकारान्त ह्रस्व श्रीप शब्द हो जाता है, 'अतोऽम्' इसु सूत्र से अदन्त श्रीप शब्द से सु को अम् हो जाता है। 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप हो जाता है, जिससे 'श्रीपम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

श्रीपा शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवदन
प्रथमा	श्रीपम्	श्रीपे	श्रीहाणि
द्वितीया	"	"	श्रीपेभ्य
तृतीया	श्रीपेण	श्रीपाभ्याम्	श्रीपैः
चतुर्थी	श्रीपाय	"	"
पञ्चमी	श्रीपात्	"	"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४४. स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३॥

लुक् स्यात्। वारि।

२४५. इकोऽचि विभक्तौ ७।२।७३॥

इगन्तस्य नुत् अचि विभक्तौ। वारिणी। वारिणि। न लुमता इत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः—हे वारे, हे वारि 'आङो ना—वारिणा। 'घेर्ङिति' इति गुणे प्राप्ते—

वा० वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव गुणेभ्यो नुम् पूर्व विप्रतिषेधेन। वारिणे। वारिणः। वारिणः। वापिणोः। 'नुमचिः' इति नुट्—वारीणाम्। हलादौ हरिवत्।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	श्रीपस्य	श्रीपयोः	श्रीपाणाम्
सप्तमी	श्रीपे	,,	श्रीपेषु
सम्बोधन	हे श्रीप !	हे श्रीपे !	हे श्रीपाणि !

स्वमोर्नपुंसकात्—नपुंसकवाचक शब्दों से परे सु और अम् विभक्ति का लुक् अर्थात् लोप हो जाता है। जैसे—

वारि—प्रातिपदिक संज्ञक 'वारि' शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति आती है। 'स्वमोर्ननुंसकात्' सूत्र से सु का लुक् अर्थात् लोप हो जाता है, जिससे 'वारि' यह रूप निष्पन्न होता है।

वारिणी—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आती है, 'नपुंसकाच्च' सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश हो जाता है। लशक्वतद्धिते' सूत्र से शकार की इत्संज्ञा हो जाती है, 'तस्य लोपः' सूत्र से श् का लोप हो जाता है, वारि+इ इस स्थिति में 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, वारि न्+ई इस दशा में 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण्) हो जाता है, जिससे 'वारिणी' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारीणि—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आती है। 'जश्शसोः शि' सूत्र से जस् के स्थान पर 'शि' आदेश हो जाता है, शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से शि की सर्वनाम सञ्ज्ञा हो जाती है, नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। वारि न् इ इस स्थिति में 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ हो जाता है। 'अट् कुटप्वाङ नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे 'वारीणि' यह रूप निष्पन्न होता है।

न लुमतेति०— 'न लुमताङ्गस्य' इस सूत्र की अनित्यता की पक्ष में सम्बुद्धि को मानकर होने वाला गुण हो जाता है जिससे हे वारे! पक्ष में हे वारि! ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

हे वारे! हे वारि!— प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से प्रथमा एकवचन सम्बोधन में सु विभक्ति आती है। 'एकवचन सम्बुद्धिः' सूत्र से सु की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है। सु की उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'एङ्-ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सु की स् का लोप हो जाता है। 'प्रत्ययलोपे प्रत्यय-लक्षणम्' सूत्र से लुप्त सु की पुनः उपस्थिति मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' सूत्र से इकार को 'ए' गुण प्राप्त होता है, और हे वारि! यह रूप निष्पन्न होता है। परन्तु 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र को अनित्य मानकर अथवा अनित्य पक्ष में गुण हो जाता है, जिससे हे वारे! यह रूप निष्पन्न होता है। इस प्रकार न लुमताङ्गस्य सूत्र के अनित्य पक्ष में गुण और नित्य पक्ष में गुण का निषेध हो जाता है।

वारिणा—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है। 'शेषोध्यसखि' सूत्र से वारि शब्द की घि संज्ञा हो जाती है। 'आङोनाऽस्त्रियाम्' सूत्र से आङ् अर्थात् टा के स्थान में ना आदेश हो जाता है, 'वारि ना' इस दशा में अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे 'वारिणा' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घेर्ङिति—इस सूत्र से गुण प्राप्त होने पर।

वा० वृद्ध्यौत्वतृज्वद्०—वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव और गुण प्राप्त होने पर इनकी अपेक्षा पूर्व प्रतिषेध के अनुसार नुम् होता है अर्थात् जहां एक स्थान में वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव गुण तथा नुम् एक साथ प्राप्त हों। वहां पूर्व विप्रतिषेध से नुम् ही होता है। जैसे—

वारिणे—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से चतुर्थी एकवचन में ङे विभक्ति आती है, ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'वारि+ए' इस स्थिति में 'शेषोध्यसखि' सूत्र से वारि शब्द की घि संज्ञा हो जाती है, 'घेर्ङिति' सूत्र से घि संज्ञक इकार के स्थान में 'ए' गुण प्राप्त होता है, तथा 'इकोऽचिविभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम प्राप्त होता है। एक साथ दो कार्य वारि की,इकार को मानकर कैसे हो? अतः 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव गुणेभ्यो-नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से गुण की अपेक्षा नुम् बलवान् होता है। अतः नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'वारि न् ए' इस दशा में 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे 'वारिणे' यह रूप निष्पन्न होता है।

वारिणी—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि तथा ङस् विभक्ति आती है। अस् शेष रहता है। वारि+अस्' इस दशा में 'शेषोध्यसखि' सूत्र से वारि शब्द की घिसंज्ञा हो जाती है। 'घेर्ङिति' से इकार को 'ए' गुण प्राप्त होता है और 'इकोऽचिविभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम प्राप्त होता है। वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव गुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के नियमानुसार वृद्धि, औत्व, तथा गुण की अपेक्षा नुम् का आगम बलवान् होता है, अतः गुण का प्रतिषेध करके नुम् का आगम हो जाता है। उम् की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। 'वारिन् अस्' इस स्थिति में 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेपि' सूत्र से नकार को णत्व (ण्) हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग हो जाता है। इस प्रकार 'वारिणः' यह रूप निष्पन्न होता है।

वारिणोः—इसी प्रकार वारि शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओस् विभक्ति आने पर नुम् का आगम होकर न शेष रहता है। न् को ण् तथा स् को रुत्व विसर्ग होकर 'वारिणोः' निष्पन्न होता है।

वारिणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् विभक्ति आती है। वारि+आम् इस दशा में 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम प्राप्त होता है और 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम प्राप्त होता है। ऐसी दशा में 'नुमचिरतृज्वद्भावगुणेभ्योनुट् पूर्वं विप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के नियमानुसार नुम् को बांधकर नुट का आगम हो जाता है। उट् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। वारि+नाम् इस स्थिति में नामि' इस सूत्र से इकार को दीर्घ ईकार हो जाता है। 'अटकुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न को णत्व (ण्) हो जाता है। इस प्रकार 'वारीणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

यद्यपि नुम् तथा नुट् दोनों के होने पर न् शेष रहता है तथापि 'वारीणाम् जैसे स्थलों में नुम् का आगम होने पर 'नामि' सूत्र से दीर्घ नहीं होगा। क्योंकि नुम्, शब्द का अर्थात् वारि को अंग माना जाता है। अतः नुम् होने पर 'वारिन् आम्' यह माना जायेगा। इस स्थिति में 'नामि' से दीर्घ नहीं हो सकता है। नुट् का आगम आम् का अंग माना जायेगा। अतः 'वारि+नाम् इस दशा में 'नामि' से दीर्घ हो जाता है। अतः नुम् की अपेक्षा नुट् का आगम हो करना उचित है।

वारिणी—प्रातिपदिक संज्ञक वारि शब्द से सप्तमी ऐकवचन में 'ङि' विभक्ति आती है। ङकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'वारि+इ इस दशा में 'शेषोध्यसखि' सूत्र से घि संज्ञा होने से 'अच्चघेः' सूत्र से घि संज्ञक इकार को 'अ' आदेश और ङि विभक्ति की इकार को 'औ' आदेश प्राप्त होता है, उसे बांधकर इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। न् शेष रहता है। 'वारि न् इ' इस स्थिति में' अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण्) हो जाता है जिससे 'वारिणः' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४६. अस्थि दधि सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७।१।७५॥

एषामनङ् स्याट्टादावचि ।

२४७. अल्लोपो नः ६।४।१३६॥

अंगावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः दध्ना । दध्ने दध्नः । दध्नोः २ ।

२४८. विभाषा ङिश्योः ६।४।१३७॥

अंगावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्यो परयोः । दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थि सक्थि अक्षि ।

भ्याम्, भिस्, भ्यस् आदि हलादि विभक्तियों के रूप हरि शब्द के समान होते हैं ।

वारि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	,,	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	,,	,,
षष्ठी	,,	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	,,	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे ! हे वारि !	हे वारिणी !	हे वारीणि !

अस्थिदधि सक्थ्य—अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन शब्दों को अनङ् आदेश होता है । टा, ङे, ङसि, ङस् ओस ओम्, आदि अजादि विभक्तियों के परे होने पर ।

अल्लोपोन—जिस शब्द का अवयव, सर्वनाम स्थान से पृथक् यकार आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अजादि प्रत्यय परे होने पर अन् के अकार का लोप होता है। जैसे—

दध्ना—प्रातिपदिक संज्ञक दधि शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है। 'आ' शेष रहता है। 'दधि+आ' इस दशा में 'अस्थि दधि सक्थ्यक्षणामनङुदात्तः' सूत्र से ङित् अनङ् का आदेश दधि शब्द की इकार के स्थान पर हो जाता है। अन् शेष रहता है। दध् अन्+आ इस स्थिति में 'अल्लोपोनः' सूत्र से अन् की 'अ' का लोप हो जाता है। दध् न्+आ= 'दध्ना' यह रूप निष्पन्न होता है।

दध्ने—प्रातिपदिक संज्ञक दधि शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' विभक्ति आती है 'ए' शेष रहता है 'अस्थि दधिसक्थ्यक्षणामनङुदात्तः' सूत्र से अनङ् आदेश तथा अन् शेष रहता है। 'अल्लोपोनः' सूत्र से 'अन्' की अ का लोप हो जाता है जिससे 'दध्ने' यह रूप निष्पन्न होता है।

दध्नः—प्रातिपदिक संज्ञक दधि शब्द से पञ्चमी तथा षष्ठी एकवचन में ङसि उस विभक्ति आती है। ङ की इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। 'अस्थि दधिसक्थ्यक्षेणामनङुदात्तः' सूत्र से इकार के स्थान मे 'अनङ्' आदेश हो जाता है। अन् शेष रहता है 'अल्लोपोनः' सूत्र से अन् की अकार का लोप हो जाता है। स् को रुत्व विसर्ग होकर 'दध्नः' यह रूप निष्पन्न होता है।

दध्नोः—इसी प्रकार दधि शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी द्विवचन में ओस् विभक्ति आती हैं। 'अनङादेश अन् शेष रहता है स् को रुत्व विसर्ग होकर 'दध्नोः' यह रूप निष्पन्न होता है।

विभाषाङिश्यो—शब्द के अंग को जो सर्वनाम स्थान भिन्न अवयव उसके अन् की अकार का विकल्प से लोप हो, ङि और शि के परे रहते। जैसे—

दध्नि:—प्रातिपदिक संज्ञक दधि शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि विभक्ति आती है। ङ की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। दधि+इ इस दशा में 'अस्थिदधिसक्थ्यक्षणामनङुदात्तः' सूत्र से अनङादेश अन् शेष रहता है। 'विभाषाङिश्योः' सूत्र से अन् की अकार का विकल्प से लोप हो जाता है जिससे दध्नि पक्ष में अकार के लोप के अभाव पक्ष में दधनि यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दधि शब्द के शेष रूपों की सिद्धि वारि शब्द के समान होती है। इसी प्रकार, अस्थि, सक्थि अक्षि आदि शब्दों की सिद्धि तथा रूप होते हैं।

दधि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	”	”	”
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	”	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	”	”
षष्ठी	”	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	”	दधिषु
सम्बोधन	हे दधे ! हे दधि !	हे दधिनी !	हे दधीनि !

अस्थि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
द्वितीया	”	”	”
तृतीया	अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः
चतुर्थी	अस्थ्ने	”	अस्थिभ्यः
पञ्चमी	अस्थ्नः	”	”
षष्ठी	”	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्
सप्तमी	अस्थ्नि, अस्थनि	”	अस्थिषु
सम्बोधन	हे अस्थि ! हे अस्थे!	हे अस्थिनी !	हे अस्थीनि !

सक्थि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सक्थि	सक्थिनी	सक्थीनि
द्वितीया	”	”	”
तृतीया	सक्थ्ना	सक्थिभ्याम्	सक्थिभिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४९ः तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य ७।१।७४॥

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीवं पुंवद् वा स्यात् टादावचि । सुधिया, सुधिनेत्यादि ।

विभक्ति	एकवच	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	सक्थ्ने	"	सक्थिभ्यः
पञ्चमी	सक्थ्नः	"	"
षष्ठी		सक्थ्नोः	सक्थ्नाम्
सप्तमी	सक्थ्नि सक्थिनिः	"	सक्थिषु
सम्बोधन	हे सक्थे! हे सक्थि!	हे सक्थिनी !	हे सक्थीनि !

इसी प्रकार अक्षि शब्द के रूप होते हैं।

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पु०—प्रवृत्ति निमित्त के समान होते हुए जो शब्द भाषितपुंस्कं अर्थात् पुलिंग कहा गया हो अर्थात् जो इगन्त शब्द पुलिंग में भी कहा गया है, और फिर उस शब्द का पाठ नपुंसकलिंग में भी किया गया हो, उस इगन्त नपुंसक लिंग शब्द को पुंवद् भाव हो अर्थात् पुल्लिंग के समान कार्य हों। टा—आ, ङे→ए, ङसि=अस्, ङस्=अस्, ओस्, आम् आदि विभक्तियों के परे। यह गालव नामक आचार्य का मत है। जैसे—

सुधिया सुधिना—प्रातिपदिक संज्ञक सुधी शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है, टकार इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। सुधी+आ' इस स्थिति में 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद गालवस्य' सूत्र से पुल्लिग में भा पठित सुधी शब्द को विकल्प में पुंवद् भाव हो जाता है जिससे 'अचिश्नुधातु-भ्रुवां यवोरियङुवङौ' सूत्र से धकारोत्तरवर्ती ईकार को 'इयङ्' आदेश हो जाता है। इय् शेष रह जाता है। इस प्रकार 'सुधिया' यह रूप निष्पन्न होता है पक्ष में पुंवद् भाव के अभाव पक्ष में 'इकोऽचिविभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। उम् की संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदि-कस्य' सूत्र से ईकार को ह्रस्व इकार हो जाता है। इस प्रकार 'सुधिना' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार सुधिये, सुधिने, सुधियः, सुधिनः, सुधियि, सुधिनि इत्यादि की द्धि होती है।

सुधी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	,,	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	सुधियोः, सुधिनोः	सुधीनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	,,	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधि !	हे सुधे !	हे सुधीनि !

इसी प्रकार प्रधी आदि भाषित पुंस्क शब्दों के रूप होते हैं :—

भाषित पुंस्क—का आशय यह है कि भाषित पुंस्क उस शब्द को कहते जो शब्द पुल्लिग तथा नपुंसकलिंग दोनों पढ़ा (कहा) गया हो तथा इन नों की प्रवृत्ति, निमित तथा दोनों का व्यवहार किया जाने वाला अर्थ समान । जिस शब्द का निमित्त अर्थात् अर्थ को ग्रहण करके पुल्लिग में पाठ (कहा) या है, वही निमित्त अर्थात् अर्थ गृहण कर उसी शब्द का नपुंसकलिंग में ढ़ा (कहा) गया है । वह शब्द भाषित पुंस्क कहा जाता है ।

'पीलु' शब्द अर्थ 'पीलु' नामक वृक्ष होता है और उसके फल को भी पीलु हते हैं । यद्यपि पीलु शब्द का प्रयोग पुल्लिग तथा नपुंसक दोनो लिंगों में या गया है फिर भी 'पीलु' शब्द को भाषित 'पुंस्क' नहीं कहा जा सकता । क्योंकि यहां 'पीलु' शब्द की प्रवृत्ति निमित्त में समानता नही है अपितु अर्थ भेद है । एक पीलु का अर्थ वृक्ष (पुल्लिग) है और दूसरे पीलु का अर्थ पीलु क्ष का फल (नपुंसकलिंग) है । भाषित पुंस्क शब्द मे प्रवृत्ति निमित्त में अर्थात् र्थ में भेद नहीं होता है । वृक्षवाचक पुल्लिग पीलु शब्द का चतुर्थी एकवचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पीलवे और नपुंसकलिंग में पीलु वृक्ष के फलवाचक अर्थ में चतुर्थी एकवचन में 'पीलुने' रूप निष्पन्न होता है।

इसी अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते
क्लीववृत्तौ तदेव स्यादुक्तपुंस्कं तदुच्यते ।
पीलु वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्व तत्फलं पुनः ॥

सुधी शब्द का पाठ पुल्लिग तथा नपुंसकलिंग दोनों में एक ही प्रवृत्ति निमित्त अर्थात् अर्थ में पढ़ा गया है इसलिये 'सुधी' शब्द भाषित पुंस्क कहा जाता है। 'सुधी' शब्द अर्थ दोनों लिगों में सुन्दर बुद्धि वाला होता है। अतः 'गालव' नामक आचार्य के मत से सुधी शब्द का नपुंसकलिंग में भाषित पुंस्क होने के कारण पुंवद् भाव हो जाता है, जिससे अजादि विभक्तियों में विकल्प से पुल्लिगवत् रूप बनेंगे। जैसे—सुधिया, सुधिना, सुधिये, सुधिने, सुधियः सुधिनः, सुधियोः, सुधिनोः, सुधीनाम इत्यादि रूप होते हैं। भाषित पुंस्क का फल 'अचिश्नुधातुभ्रुवां यवोरियङुवङौ' सूत्र से इयङ, उवङ आदेश आदि पुल्लिगवत् कार्य होना है। पुंवद् भाव के अभाव पक्ष में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र मे नुम् का आगम होता है जिससे दो-दो रूप बनते हैं।

सुधी शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	सुधया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभि
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	,,	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	सुधियोः, सुधिनोः	सुधीनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	,, ,,	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधि ! हे सुधे !	हे सुधिनी !	हे सुधीनि !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार भाषित पुंस्क इगन्त शब्दों के रूप सुधी के समान होते हैं। से—प्रधी, मधु, सुलु आदि।

मधु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	मध्वा, मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मध्वे, मधुनेः	,,	मधुभ्यः
पञ्चमी	मध्वः, मधुनः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	मध्वोः, मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मध्वि, मधुनि	,, ,,	मधुषु
सम्बोधन	हे मधो ! हे मधु	हे मधुनी !	हे मधूनि !

सुलु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुलु	सुलूनी	सुलूनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	सुल्वा, सुलुना	सुलुभ्याम्	सुलुभिः
चतुर्थी	सुल्वे, सुलुने	,,	सुलुभ्यः
पञ्चमी	सुल्वः, सूलुनः	,,	,,
षष्ठी	,, ,,	सुल्वोः, सुलुनोः	सुलुनाम्
सप्तमी	सुल्वि, सुलुनि	,, ,,	सुलषु
सम्बोधन	हे सुलो ! हे सुलु !	हे सुनुनी !	हे सुलूनि !

इसी प्रकार ऋकारान्त भाषितपुंस्क धातृ शब्द के रूप होते हैं तथा ज्ञातृ, र्तृ, हर्तृ, दातृ आदि शब्दों के रूप बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातृ, धातृणी । हे धातृ । धात्रा, धातृणा । धातृणाम् एवं धातृ आदयः

धातृ—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से प्रथमा एकवचन में से विभक्ति आती है, 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से सु विभक्ति का लोप हो जाता है जिससे 'धातृ' यह रूप निष्पन्न होता है।

धातृणी—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है। 'नपुंसकाच्च' सूत्र से 'औ' को शी आदेश हो जाता है, शकार की इत्संज्ञा हो जाती है तथा लोप हो जाता है। धातृ+ई इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है 'उम्' की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'धातृ न् ई' इस स्थिति में 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण) हो जाता है जिससे धातृणी यह रूप निष्पन्न होता है।

हे धातः—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से प्रथमा एकवचन सम्बोधन में सु विभक्ति आती है 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से 'सु' की सम्बुद्धि संज्ञा हो जाती है 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सु का लोप हो जाता है। 'प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम्' सूत्र से सु की उपस्थिति मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' सूत्र से ऋ के स्थान में अर् गुण प्राप्त होता है परन्तु 'नलुमताङ्गस्य' सूत्र से तन्निमित्तक कार्य नहीं होते हैं। अतः गुण नहीं होता है तथापि 'न लुमताङ्गस्य' यह सूत्र अनित्य भी माना गया है अतः अनित्य पक्ष में 'प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम्' के अनुसार गुण हो जायेगा और रकार को विसर्ग होकर हे धातः बनेगा और पक्ष में हे धातृ यह रूप निष्पन्न होता है।

धात्रा—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, धातृ+आ इस दशा में 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य' सूत्र से विकल्प से पुंवद् भाव हो जाता है जिससे नुम् का अभाव तथा 'इकोयणचि' सूत्र से ऋ के स्थान में यण् (र्) हो जाता है जिससे 'धात्रा' यह रूप बनता है। पुंवद्भाव के अभाव पक्ष में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५०. एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।१८॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् । प्रद्यु, प्रद्युनी, द्युनि । प्रद्युनेत्यादि ।

कर लोप हो जाता है। धातृ न् आ इस दशा में न् को णत्व होकर 'धातृणा' रूप निष्पन्न होता है।

धातॄणाम्—प्रातिपदिक संज्ञक धातृ शब्द से षष्ठी बहुवचन में आम् भक्ति आती है 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम प्राप्त होता है। मचिरतृज्वद्भाव गुणेभ्यो नुट पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के नियमानुसार की अपेक्षा नुट् के अधिक प्रबल होने से 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् आगम हो जाता है और उट् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है 'नामि' से ऋ को ॠ दीर्घ हो जाता है। 'ऋवर्णान्तस्य णत्वं वाच्यम्' इस वार्तिक न को णत्व (ण) हो जाता है जिससे धातॄणाम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार ज्ञातृ, दातृ, कर्तृ आदि के रूप चलते हैं।

धातृ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे, धातृणे	"	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः, धातृणः	"	"
षष्ठी	" "	धात्रोः, धातृणोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातरि, धातृणि	" "	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः, हे धातृ !	हे धातृणी !	हे धातॄणि !

एच इग्घ्रस्वादेशे—ह्रस्व के विधान स्थल में एच् प्रत्याहार के वर्णों के ान में अर्थात् ए, ओ, ऐ, औ के स्थान में इक् ही ह्रस्व होता है अर्थात् ए के ान में इ, ओ के स्थान में उ, 'ऐ' के स्थान में इ, औ के स्थान में 'उ' ह्रस्व ता है। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद्यु—प्रातिपदिक संज्ञक प्रद्यो शब्द से प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आती है, 'एच इग्घ्रस्वादेशे' की सहायता से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ओ के स्थान में इक् उकार ह्रस्व हो जाता है, प्रद्यु+सु इस स्थिति में 'स्वमोर्नपुंसकात' सूत्र से सु का लोप हो जाता है, जिससे 'प्रद्यु' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्रद्युनी—प्रातिपदिक संज्ञक प्रद्यो शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है, एचइग्घ्रस्वादेशे' सूत्र के अनुसार 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से 'ओ' के स्थान में उकार ह्रस्व हो जाता है, और 'नपुंसकाच्च' सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश हो जाता है, शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, प्रद्यू+ई इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है इस प्रकार 'प्रद्युनी' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्रद्यूनि—प्रातिपदिक संज्ञक प्रद्यो शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन में जस् तथा शस् विभक्ति आती है, 'जश्जशोःशि' सूत्र से जस् तथा शस् के स्थान में 'शि' आदेश हो जाता है। शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, प्रद्यो+इ इस दशा में 'एचइग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से 'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ओ को ह्रस्व उकार हो जाता है, 'इकोऽचिविभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है प्रद्यु न् इ इस दशा में में 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से शि परे होने से प्रद्यु शब्द की सर्वनाम स्थान संज्ञा हो जाती है, 'सर्वनाम स्थाने चासम्बुद्धौ' सूत्र नान्त उपधा अर्थात् द्यु की उकार को दीर्घ हो जाता है, जिससे प्रद्यूनिः' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्रद्युना—प्रातिपदिक संज्ञक प्रद्यो शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है, टा के टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है, प्रद्यो+आ इस दशा में 'एचइग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य सूत्र से ओ को ह्रस्व इक् अर्थात् उ हो जाता है, प्रद्यु+आ इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम होता है, उम् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। इस प्रकार 'प्रद्युना' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररि, प्ररिणी, प्ररीणि । प्ररिणा । एकादेश-विकृतमनन्यवत्-प्राभ्याम् । सुनु, सुनुनी, सूनूनि सुनुनेत्यादि ।

(इति अजन्त नपुंसकलिंग प्रकरणम्)

प्रद्यो शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रद्यु	प्रद्युनी	प्रद्यूनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	प्रद्युना	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभिः
चतुर्थी	प्रद्युने	,,	प्रद्युभ्यः
पञ्चमी	प्रद्युनः	,,	,,
षष्ठी	,,	प्रद्युनोः	प्रद्युनाम्
सप्तमी	प्रद्युनि	,,	प्रद्यूषु
सम्बोधन	हे प्रद्यु !	हे प्रद्यो हे प्रद्युनी !	हे प्रद्युनि !

प्ररि—प्रातिपदिक संज्ञक प्रै शब्द से प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति आती है, 'एचइग्घ्रस्वादेशे' सूत्र के सहयोग से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ऐ को इक् ह्रस्व (इ) हो जाता है। प्ररि+सु इस दशा में 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से सु का लोप हो जाता है, जिससे 'प्ररि' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्ररिणी—प्रातिपदिक संज्ञक प्रै शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में औ विभक्ति आती है, ऐ को ह्रस्व इकार हो जाता है, 'प्ररि+औ' 'नपुंसकाच्च' सूत्र से औ को शी आदेश हो जाता है, शकार का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, उम् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। प्ररि न्+ई इस दशा में 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न को णत्व (ण्) हो जाता है, इस प्रकार 'प्ररिणी' यह रूप निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररीणि—प्रातिपदिक सञ्ज्ञक प्रै शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के बहुवचन में जस् तथ शस् विभक्ति आती है, 'जश्शसोः शि' सूत्र से जस् तथा शस् को शि हो जाता है, 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से शि परे रहते सर्वनाम स्थान सञ्ज्ञा हो जाती है। 'एच इग्घ्रस्वादेश' सूत्र की सहायता से 'ह्रस्वो नपुंसके-प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ऐ को इक् इ ह्रस्व हो जाता है, प्ररि+इ इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है, 'उम्' का इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, प्ररि न्+इ इस स्थिति में 'सर्वनामस्थानेचाऽसम्बुद्धौ' सूत्र से से नान्त उपधा को दीर्घ हो जाता है, 'अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि' सूत्र से न् को णत्व (ण) हो जाता है, जिससे 'प्ररीणि' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्ररिणा—प्रातिपदिक संज्ञक प्रै शब्द से तृतीया एकवचन में टा विभक्ति आती है। टकार की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप हो जाता है 'एच इग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य सूत्र से ऐ को ह्रस्व इक् (इ) हो जाता है। प्ररि+अ इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। उम् की इत्सञ्ज्ञा होकर लोप हो जाता है। न् को णत्व ण् होकर 'प्ररिणा' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्रराभ्याम्—प्रातिपदिक संज्ञक प्रै शब्द से तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति आती है। 'एच इग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ऐ को ह्रस्व इक् (इ) हो जाता है। 'प्ररि+भ्याम् इस स्थिति में 'एकदेशविकृतमनन्यवत् इस न्याय के अनुसार प्ररि शब्द की इकार को 'रायो हलि' सूत्र से इकार को आकार आदेश हो जाता है जिससे 'प्रराभ्याम्' यह रूप निष्पन्न होता है।

प्ररि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्ररि	प्ररिणी	प्ररीणि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	प्ररिणा	प्ररिभ्याम्	प्ररिभिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	प्ररिणे	,,	प्ररिभ्य:
पञ्चमी	प्ररिण:	,,	,,
षष्ठी	,,	प्ररिणो:	प्ररीणाम्
सप्तमी	प्ररिणि	,,	प्ररासु
सम्बोधन	हे प्ररि ! हे प्ररे !	हे प्ररिणी !	हे प्ररीणि !

सुनु—प्रातिपदिक संज्ञक सुनौ शब्द से प्रथमा एकवचन में विभक्ति आती है। च इग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से औ की ह्रस्व उ हो जाता है। सुनु+सु इस दशा में 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से सु का लोप हो जाता है जिससे 'सुनु' यह रूप निष्पन्न होता है।

सुनुनी—प्रातिपदिक संज्ञक सुनौ शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में 'औ' विभक्ति आती है। 'नपुंसकाच्च' सूत्र से 'औ' को शी आदेश हो जाता है। शकार का इत्संज्ञा होने से लोप हो जाता है। सुनौ+ई इस दशा में 'एचइग्घ्रस्वाङेशे' सूत्र की सहायता से ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से औ को ह्रस्व इक् उ हो जाता है। 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। उम् की इत्सज्ञा तथा लोप हो जाता है। इस प्रकार 'सुनुनी' यह रूप निष्पन्न होता है।

सुनूनि—प्रातिपदिक संज्ञक सुनौ शब्द से प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन में जस् तथा शस् विभक्ति आती है। 'जश्शयो: शि' सूत्र से जस् के स्थान में 'शि' आदेश हो जाता है। शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'शि सर्वनामस्थानम' सूत्र से शि की सर्वनाम स्थान संज्ञा हो जाती है। 'एच इग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहयता से 'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से औ को ह्रस्व इक् (उ) हो जाता है। सुनु+इ इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। उम् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। सुनून्+इ इस दशा में 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' सूत्र से नान्त उपधा अर्थात् उकार को दीर्घ (ऊ) हो जाता है जिससे 'सुनूनि' यह रूप निष्पन्न होता है।

सुनुना—इसी प्रकार प्रातिपदिक संज्ञक सुनौ शब्द से तृतीया एकवचन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टा विभक्ति आती है, टकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। 'एचइग्घ्रस्वादेशे' सूत्र की सहायता से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ह्रस्व इक् 'उ' हो जाता है। सुनु + आ' इस दशा में 'इकोऽचि विभक्तौ' सूत्र से नुम् का आगम हो जाता है। उम् की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाता है। इस प्रकार 'सुनुना' यह रूप निष्पन्न होता है।

सुनौ शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुनु	सुनुनी	सुनूनि
द्वितीया	,,	,,	,,
तृतीया	सुनुना	सुनुभ्याम्	सुनुभिः
चतुर्थी	सुनुने	,,	सुनुभ्यः
पञ्चमी	सुनुनः	,,	,,
षष्ठी	,,	सुनुनोः	सुनूनाम्
सप्तमी	सुनुनि	,,	सुनुषु
सम्बोधन	हे सुनु ! हे सुनो !	हे सुनुनी !	हे सुनूनि !

इति अजन्त-नपुंसकलिंग प्रकरण।

(सीतापुर मण्डलान्तर्गत चतुरैया ग्राम निवासिना चुन्नीलाल शुक्लेन कृता लघुसिद्धान्तकौमुद्याः व्याख्येयं समाप्ता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

लोप-संज्ञा

अदर्शनं लोप:—प्रसक्त अर्थात् प्रस्तुत का न दिखाई पड़ना ही लोप कहा जाता है अर्थात् उपस्थित वस्तु का दिखाई न देना, सुनाई देने वाले शब्द का सुनाई न देना लोप कहा जाता है।

जैसे अइउण्, ऋलृक् आदि में ण्, क् आदि के अ की इत्संज्ञा होने से "**तस्य लोप:**" से "अ" का लोप हो गया है। इसीलिए ण्, क् आदि (हल्) हो गये हैं।

प्रत्याहार-संज्ञा

आदिरन्त्येनसहेता—आदि और इत्संज्ञक अन्तिम वर्ण के सहित तथा मध्य में आने वाले वर्णों की प्रत्याहार संज्ञा होती है। जैसे अण् यह अ, इ, उ का बोध कराता है। इसी प्रकार "अल्" अ से लेकर समस्त स्वर और समस्त व्यंजनो का (हल् की ह तक का) बोध होता है।

इन चौदह सूत्रों का आदि अक्षर और इत्संज्ञक अन्तिम वर्ण के साथ जो शब्द बनता है उसे प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरण के लिये 'अच्' अइउण् का 'अ' और ऐ औ च् की च् के संयोग से अच् बनता है। इस अच् को प्रत्याहार कहते हैं और अच् के अन्तर्गत आने वाले स्वरों का भी अच् प्रत्याहार से बोध होता है। अइउण् आदि चौदह सूत्रों से ४२ प्रत्याहार बनते हैं।

प्लुत-संज्ञा

ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुत:—एकमात्रिक, द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय जिस किसी स्वर के उच्चारण में लगे उस स्वर की क्रम से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुनासिक-संज्ञा

मुखनासिकेति--मुख और नासिका (नाक) की सहायता से उच्चारण किये जाने वाले स्वरों को अनुनासिक कहते हैं अर्थात् प्रत्येक स्वर अथवा वर्ण का उच्चारण मुख से होता है परन्तु अनुनासिक संज्ञक स्वरों का (अं आँ का) उच्चारण नासिका की सहायता के बिना नहीं हो सकता है। अतः मुख और नासिका से बोले जाने वाले स्वर को अनुनासिका कहते हैं और अनुनासिक स्वरों का केवल मुख से ही उच्चारण हो सकता है। नासिका के सहयोग की आवश्यकता नहीं रहती है। ऐसे स्वरों को अनुनासिक अथवा निरनुनासिक कहते हैं।

सवर्ण-संज्ञा

तुल्यास्येति—तालु, कण्ठ आदि स्थान और आभ्यन्तर ये दानों एक हैं। जिस वर्ण के उन समान स्थान और समान अभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्णों की परस्पर सवर्ण-संज्ञा होती है।

संहिता-संज्ञा

परः सन्निकर्षः स०— वर्णों की अत्यन्त समीपता की संहिता संज्ञा हाती है। संहिता संज्ञा का फल सुद्ध्युपास्यः आदि प्रयोगों की सिद्धि है।

संयोग-सञ्ज्ञा

हलोऽनन्तरा संयोगः—अच् से रहित अर्थात् स्वर अ, इ, उ आदि के व्यवधान से रहित हल् वर्णों की संयोग संज्ञा होती है अर्थात् स्वर रहित वर्ण संयोग संज्ञक होता है, जैसे मद्ध्वरिः में द् ध् व् की संयोग संज्ञा होती है।

पद-संज्ञा

सुप्तिङन्तम् पदम्-- सुबन्त जौर तिङन्त की पद संज्ञा होती है। तिङन्त तिङ् तिप्, तस्, झि आदि विभक्तियां अन्त में हों जिनके उनको तिङन्त कहते हैं अर्थात् क्रिया पदों को तिङन्त कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबन्त—सुप् (सु, औ, जस्) आदि विभक्तियां जिसके अन्त में हों उनको सुबन्त कहते हैं अर्थात् रामः, रामौ, रामाः, रमा, रमे, रमाः पुस्तकं, पुस्तके पुस्तकानि को सुबन्त कहते हैं अथवा शब्द रूपों को सुबन्त कहते हैं। तिङन्त से पठति, पठतः, पठन्ति, सेवते, सेवेते, सेवन्ते आदि क्रिया पदों को समझना चाहिये। अतः सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

गुण संज्ञा

अदेङ् गुणः—अत् अर्थात् 'अ' और एङ् प्रत्याहार अर्थात् ए, ओ की गुण संज्ञा होती है अथवा 'अ' 'ए' 'ओ' की गुण कहते हैं। जैसे उपेन्द्रः, गङ्गोदकम्, कृष्णर्द्धि इत्यादि।

वृद्धिरेचि—अवर्ण से अच् प्रत्याहार के वर्ण ए, ओ, ऐ, औ के आगे आने पर पूर्व और पर दोनों स्वरों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश होता है। जैसे तथैव गङ्गौघः आदि।

उपसर्ग-संज्ञा

उपसर्गाः क्रियायोगे—क्रिया के योग में (पचति, पचतु, पक्ष्यति, अपचत् आदि के योग में) प्र, परा, अप, सम् अनु, अव आदि की उपसर्ग संज्ञा होती है अर्थात् क्रिया के योग में प्र, परा आदि उपसर्ग संज्ञक होते है। जैसे प्राच्छंत् आदि।

टि-संज्ञा

अचोऽन्त्या०—शब्द के अचों में जो अन्तिम स्वर उसके बाद जो वर्ण हो, उस वर्ण और अन्तिम स्वर की टि संज्ञा होती है। जैसे—मनीषा, शकन्धुः आदि उदाहरणों से स्पष्टतया टि-सञ्ज्ञा देखी जा सकती है।

प्रकृतिभाव-संज्ञा

प्लुत प्रगृह्या अचि०—प्लुत संज्ञा वाले और प्रगृह्य संज्ञा वाले शब्दों से अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ के आने पर नित्य प्रकृतिभाव होता है। जैसे —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरित=हे कृष्ण ! आइये यहां गाय चरती हैं। यहा आगच्छ कृष्ण ! यह वाक्य कृष्ण को दूर से बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। अतः यहां प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृति भाव होता है।

प्रगृह्य-संज्ञा

ईदूदेद्द्वि०—ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचनान्त शब्दों की प्रगृह्य संज्ञा होती है और प्रगृह्य होने पर प्रकृतिभाव हो जाता है। जिससे फिर कोई सन्धि के नियम नहीं लागू होते हैं। जैसे—

हरि एतौ—हरी+ऐतौ इस दशा में ईकारान्त द्विवचनान्त हरी शब्द से एतौ की एकार स्वर होने पर भी 'ईदूदेद्द्विवचनंप्रगृह्य' सूत्र से प्रगृह्य-संज्ञा होती है और 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है जिससे हरी एतौ ज्यों का त्यों रह जाता है अर्थात् 'इकोयणचि' से ईकार से स्वर ए आगे होने पर भी यण् नहीं होता है क्योंकि प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृति-भाव होता है।

चादयोऽसत्वे—जो शब्द किसी द्रव्य (वस्तु) का वाचक नहीं है अर्थात् द्रव्यभिन्न अर्थ वाले च, अव, ह, नु आदि शब्दों की निपात संज्ञा होती है। च आदि शब्दों का उल्लेख अव्यय प्रकरण में किया गया है।

तस्यपरमाम्रेडितम्—दो बार कहे हुए शब्द की परमाम्रेडित-संज्ञा होती है। जैसे—

कांस्कान—कान्+कान् इस दशा में 'तस्यपरमाम्रेडितम्' सूत्र से दो बार कहे हुए कान् कान् में पर भाग वाले कान् की आम्रेडित सज्ञा हो जाती है जिससे 'कानाम्रेडिते' सूत्र से कान् शब्द से आम्रेडित कान् शब्द से परे होने से प्रथम कान् के न् को रुत्व हो जाता है।

प्रातिपदिक-संज्ञा

अर्थवदधातुर०—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त शब्दों को छोड़ कर अर्थवान् जो शब्द स्वरूप उनकी प्रातिपदिक सज्ञा होने अर्थात् धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त भिन्न सार्थक शब्दों की प्रातिपदिक सज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका आशय यह है कि उस सार्थक शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है जो न धातु हो और न प्रत्यय तथा न हो प्रत्ययान्त शब्द हो। यदि धातु भिन्न सार्थक शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान न किया गया होता तो 'अहन्' इस हन् धातु के लङ् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन की भी प्रातिपदिक संज्ञा होने लगती है जिसे 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से 'अहन्' के न् का लोप हो जाता और अनिष्ट रूप की सिद्धि होने लगती। अतः अनिष्टापत्ति को दूर करने के लिये ही धातु भिन्न शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा का विधान किया है जो उचित ही है।

सम्बुद्धि–संज्ञा

एकवचनमिति—सम्बोधन अर्थ में प्रथमा के एकवचन न, सु की सम्बुद्धि संज्ञा होती है।

यदि प्रथमा सम्बोधन की विभक्ति की सम्बुद्धि संज्ञा हो चुकी है, तो एङ्न्त (एकारान्त, ओकारान्त) और ह्रस्वान्त, अङ्ग से सम्बुद्धि की सु का लोप होता है। जैसे—

हे राम—प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा एकवचन में विभक्ति आती है, और 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्' सूत्र से राम शब्द की अङ्ग संज्ञा होती है। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञक सु की स् का लोप हो जाता है, जिससे प्रथमा एकवचन में (हे) राम! निष्पन्न होता है।

घि–संज्ञा

शेषोध्यसखि–नदी संज्ञक इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों को छोड़कर जो ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा होती है 'सखि' शब्द को छोड़कर अर्थात् नदी संज्ञक और 'सखि' शब्द को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा होती है। जैसे–हरये, कवये, आदि।

उपधा संज्ञा

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा—अन्तिम अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। जैसे सखन+सु में ख की अ की उपधा संज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विश्वनाथ स्मृति संग्रह

अपृक्त-संज्ञा

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः—एक अल् रूप जो प्रत्यय उस प्रत्यय की अपृक्त सज्ञा होती है अर्थात् एक अल् वाले प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है। जैसे—

सखि सु→स्, सखन्+स् यहां स् एक अल् (वर्ण) वाला प्रत्यय है। अत 'स्' की अपृक्त संज्ञा होती है।

संख्या-संज्ञा

बहुगणवतुडति संख्या—बहु तथा गण शब्द, वतु प्रत्यान्त यावत्, तावत् आदि शब्द तथा डति प्रत्ययान्त 'कति' शब्द की सख्या सज्ञा होती है।

षट्-संज्ञा

8239

डति च—डति प्रत्यय हैं, अन्त में जिस शब्द के उस संख्यावाची शब्द की षट् संज्ञा होती है।

षड्भ्यो लुक्—षट् सज्ञक शब्दों से परे जस् और शस् विभक्ति का लोप हो जाता हे। जैसे—कति-कति आदि।

नदी-संज्ञा

यूस्त्र्याख्यौ नदी—ईकारान्त तथा ऊकारान्त जो नित्य स्त्रीलिंग शब्द हैं उनकी नदी संज्ञा होती है। जैसे नद्यै, नद्याः, नद्याम् आदि।

प्रथमलिङ्गग्रहणं च—इसका आशय यह है कि यदि कोई शब्द पहले किसी अन्य लिंग का था परन्तु समास आदि के कारण वह शब्द किसी अन्य लिंग का वाचक हो जाता है तो पूर्व का लिंग गौण हो जाता है तो ऐसी स्थिति में प्रथम अर्थात् पूर्व लिंग के अनुसार नदी संज्ञा आदि कार्य होत हैं। जैसे-पहले 'श्रेयसी' शब्द नित्य स्त्रीलिंग का वाचक था परन्तु बहुव्रीहि समास में स्त्रीत्व गौण होकर पुल्लिग का वाचक हो गया तो ऐसी स्थिति में पूव लिंग अर्थात् स्त्रीलिंग मानकर नदी सज्ञा होती है।

गति-संज्ञा

गतिश्च—क्रिया के योग में प्रादिकों की अर्थात् प्र, परा, अप, सम, अनु अव आदि की गति संज्ञा होती है। जैसे-शुद्धधियौ शुद्धधियः, यवक्रियौ, यवक्रियः इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PAYMENT PROCESSED
Vide Bill No 646 Dated 10/11/89

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

R420.1,SHU-B
8239H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar